

द्विः

दुर्लभबौद्ध ग्रन्थशोधपत्रिका

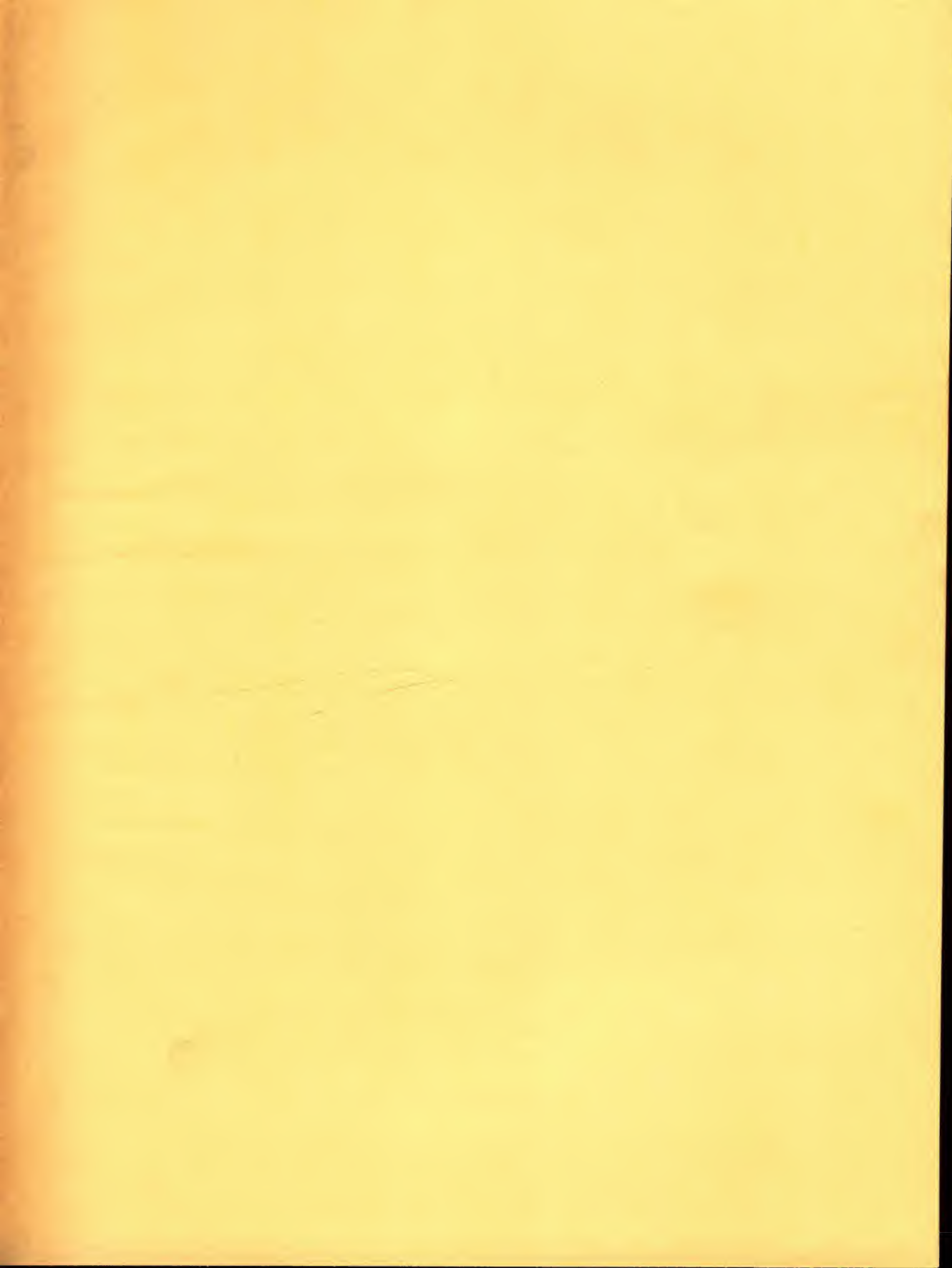
Journal  
of  
Rare Buddhist Texts Research Unit

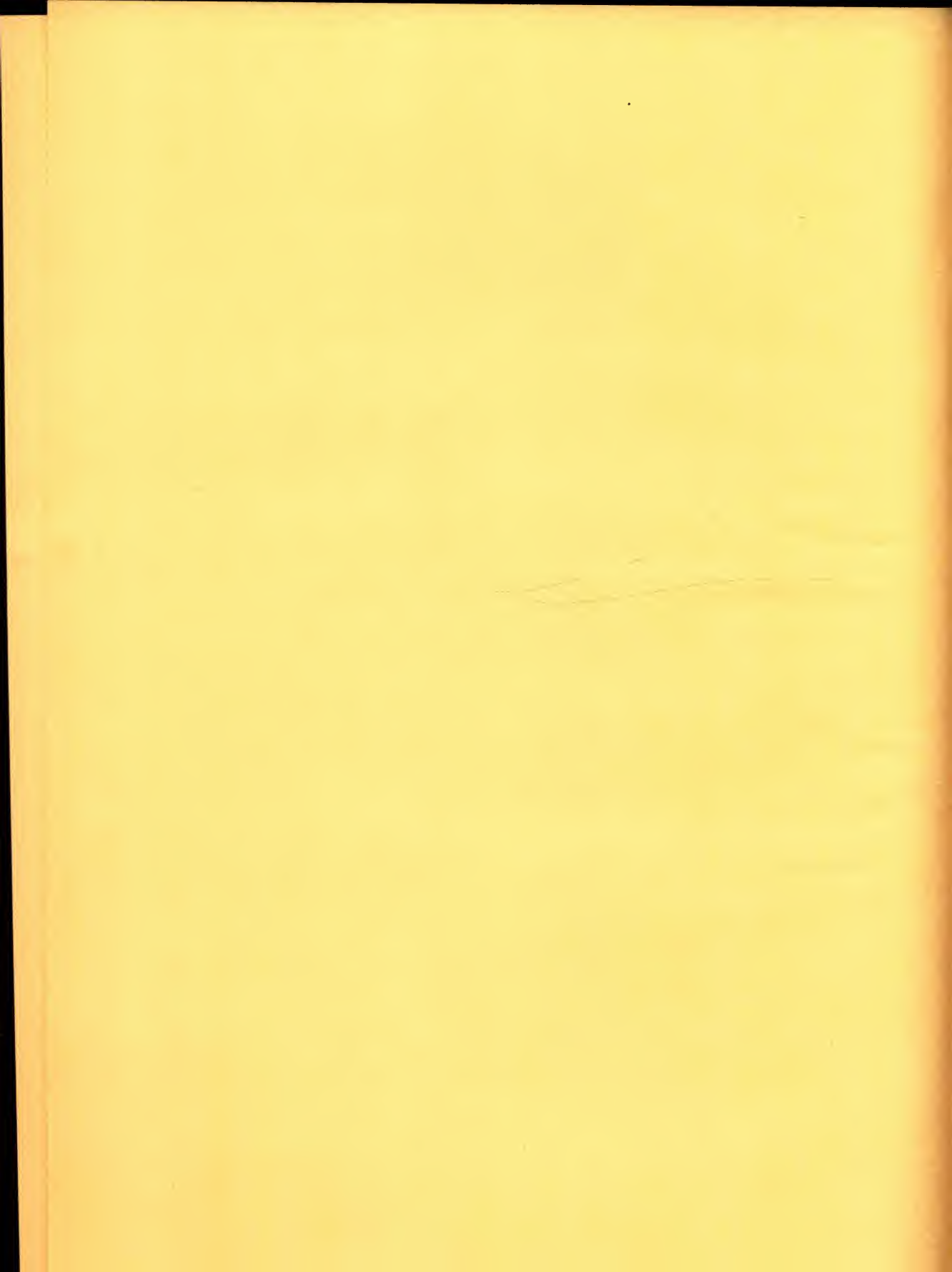
40

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध अनुभाग  
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान  
सारनाथ, वाराणसी

2005









# ध्वाः

## दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध पत्रिका

### 40

सम्पादक

डचडः समतेन

जनार्दन पाण्डेय

निदेशक



दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध अनुभाग  
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान  
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५४९

कार्तिक पूर्णिमा

ख्रीस्ताब्द २००५

सहायक-मण्डल

ठाकुरसेन नेगी  
ठिनलेराम शाशनी  
छेरिंग डोलकर  
विजयराज वज्राचार्य

बनारसी लाल  
छोग दोर्जे  
रंजन कुमार शर्मा

४०वाँ अंक, ५५० प्रतियाँ, २००५

मूल्य : ₹० ९५.००

© केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, २००५

प्रकाशक :

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान,  
सारनाथ, वाराणसी-२२१ ००७

मुद्रक :

सुरभि प्रिन्टर्स  
सी० २७/२७३, इण्डियन प्रेस कालोनी  
मलदहिया, वाराणसी-२२१ ००२

# Dhīh

Journal  
of  
Rare Buddhist Texts Research Unit

## 40

*Editors*

NGAWANG SAMTEN

Director

JANARDAN PANDEY



RARE BUDDHIST TEXTS RESEARCH UNIT  
Central Institute of Higher Tibetan Studies  
Sarnath, Varanasi

B.E. 2549

KĀRTIKA PŪRNIMĀ

C.E. 2005

Co-Editors

Thakur Sain Negi  
Thinlay Ram Shashni  
Tsering Dolkar  
Vijay Raj Vajracharya

Banarsi Lal  
Chhog Dorjee  
Ranjan Kumar Sharma

Vol. XL, 550 copies, 2005

Price : Rs. 95.00

© Central Institute of Higher Tibetan Studies,  
Sarnath, Varanasi, 2005

*Published by:*

Central Institute of Higher Tibetan Studies,  
Sarnath, Varanasi-221 007

*Printed by:*

Surabhi Printers  
C. 27/273, Indian Press Colony  
Maldahia, Varanasi-221 002



## धी: XL

### विषयानुक्रमणी

स्तोत्र—

भगवन्नामाष्टोत्तरशतस्तोत्रम्	1-2
सर्वतथागतकायवाक्चित्तवज्रस्तोत्रम्	3-3
महावज्रधरस्तुतिः	4-4
बौद्ध तान्त्रिक वाङ्मय में अपभ्रंश (3) — जनार्दन पाण्डेय	5-8
लुप्त बौद्ध वचन संग्रह — बनारसी लाल	9-40
बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का अभिप्राय — ठिनलेराम शाशनी	41-52
आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में मूर्ति और मण्डल — सुनीति कुमार पाठक	53-60
त्रिमङ्गलगाथा — जलछेन नमडोल	61-76
दुर्लभ ग्रन्थों की आधार सामग्री — ठाकुरसेन नेगी	77-97
पञ्चबुद्धों से उद्भूत देवताओं के विविध स्वरूप — ठाकुरसेन नेगी	99-110
बौद्धतन्त्रों में सिद्धियाँ : स्वरूप एवं भेद — बनारसी लाल	111-128
तन्त्र की सामान्य एवं संक्षिप्त व्यवस्था (10) — छेरिंग डोलकर	129-140
बौद्ध एवं बौद्धेतर धर्मों में 'दीक्षा' का स्वरूप (5) — रञ्जनकुमार शर्मा	141-148
क्षण-सम्पद् की अवधारणा — पेमा तेनजिन	149-158
आर्यवज्रविदारणा नाम धारणी	159-164
निबन्धों का संक्षिप्त परिचय (अंग्रेजी)	165-168
निबन्धों का संक्षिप्त परिचय (तिब्बती)	169-174

यावन्न कुरुते योगी बोधिचित्तविसर्जनम् ।

योनौ प्राप्नोत्यविच्छिन्नं तावदानन्दमुत्तमम् ॥

तेनैव सुखरूपेण संयुक्तं बुद्धबिम्बकम् ।

भावयेन्नित्यमात्मानं यावच्छुक्रं स्थिरीभवेत् ॥

(लघुतन्त्रटीका, पृ० 124)



## भगवन्नामाष्टोत्तरशतस्तोत्रम्

[ इस अंक में प्रस्तुत स्तोत्र “भगवन्नामाष्टोत्तरशतस्तोत्रम्” को ‘सर्वतथागततत्त्वसंग्रह’, पृ० 55-56 से तथा ‘सर्वतथागतकायवाक्चित्तस्तोत्रम्’ एवं ‘महावज्रधरस्तुतिः’ को गुह्यसमाजतन्त्र के 17वें पटल (श्लो० 1-6 तथा 72-75) से दिया जा रहा है । ]

वज्रसत्त्व महावज्र वज्रनाथ सुसाधक ।  
वज्राभिषेक वज्राभ वज्रकेतु नमोऽस्तु ते ॥ 1 ॥

हासवज्र महाधर्म वज्रकोश महावर ।  
सर्वमण्डलराजाय्य निःप्रपञ्च नमोऽस्तु ते ॥ 2 ॥

वज्रकर्म महारक्ष चण्डयक्ष महाग्रह ।  
वज्रमुष्टि महामुद्र सर्वमुद्र नमोऽस्तु ते ॥ 3 ॥

बोधिचित्त महाबोधे बुद्ध सर्वतथागत ।  
वज्रयान महाज्ञान महायान नमोऽस्तु ते ॥ 4 ॥

सर्वार्थ सर्वतत्त्वार्थ महासत्त्वार्थ सर्ववित् ।  
सर्वज्ञ सर्वकृत्सर्व सर्वदर्शि नमोऽस्तु ते ॥ 5 ॥

वज्रात्मक सुवज्राय्य वज्रवीर्य सुवज्रधृक् ।  
महासमय तत्त्वार्थ महासत्य नमोऽस्तु ते ॥ 6 ॥

वज्राङ्कुश महाकाम सुरते सुमहाप्रभ ।  
वज्रप्रभ प्रभोद्योत बुद्धप्रभ नमोऽस्तु ते ॥ 7 ॥

वज्रराजाय्य वज्राय्य विद्याय्याय्य नरोत्तम ।  
वज्रोत्तम महाय्याय्य विद्योत्तम नमोऽस्तु ते ॥ 8 ॥

वज्रधातो महागुह्य वज्रगुह्य सुगुह्यधृक् ।  
वज्रसूक्ष्म महाध्यान वज्रकार्य नमोऽस्तु ते ॥ 9 ॥

बुद्धाय्य बुद्धवज्राय्य बुद्धबोधे महाबुध ।  
बुद्धज्ञान महाबुद्ध बुद्धबुद्ध नमोऽस्तु ते ॥ 10 ॥

बुद्धपूजा महापूजा सत्त्वपूजा सुपूजक ।  
महोपाय महासिद्धे वज्रसिद्धि नमोऽस्तु ते ॥ 11 ॥

तथागतमहाकाय तथागतसरस्वते ।  
तथागतमहाचित्त वज्रचित्त नमोऽस्तु ते ॥ 12 ॥

बुद्धाधिप जिनाज्ञाकृद् बुद्धमित्रे जिनाग्रज ।  
महावैरोचन विभो[ शास्ता ] शान्तरौद्र नमोऽस्तु ते ॥ 13 ॥

तथागतमहातत्त्व भूतकोटे महानय ।  
सर्वपारमिताज्ञान परमार्थ नमोऽस्तु ते ॥ 14 ॥

समन्तभद्र चर्याग्र्य मार मारप्रमर्दक ।  
सर्वाग्र्य समताज्ञान सर्वत्रग नमोऽस्तु ते ॥ 15 ॥

बुद्धहुंकर हुंकर वज्रहुंकर दामक ।  
विश्ववज्राङ्ग वज्रोग्र वज्रपाणे नमोऽस्तु ते ॥ 16 ॥

वन्द्यः पूज्यश्च मान्यश्च सत्कर्तव्यस्तथागतैः ।  
यस्माद्वज्रदृढं चित्तं वज्रसत्त्वस्त्वमुच्यसे ॥ 17 ॥

त्वदधीना हि सम्बोधि पिता त्वं सर्वदर्शिनाम् ।  
संभूताः संभविष्यन्ति त्वामासाद्य तथागताः ॥ 18 ॥

अनेन स्तोत्रराजेन स्तुयाद्वै सुभक्तितः ।  
यो गायंस्तु स्तुयात्सोऽपि भवेद्वज्रधरोपमः ॥ 19 ॥

अध्येषयामस्त्वान्नाथ सर्वबुद्धवशङ्करम् ।  
सर्वसत्त्वार्थकार्यार्थमुत्पादय कुलं स्वकम् ॥ 20 ॥ इति ।

[ ॥ इति भगवन्नामाष्टोत्तरशतस्तोत्रम् ॥ ]

## सर्वतथागतकायवाक्चित्तवज्रस्तोत्रम्

अक्षोभ्यवज्र महाज्ञान वज्रधातु महाबुध ।  
त्रिमण्डल त्रिवज्राग्र घोषवज्र नमोऽस्तु ते ॥ 1 ॥

वैरोचन महाशुद्ध वज्रशान्त महारत ।  
प्रकृतिप्रभास्वरान् धर्मान् देशवज्र नमोऽस्तु ते ॥ 2 ॥

रत्नराजसुगाम्भीर्य स्ववज्राकाशनिर्मल ।  
स्वभावशुद्धिर्लेप कायवज्र नमोऽस्तु ते ॥ 3 ॥

वज्रामितमहाराज निर्विकल्प स्ववज्रधृक् ।  
रागपारमितागम भाषवज्र नमोऽस्तु ते ॥ 4 ॥

अमोघवज्र सम्बुद्ध सर्वाशापरिपूरक ।  
शुद्धस्वभावसंभूत वज्रसत्त्व नमोऽस्तु ते ॥ 5 ॥

एभिः स्तोत्रपदैः शान्तैः सर्वबुद्धप्रचोदितैः ।  
संस्तूयाद्वज्रसंभोगात् सोऽपि वज्रसमो भवेत् ॥ 6 ॥

[ ॥ सर्वतथागतकायवाक्चित्तवज्रस्तोत्रम् ॥ ]



## महावज्रधरस्तुतिः

त्वं वज्रचित्त भुवनेश्वर सत्त्वधातो  
त्रायाहि मां रतिमनोज्ञ महार्थकामैः ।  
कामाहि मां जनक सत्त्वमहाग्रबन्धो  
यदीच्छसे जीवितं मञ्जुनाथ ॥ 1 ॥

त्वं वज्रकाय बहुसत्त्वप्रियाङ्गचक्र  
बुद्धार्थबोधिपरमार्थहितानुदर्शी ।  
रागेण रागसमयं मम कामयस्व  
यदीच्छसे जीवितं मञ्जुनाथ ॥ 2 ॥

त्वं वज्रवाच सकलस्य हितानुकम्पी  
लोकार्थकार्यकरणे सद संप्रवृत्तः ।  
कामाहि मां सुरतचर्य समन्तभद्र  
यदीच्छसे जीवितं मञ्जुनाथ ॥ 3 ॥

त्वं वज्रकाय समयग्र महाहितार्थ  
संबुद्धवंशतिलकः समतानुकम्पी ।  
कामाहि मां गुणनिधिं बहुरत्नभूतं  
यदीच्छसे जीवितं मञ्जुनाथ ॥ 4 ॥

[ ॥ इति महावज्रधरस्तुतिः ॥ ]

## बौद्ध तान्त्रिक वाङ्मय में अपभ्रंश-3

—जनार्दन पाण्डेय—

[ 'धीः' के पूर्व अंकों में हमने अप्रकाशित तन्त्रग्रन्थों से उपलब्ध अपभ्रंश वचनों को उद्धृत कर विद्वानों के समक्ष उपस्थित करने का निवेदन किया था, उसी सातत्य में 38वें अंक में वज्रवाराहीकल्पमहातन्त्र के सप्तम पटल तक प्राप्त अंश दिया था, उसके आगे का अंश यहाँ दिया जा रहा है । ]

( 8 )

मार( ल ) वी तु महालक्ष्मी वरंदी कामरूपिणी ।  
डाहली च विदेशी च भडोरामा च मागधी ।  
तिलसुत्तिददं चण्डी नेपाली रसमासिनी ।  
राये( मे )श्वरी च वंगाडी खाडा च हलिकेलकी ।  
सुवर्णद्वीपी सिंग( ह )ली च डोमकी च कर्त्तोरकी ।  
सिंधु हिमालयी वडी कुरुती गन्धारी पथी ।  
जज्जवती वरुणा च ओडियाने लंपाकरी ।  
जालन्धरी अर्बुदी च कस्मीरी कौशलाकची( री ) ।  
जयंती त्रीशंकू भीरू हरी पूरनरोहिका ।  
धर्ममुनि कांभोजकी च भृंगालिकी गृहदेवती ।  
प्रेतपुरी वभरी च पेलवी चोपद( पे )लवी ।  
श्मशानी उपश्मशानी महोदधीटती( तटीं )खली ।

( 9 )

मकटक्रम सौमचन्द्रतमा कडोढ भरायातिदने सराटिवंखाह सुसिडा पक्ष  
सिहिवुकुज पजावओलं जा अकाकोकं जत्रिवंलुपुमुक्रां भगृ प्रेवपउस्म उमखज्ञा । इति

नाभि प्रदहुद्वमजासिमाको । इति हृदय । खसमस्वमेचनां अशनायु अंश्व विमूखिलन् । इति कण्ठस्य च । कृकभीननीतिच्यूधो उसभमस्फूअजावि अजनो दूइचं चग्रारौकां डाचं मावास्थूरः । इति मस्तक चक्रस्य ।

(अष्टम पटले)

( 10 )

योगिनीवर लब्धश्च जानतीहेवजन्मनि ।  
वाहि सहाव इसदभुजनु सोहि अवालहु आवि ।  
जिजु इन्नितं तु सदभुसरु जोहि सो नरु वज्ज धनु ।

( 11 )

सृणु स्वणु तु निभा अनिधातु उसहा इनि मोचनि ।  
तुमिहु सत्तर भेदनाइ वीरहु स भउतारणि ।

(नवम पटले)

( 12 )

भोकं डुक्का उचम्मञ्जलं वितवडोरिका ।  
वादन विकयीसिरा हरितु मस्तकं ।

( 13 )

सुअरओ इज मूदि अओः पीठ भ्रमनं न शक्यते ।

(त्रयोदशे पटले)

( 14 )

सुअर ओइज गुमूदि अओः सहज सहाइ तनुसरो ।  
पूण्डसंसार दुःखनहोजिप सूसो इबुद्ध जनो ।

(चतुर्दशे पटले)



( 15 )

जमदु अजोइ अन्थ फुहुतुसिस्मितइ अजरामरूपा वहुपुनिइ ।  
मरण नया इवादि अनुत्तओ जुइनि पापन पून्नइजूउ ।

( पञ्चदशे पटले )

( 16 )

इन्वि अनो इसत्तजन विसजइ बुद्धत्तकरो ।  
कंदबुद्ध सहाइ धरोः पोतह वज्रधरुइ धरु ।  
वयइ आच उगमम होअमर हतोइ संतुधरु ।  
करुणा यूवइ अच्छसतिजि जय चउ आरकरो ।  
सर्वामुक्तायनष्ठायं वाराह्यादिमथव्यंतरा ।

( 17 )

हृदयचक्रं द्वितीयं

जग इमं तनु विहिपहुके तु मिशुन पवेसओ ।  
उठ करुणा मताथु महु मण्डलचक्रं गीति ध्वनिः कामसिमह  
मुहवाज्जधन्ना सुमुण्डपः रउआरुगडो जिमत्तरो अमरभ्ये  
ओवि असि अपमुकामेमजाति मल्ला असइ सुदत्तउ ।  
रमरममाइ वज्जहरा इसह सणरु अननवाइ ।  
सत्तरो अपरभ्ये ओवि असि अपमुका दण्ड आइ जयतुसि सून कज्जअइ ।  
कायणु सह धम्म हतुमिइके अच्छसिस हज सरु अरुगाइ ।  
कामहुमइ परमाषा इज्जिमतुमि समरो अहजाइ ।

( सप्तदशे पटले )

वर्जदुर्दुरं सर्व तीर्थिकादिषु मन्त्रिणे ।  
 परमादिजगुमहा सुहमा इविहर जु जु इणि चक्कूमहाइ ।  
 अलिरिरि मोह पण्डला अनजा इ सहज सुन्दरिजल इमह सुहठाइ ।

( 18 )

तिहुवण सयल हजन बुद्ध स( म )हाइ कारुण जुवइ रमहू सहाइ ।  
 अजतु सिपरमाथुन भावहू: तिव्रमि सहि बुद्ध न पावहू ।  
 अरि अनंतर वहूजि अभिन्न हू जानहूलो अहू सर्वहू उत्तारण्ड पुरहू । अरि ।  
 ( द्वात्रिंशे पटले )

---

विशेष वक्तव्य—वज्रवाराहीकल्पमहातन्त्र से जो अपभ्रंश वचन उद्धृत किये गये हैं, वे ही सम्पूर्ण उसी क्रम में योगिनीजालतन्त्र में मिलते हैं, परन्तु पाठभेद तथा कहीं भिन्न पदों में आगे का पीछे और पीछे का आगे मिलता है इसलिये हमने उसका पाठ अलग से नहीं दिया है ।

# लुप्त बौद्ध वचन संग्रह

—बनारसी लाल—

[ बौद्धतन्त्र ग्रन्थ एवं उनकी टीकाओं के प्रकाशन के अभाव में इस स्तम्भ के अन्तर्गत धीः के पिछले अंकों में यदा कदा ही इस शीर्षक से सामग्री प्रस्तुत किया जा सका। सम्प्रति मालती शेंजे द्वारा सम्पादित होकर “षट्साहस्रिका हेवज्रटीका” (ष० हे० टी०), केवल आठ परिच्छेद, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली (2004) से प्रकाशित हुआ है। अतः इस अंक में उक्त टीका में उद्धृत अन्य ग्रन्थों के वचनों को संकलित कर प्रस्तुत किया जा रहा है। ]

## पञ्चलक्ष<sup>1</sup>

<sup>2</sup>अभेद्यं वज्रमित्युक्तं य वंकारः प्रकाशितः ।

अभेद्यं कायवाक्चित्तं वंकारेणाभिधीयते ॥

त्रिभवस्यैकता सत्त्वं एकारेणाभिधीयते ।

एकारः प्रज्ञया सार्द्धं वंकारस्त्रिकुलात्मकः ॥

नाभिमध्ये स्थितो वीरः कर्णिकागूढगोचरे ।

सस्वाभप्रज्ञया युक्तो वज्रसत्त्व प्रगीयते ॥

द्विभुजो हेरुकः प्रोक्तस्त्रैलोक्याक्षेप एव सः ।

स्वाभाविकः स एवोक्तो बुद्धकायो महासुखः ॥

ज्ञानवज्रं तदेव स्यात् सहजानन्द एव सः ।

निष्यन्दोऽपि स एवोक्तः एकसूक परिस्मृतः ॥

तूर्यावस्थाक्षयः सोऽपि विशुद्धपरमाक्षरः ।

बोद्धौ व्यवस्थितो योऽपि हृत्पद्मे स व्यवस्थितः ॥

1. पञ्चलक्षात्महातन्त्रादल्पतन्त्रे समुद्धृते ।  
सार्धसप्तशतेऽप्यस्मिन् बहुवज्रपदान्विते ॥  
हेवज्रचोदितेनैषा या षट्साहस्रिका मता ।  
सेयं तन्त्रप्रकाशार्थं मूलतन्त्रानुसारिणी ॥ (ष० हे० टी० 1.5-6)
2. ष० हे० टी०, पृ० 17-18



सत्त्वो हूंकार एवोक्तः अक्षोभ्यस्तु स एव च ।  
 चित्तवज्रः स एवोक्तः विष्णुरेव चतुर्भुजः ॥  
 ज्वलज्वलभ्यो स एवोक्तो धर्मकायः स एव हि ।  
 धर्मचक्रे स्थितो वज्री विरमानन्द रूपधृक् ॥  
 विपाकोऽपि स एवोक्तः सुषुप्तक्षयकारकः ।  
 महाज्ञानरसैः पूर्णो महासत्त्वः स उच्यते ॥  
 कण्ठसंभोगचक्रेशोऽमिताभोऽभिधीयते ।  
 वाग्वज्रः स एवोक्तः पद्महस्ततथागतः ॥  
 परमानन्दः स एवोक्तः पुरुषकारः प्रगीयते ।  
 संवृत्या विवृत्या च स्वप्नावस्थाक्षयः स च ॥  
 स एव संभोगकाय स्यात् बुद्धानां धर्मदेशकः ।  
 स एव किटिकिटिवज्रस्तृतीयो हेरुको भवेत् ।  
 नित्यं समयसंस्थित्या यः स्थितः स निगद्यते ॥  
 समयं शशभृतं शुक्रं ललाटस्थं महासुखम् ।  
 अमृते संस्थितः सत्त्व उँकारः परिगीयते ॥  
 वैरोचनः स एवोक्तः कायवज्रः स एव हि ।  
 कायवज्रधरो ब्रह्मा स एव परिगीयते ॥  
 आनन्दं ब्रह्मणो रूपं रूपकायः स उच्यते ।  
 चक्रहस्तः स एवोक्तः कायो निर्माणलक्षणः ॥  
 विवृत्या स च वैमल्यो जाग्रतक्षय एव सः ।  
 स एव पिचूवज्र स्यात् अष्टास्यो हेरुकः स्मृतः ॥  
 चतुःपादो महावीरो भुजषोडशसंयुतः ।  
 एवं कायप्रभेदेन चतुर्थो हेरुकः स्मृतः ॥

स्वाभाविकाद् भवेद् धर्मधर्मात् संभोग एव सः ।  
 तस्मात् निर्माणकायः स्यादेवं कायचतुष्टयम् ॥  
 कायवज्रधरो ब्रह्मा वाग्वज्रस्तु महेश्वरः ।  
 चित्तवज्रधरो विष्णुः वज्रसत्त्वो महासुखः ॥

### मूलतन्त्र

( 1. )

<sup>1</sup>स्वाभाविकेन संयुक्तं चतुःकुलमिति स्मृतम् ।  
 चतुःकारितभेदेन कुलानां सा व्यवस्थितिः ॥  
 ज्ञातव्यो योगयुक्तेन बुद्धमार्गाभिलाषिणा ॥

( 2 )

<sup>2</sup>सत्त्वधर्मनिरालम्बा करुणायं त्रिधा स्मृता ।  
 महाशब्दानिरालम्बा हेकारेणाभिधीयते ॥  
 कायवाक्चित्तयोगेन पूर्वो वंकार एव सः ।  
 वज्रशब्देन एकारः सर्वाकारा च शून्यता ॥  
 अनयोर्या समापत्तिः योगशब्देन गीयते ।  
 प्रज्ञोपायात्मकं तन्त्रं योगतन्त्रं प्रगीयते ॥  
 योगो नोपायशब्देन प्रज्ञाशब्देन वा भवेत् ।  
 योगं तन्त्रमिदं [ नाम ] हेवज्रं हि निरन्वयम् ॥  
 समाजादीनि सर्वाणि प्रज्ञोपायात्मकानि [ वै ] ।  
 योगतन्त्राणि सर्वाणि प्रज्ञोपायस्य नामभिः ॥

1. ष० हे० टी०, पृ० 18

2. ष० हे० टी०, पृ० 19-20

संचारो योगिनीनां तु यत्रोपायस्य संस्थितिः ।  
संवृत्या योगिनीतन्त्रं बालान् आगदितं मया ॥

यत्रोपायस्य संचारः प्रज्ञाया संस्थिती भवेत् ।  
उपायतन्त्रं एवोक्तं संवृत्यास्तु यथा तथा ॥

यथा यथा विचार्यन्ते मुद्रामण्डलभावनाः ।  
तथा तथा विशीर्यन्ते उत्पादव्ययलक्षणाः ॥

प्रज्ञोपायसमापत्तिस्त्रिवज्राभेदलक्षणा ।  
ज्ञानज्ञेययोरैक्यं शून्यताकरुणाद्वयम् ॥

शून्यता चानिमित्तं च तथाप्रणिहितं पुनः ।  
अनभिसंस्कारश्च विमोक्षास्ते चत्वारः परिकीर्तितः ॥

करुणा-मैत्री-मुदिता-उपेक्षा चतुर्थिका ब्रह्मविहारास्ते ।  
सर्वधर्माविकल्पतः निरावरणधर्मेणाद्वयास्तेन कल्पिताः ॥

प्रज्ञोपायात्मकं तद्वत् कायवज्राणि चाद्वयाः ।  
षड्स्कन्धा धातवस्तद्वत् विषय इन्द्रियाणि च ॥

क्रियाकर्मेन्द्रियाण्येव अद्वयं येन संस्थितः ।  
संवरः सर्वबुद्धानां एवङ्कारे प्रतिष्ठितः ॥

पश्चात् त्रिकुलभेदेन पञ्चकुलविभेदतः ।  
प्रज्ञोपायात्मकं तन्त्रं देश्यमानं मया शृण्वेति ॥

( 3 )

<sup>1</sup>वज्रगर्भं प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं शृणु ।  
कारणं सर्वसिद्धीनां योगिनां मुक्तिदायकम् ॥



वज्रसत्त्वो य आख्यातो ज्ञानकायो निरन्वयः ।  
त्रिसूकं वरटके नाथो नाभिगुह्यान्तरे स्थितः ॥

अधः ऊर्ध्वं निर्गता तस्य विद्युद्गण्डसमप्रभा ।  
चोदयन्ति शरीरस्थान् विज्ञानेन्द्रियधातुकान् ॥

नाभौ सा मध्यमे सूके संस्थिता भुवनेश्वरी ।  
गुह्ये दक्षिणे सूके पतमाना यथा तडित् ॥

स्वाभप्रज्ञा सा विख्याता चण्डाली साऽत्र कथ्यते ।  
तस्याऽधः त्रिसूकानि ऊर्ध्वं त्रीणि तथैव च ॥

ब्रह्मसूकं स्थितं मध्ये विष्णुसूकं हि वामतः ।  
दक्षिणे रुद्रसूकं तु विष्णुमूत्रशुक्रवाहकम् ॥

राहुसूकं स्थितं मध्ये चन्द्रसूकं तु वामतः ।  
दक्षिणे सूर्यसूकं तु तोयाग्न्याकाशवाहकम् ॥

ललना वामे विख्याता रसना दक्षिणे स्मृता ।  
मध्यमे ह्यवधूती स्यात् डोम्बिनी वायु कथ्यते ॥

नाभे हृदयतो मध्ये त्रिपथं कृत्वा पुनर्गताः ।  
हृदयात् कण्ठमध्ये तु त्रिपथं कृत्वा पुनर्गताः ॥

ललाटे कण्ठयोर्मध्ये त्रिपथं कृत्वा पुनर्गताः ।  
ललाटोष्णीषयोर्मध्ये त्रिपथं कृत्वा पुनर्गताः ॥

उष्णीष-नासिका मध्ये त्रिपथं कृत्वा पुनर्गताः ।  
नासिकावामरन्ध्रे तु ललना संव्यवस्थिता ॥

दक्षिणे रसना नाडी मध्ये चावधूतिका ।  
नाभ्यादि पञ्चचक्राणि त्रिपथं पञ्चधैव तैः ॥

कर्णिकाकर्णिका मध्ये अवधूत्या गतिरागतिः ।  
 पत्रेभ्योऽपि पत्रेषु ललनारसनयोः स्मृता ॥  
 नाभे राहुस्ततः सूर्यः चन्द्रं चन्द्राङ्गमेव च ।  
 भेदयित्वा गतोष्णीषं नाडिका सावधूतिका ॥  
 कामोन्मादो यदा पुंसां ललनारसनाप्यथ ।  
 तयोः संपुटयोगेन चण्डाली ज्वलति ध्रुवम् ॥  
 ज्वलिता नाभिचक्रे सा डोम्बीमार्गेण निःसृता ।  
 राहुकं शशिनं भित्वा हंकारं तं च सा स्पृशेत् ॥  
 तया तु स्पृष्टः स हंकारो द्रवते अमृतं सितम् ।  
 स्कन्धधात्वादिके दग्धे पञ्चमण्डल वाहिके ॥  
 विषयेन्द्रियनिरुद्धे चानन्दाद्यै समुच्छ्रिते ।  
 स्रवन्ति बिन्दुनीन्दो हंकारो मूर्ध्नि संस्थितः ॥  
 ललाटे चन्द्रतः सूर्ये कण्ठाद्राहो ततो गतः ।  
 नाभौ चण्डालिका विष्टा गुह्यचक्रे ततो गता ॥  
 संपाते गुह्यचक्रेऽस्मिन् कथितोऽयं महापशुः ।  
 त्रिशूलाधः त्रिनाडीनां यत्र रन्ध्रं प्रदर्शितम् ॥  
 सप्तजन्मपशुश्चैव खेचरीसिद्धिदायकः ।  
 मूर्च्छितो हरते व्याधिं जारितः स्कन्धधातुकम् ॥  
 ददाति चक्रवर्तित्वं विषयेन्द्रियमारितः ।  
 खेचरत्वं ददात्येष अणिमादिगुणैर्युतः ॥  
 बुद्धत्वं ददते क्षिप्रं जाग्राद्यैरनुसारतः ।  
 बाह्ये सूतो यथा बद्धः तथा ज्ञानरसोऽप्यम् ॥

एवं ब्रह्मापशुर्विष्णुर्गुह्यचक्रे निपातितः ।  
ददाति विपुलमायुर्यावदाहतसंप्लवः ॥

ऊर्ध्वं राहूः पशुः प्रोक्तः चन्द्रसूर्यो महापशु ।  
पतितो ( ता ) ब्रह्मरन्ध्रेण भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥

रक्तं स्नायुस्तथा मज्ज पातनीया प्रयत्नतः ।  
एतेव पशवो ज्ञेया नान्ये बाह्यस्तु देहिनः ॥

सप्तजन्मा तु सर्वेषां पशूनां परमेश्वरः ।  
सप्तजन्मा यथा देहे तथा वक्ष्यामि तत् शृणु ॥

अन्नपानरसं भुक्तं पीतं च षड्विधम् ।  
पाकतो रसतां याति प्रथमं जन्म उच्यते ॥

तस्माद्रुधिरतां याति द्वितीयं भवति स्फुटम् ।  
तृतीयं मांसतां याति चतुर्थञ्चर्मतां व्रजेत् ॥

नाडीत्वं पञ्चमे याति अस्थित्वं याति षष्ठमे ।  
सप्तमे मज्जतां याति सप्तावर्तो ततो भवेत् ॥ इति ।

तस्यैवाधेययोगेन षट्कोषं कुलमुच्यते ।  
कुलं शरीरमित्युक्तं कोलेयं शुक्रमुच्यते ॥

तस्य शक्तिः रजः प्रोक्ता शरीरोत्पत्तिकारणम् ।  
विज्ञानं व्यापकं ज्ञानं तयोर्मध्ये व्यवस्थितम् ॥

चन्द्रादित्यं समागम्य हेरुकः त्रिभवात्मकः ।  
ऊर्ध्वाधः संस्थितो वीरो डाकिनीचक्रनायकः ॥

चतुर्भिर्नाडिकाभिश्चोष्णीषचक्रमुच्यते ।  
षोडशभिर्ललाटे च द्वात्रिंशद्भिश्च कण्ठके ॥



हृदये चाष्टभिश्चक्रं चतुःषष्टिभिरेव च ।  
नाभिचक्रं समाख्यातं द्वात्रिंशद्भिश्च गुह्यके ॥

चक्रारो नाडिकाः प्रोक्ता अथवा पद्मदलानि वै ।  
आधेयास्तेषु योगिन्यः क्रियाङ्कुर्वन्त्यनेकधा ।  
विषयेन्द्रियस्वभावेन विज्ञानेन प्रचोदिताः ॥

सर्वं पीठोपपीठाद्यं नाडी पद्मदलानि तत् ।  
चतुर्देवीभिरुष्णीषे महामाया प्रकथ्यते ॥

उदयो नाभिचक्रेऽस्य प्रथमे परिमण्डले ।  
ललाटे पिचूवज्रं स्यात् अष्टनाडीसमन्वितम् ॥

चक्षुर्द्वये तथा श्रोते प्रा(ग्रा)णे जिह्वा च लम्बिका ।  
गौर्याद्या देवता ह्येता रूपाद्या भूमिकादयः ॥

नैरात्मेन्दुकलाभेदेरस्मिन्नेव प्रगीयते ।  
त्रिमुखः षड्भुजः कण्ठे द्वात्रिंशद्भिः स एव हि ॥

हृदये चाष्टदेवीभिः संस्थितोऽयं चतुर्भुजः ।  
चित्तवज्रे महाविष्णुरक्षोभ्यः कुलसम्भवः ॥

त्रैलोक्याक्षेपको नाभ्यां चतुःषष्टिरेव सः ।  
पञ्च डाका अमी ख्याता डाकिन्यः पञ्चधातवः ॥

पञ्चचक्रे स्थिता एता गुह्ये षष्ठो महाप्रभुः ।  
द्वात्रिंशद्भिः डाकिनीभिः सार्द्धं त्रैधातुकेश्वरः ॥

षट्चक्रेषु देवीनाञ्च षट्पञ्चदशाधिकं शतम् ।  
कालचक्रमिति ख्यातं षट्कुलैरेकपिण्डितम् ॥

ललाटे शिरसि या नाड्यो विंशतिः श्लेष्मवाहिकाः ।  
चत्वारिंशन्तथा कण्ठे हृदये पित्तवाहिकाः ॥

नाभौ गुह्ये षोडशा या अशीति वायुवाहकाः ।  
 सन्निपातस्वभावा या दशनाड्यो गुह्यचक्रे ॥  
 अधोर्ध्वं त्रिनाड्यो या षट्चक्र-निरोधिकाः ।  
 उपनाड्योऽनेकधातुभ्यो देहमापूर्य संस्थिता ॥  
 द्वासप्ततिसाहस्रास्ताः तावत्यो देवताः तनौ ।  
 लोमसंख्यानि भूतानि सार्द्धकोटित्रयाणि च ॥  
 कोशसंख्या स्थिता सिद्धा यथा बाह्ये तथा तनौ ।  
 पाणीपलं तु षट्श्चासैः षष्टिपाणीपलैर्घटि ॥  
 मुहुर्तेकं घटिभ्यां स्यात् पादोनाभिश्चतसृभिः ।  
 प्रहरार्धं तद्भवेदेकं पञ्चभिर्लग्नं भवेत् ॥  
 प्रहरसार्धं लग्नं स्यात् सन्धौका प्रहरद्वयम् ।  
 ताभिश्चतसृभिः प्रोक्तमहोरात्रं हि देहिनाम् ॥  
 लग्नैर्द्वादशभिस्तच्च श्चासैः षट्शताधिकैः ।  
 एकविंशसहस्रैश्च रवेर्दण्डैर्यथा समा ॥  
 चतुर्विंशतिपक्षैश्च मासैर्द्वादशभिस्तथा ।  
 ऋतुभिः षड्भिर्यथा प्रोक्तं चतुर्भिश्च समैर्युगैः ॥  
 त्रिकालेरयनाभ्यो स्यात्तथा देहे दिनं भवेत् ।  
 श्चासैर्नवशतैः पक्षो मासोऽष्टादशभिः शतैः ॥  
 षट्त्रिंशद्भिः ऋतु प्रोक्ता चतुःपञ्चाशतयुगम् ।  
 द्वासप्ततिशतैः कालः अयनमष्टशताधिकैः ॥  
 सहस्रैर्दशभिस्तद्वत् द्वाभ्यां वर्षैकमुच्यते ।  
 संक्रान्तौ मध्यमा श्वासाः षट्पञ्चाशत् सपादिकाः ।  
 अधिकः पञ्चसप्तत्या षट्शता द्वादशेषु च ॥

एवं च शतश्वासैः त्रिपक्षवर्षत्रयम् ।  
 अवधूत्या भवेत् कालः प्राणिनां मृत्युदायकः ॥  
 ललनायां दिवारात्रं यदा बहति मारुतः ।  
 त्रिवर्षैर्मरणं तस्मात् चन्द्रस्यारिष्टितो भवेत् ॥  
 पञ्चरात्रं यदा सूर्ये प्राणो वहति देहिनाम् ।  
 त्रिवर्षैर्मरणं तस्मात् सूर्यारिष्टेन दक्षिणे ॥  
 वामनाड्यां यदा प्राणो वहत्येष दिनत्रयम् ।  
 नाभ्या राशिदलत्यागः त्रिवर्षादयनक्षयः ॥  
 द्वितीये षड्दिनान्येवं त्रिमासे वहति ध्रुवम् ॥  
 एवं त्रिभिर्त्रिभिर्मासैर्दिनत्रयविवर्धनात् ।  
 एकादशदलान्येष त्यजेद्वर्षत्रयं क्रमात् ॥  
 त्रयः त्रिंशद्दिनं यावत् वामा वहति निरन्तरम् ।  
 गुणत्रयविभेदेन ततः सूर्ये समाविशेत् ॥  
 दिनत्रयं ततो मध्ये कर्णिकायां समाविशेत् ।  
 एकरात्रं ततः प्राणो श्वासान् त्यजति मृत्युतः ॥  
 दशरात्रं दक्षिणे नाड्यां यदा वहति मारुतः ।  
 द्वितीये शशिपत्रे स्यात् द्विवर्षैर्मरणं ततः ॥  
 तिथ्याख्यैरेकवर्षं स्यात् तृतीये रासिपत्रके ।  
 चतुर्थे षण्मासांश्च विंशतिर्दिवसान् वहेत् ॥  
 त्रिमासायुर्वहेद्यत्र पंचमे पंचविंशति ।  
 षष्ठे मासद्वयं ह्यायूः षड्विंशद्दिनं वहेत् ॥  
 सप्तमे मासमेवायूः सप्तविंशद्दिनं वहेत् ।  
 त्रयः त्रिंशद्दिनान्यस्माद्बहृत्येष निरन्तरम् ॥



अष्टमं नवमं पत्रं दशमं चैकादशमं क्रमात् ।  
त्यजेत्तानि पत्राणि तिथिदिक् पंचगुणैर्दिने ॥

सव्यानाडी ततः त्यक्त्वा वामां गच्छति मारुतः ।  
दिनद्वयं ततो याति दिनमेकं मध्यमापदम् ॥

श्वासक्षयं ततः कृत्वा मरणादुत्कामत्यसौ ।  
अधः शुक्रक्षयं याति ऊर्ध्वं मातृरजो व्रजेत् ॥

स्वकर्मवासनाबद्धं विज्ञानं प्राणसंयुतम् ।  
मरणात्पुनर्भवं याति न तु तेन विनापरम् ॥

उपाध्यायाद्यथा विद्या दीपादीपो यथा भवेत् ।  
मुद्रायाऽपरा मुद्रा दर्पणे मुखतो मुखम् ॥

रवात्प्रतिरवोत्पत्तिः सूर्यकान्ते यथा वह्निः ।  
नार्को नार्कं विना जातः जिह्वास्त्रावोऽम्लभक्षणात् ॥

आम्लो नाम्लविना जातो बीजादेवाङ्कुरो यथा ।  
न च तेन विना जातः फलहेतुस्वभावतः ॥

न स्वतो नापि परतो न द्वाभ्यां नाप्यहेतुतः ।  
उत्पन्ना जातु विद्यन्ते भावाः क्वचनं केचन ॥

पितुर्मातुः सितं रक्तं प्राणापानद्वयं तथा ।  
चित्तवज्रसमायुक्तं देहस्योत्पत्तिकारणम् ॥

अमिताभो रत्नधृक् प्राणः अपानश्च यथाक्रमः ।  
कायवाक्चित्तरागाणि मुखानि चित्तवज्रिणः ॥

शुक्रादुत्पद्यते चन्द्रः रक्तात् सूर्यसमुद्भवः ।  
प्राणतो राहुनिष्पत्तिः कालाग्नेरप्यपानतः ॥

शुक्रतो नाडीकोत्पत्तिः शुक्रादस्थिसमुद्भवः ।  
 रजसो रक्तसंभूतिः रक्ता[त्] मांससमुद्भवः ॥  
 मांसतः चर्मणा जातिः मज्जजन्मास्थिनो भवेत् ।  
 शुक्रं वज्रं रजो घण्टः नाडीपद्मं महामणिः ॥  
 रक्तं चक्रं तथाऽस्थिनि खड्गो मांसं तथा स्मृतम् ।  
 उत्पलं सितपद्मञ्च चर्मं मज्जश्च देहिनाम् ॥  
 एतान्यष्टौ स्वचित्तस्य वक्त्राणि च यथाक्रमम् ।  
 पूर्ववक्त्राणि च पादाः स्युः चन्द्रसूर्यतमोग्नयः ॥  
 रक्ततो मृण्मयाभूमिः मांसधातुः प्रगीयते ।  
 शुक्रतः कठिना-भूमिः पाषाणास्थिमयी च सा ॥  
 चन्द्रतः तोयनिष्पत्तिरग्नेर्निष्पत्तिः रक्तः ।  
 राहुतः प्राणानिष्पत्तिः अपानस्य अग्नितः स्मृता ॥  
 शुक्रेणोत्पादिता जिह्वालम्बिका सर्वदेहिनाम् ।  
 रजसोत्पादितं नेत्रं वामं चैव तु दक्षिणम् ॥  
 प्राणेनोत्पादितं नूनं प्राणरन्ध्रद्वयं तथा ।  
 शून्येनैव संजातं श्रोत्ररन्ध्रं द्विधा तथा ॥  
 अपानेनैव संजातं अधः स्तोत्रत्रयं तथा ।  
 राहुणोत्पादितं तु यः स्तनरन्ध्रद्वयं तथा ॥  
 अपानेनाण्डयुग्मं स्यादेवं तनुधातवः ।  
 शुक्रेणैव त्रिधा धातुः रजस्य त्रिधाः पुनः ॥  
 षट्कौषिकमिति ख्यातः कायः कायेन्द्रियं द्विधा ।  
 तोयेन जनिता वामा दक्षिणा जनिताग्निना ॥

प्राणेनैवामृतं तस्मादूर्ध्वनाडित्रयं स्मृतम् ।  
वायुना जनिता वामा मेदिन्या मध्यमा त्वधः ॥

सव्यापानेन नाडी जनिता नात्र संशयः ।  
ललाटे संस्थितं कायं सम्पूर्णचन्द्रमण्डले ॥

वाग्वज्रं कण्ठदेशे तु सम्पूर्णसूर्यमण्डले ।  
राहुमण्डलमध्यस्थं विज्ञानं सर्वदेहिनाम् ॥

पृथिव्या संस्थितं रत्नं राहुपुच्छे न संशयः ।  
कालाग्नि अमोघो विश्ववज्रोपरि स्थितः ॥

चक्रं पद्मं तथा वज्रं रत्नं खड्गश्च पञ्चमः ।  
षष्ठः वज्रमणौ पुंसां बुद्धानां शिरसि स्मृतम् ॥

एवं षट्कुलान्येते सर्वबुद्धा महाबलाः ।  
मेदिन्या जायते गन्धोऽग्निपाकाद्रसो भवेत् ॥

अङ्कुराद्यं भवेत्तोयात् स्पर्शोऽसौ वायुतो भवेत् ।  
प्राणवाता भवेत् शब्दमपानाद् धर्मधातुकम् ॥

मनेन्द्रियं हि तत्रैव ज्ञातव्यं सर्वदेहिनाम् ।  
यमान्तकोऽस्थिसम्भूतो रक्तात्प्रज्ञान्तकः स्मृतः ॥

पद्मान्तकं तु नाडीभ्यो मांसाद्विघ्नान्तकः स्मृतः ।  
मज्जतोऽप्यचलः प्रोक्तः टक्किराजस्तु चर्मतः ॥

लोमतो नीलदण्डः स्यान्नखतोऽपि महाबलः ।  
केशादुष्णीषचक्री स्यात् शुम्भराजोऽधः केशतः ॥

सन्धयो हस्तपादे या गुणत्रयविभेदतः ।  
राशयस्ता धरादीनां चतुर्णां द्वादशा स्मृता ॥



षष्टि ऋतुर्दिनान्येते पर्वाणि अङ्गुलिकाष्ट वैः ।  
अध ऊर्ध्वं ये स्थिता दन्ता नक्षत्राण्यत्र देहिनाम् ॥

ध्रुवं शुक्रगतं मूर्ध्नि रजोऽगस्तिरधो गतिः ।  
यथा बाह्ये तथा देहे गर्भादुत्पद्यते ध्रुवम् ॥

द्वादशाभ्यार्थ(?) हेरुको द्वादशैर्भुजैः ।  
द्वादशाङ्गनिरोधेन अवस्थानात् चतुर्मुखः ॥

षोडशेन्दुकलाहस्तः षोडशाकारतत्त्ववित् ।  
अष्टरन्ध्रनिरोधे[न] अष्टास्य परमेश्वरः ॥

चन्द्रः सूर्यः तमो वह्निः पदैर्येन निरोधितः ।  
पश्चान्निरोधयित्वा तु चतुर्विंशतिभिर्करैः ॥

चतुर्भिः पूर्ववत् वक्त्रैः कालचक्रः समुत्थितः ।  
चतुस्त्रिंशत्भुजैरन्यः कादिव्यञ्जननिरोधतः ॥

षोडशस्वरनिरोधेन चरणाः षोडशः स्मृताः ।  
नवद्वारनिरोधेन नवास्यो वज्रभैरवः ॥

एवमादीनि तन्त्राणि कायवाक्चित्तनिरोधनात् ।  
देशितानि जिनेन्द्रेण बालानां तद्विशुद्धितः ॥

( 4 )

<sup>1</sup>हेतुना सदृशं तज्जं फलं सर्वत्र दृश्यते ।  
न हि क्रोद्रवबीजेभ्यः शालिधान्यं भविष्यति ॥

विकल्पबीजसम्भूतं सविकल्पफलं भवेत् ।  
निर्विकल्पसमुत्पन्नं निर्विकल्पफलं भवेत् ॥



( 5 )

<sup>1</sup>यथा बीजं तथा वृक्षो यथा वृक्षस्तथा फलम् ।  
दृश्यते सर्वलोकेऽस्मिन् प्रतीत्योत्पादमेव तत् ॥

योऽन्यजातिः भवेन्मन्त्रः सोऽन्य कर्म न साधकः ।  
न सूर्यः कुत्रचिल्लोके दाघोपशमकारकः ॥

मूलतन्त्रे यथा प्रोक्तं हेवत्रेण मम स्फुटम् ।  
लघुतन्त्रे तदेव तावन्निर्देशादुच्यते मया ॥

भूबीजैः स्तम्भनं कुर्यान् मोहनं कीलनं तथा ।  
तोयबीजैः सदा शान्तिपौष्टिकं वश्यं निर्विषं तथा ॥

तेजोबीजैः महाकृष्टिवश्यं क्षोभं च सर्वथा ।  
विद्वेषोच्चाटनं वातैर्विषसंक्रमणं तथा ॥

शून्यबीजैर्विषच्छेदं मारणं जीवनं तथा ।  
जीवनोत्थापनानन्दं ज्ञानबीजैः प्रसाधितम् ॥

मूकत्वं बधिरत्वं षण्ढिकरणमेव च ।  
चित्तवाक्कायबीजैश्च कुर्यान्मन्त्री यथाक्रमम् ॥

भूतोयाग्निमरुत्शून्यं ज्ञानमण्डलयोगतः ।  
स्तम्भनादीनि कर्माणि साधयेत् साधकोत्तमः ॥

षण्ढिकरणं मूकत्वं चान्धत्वं प्राणरोधनम् ।  
बधिरत्वं मनोन्मादं पूर्वबीजैस्तु प्रसाधितम् ॥

गिरिगह्वरकुञ्जेषु महोदधितटे तथा ।  
श्मशानेष्वदिसिद्धौ च एषु स्थानेषु कारयेत् ॥

मन्त्रजापं तथा ध्यानं होमं मण्डलवर्तनम् ।  
प्रतिकर्मानुरूपेण नान्यथा सिद्धिदा भवेत् ॥

अन्य स्थाने नरस्त्रिणां साधिता मन्त्रदेवता ।  
देवता कुरुते कर्म तन्त्रमन्त्रप्रचोदिता ॥

तस्मान्नामञ्च कायञ्च जप्यं भाव्यं विचक्षणैः ।  
मूलमन्त्रौ भवेत्कायो हृदयाख्यो वाक्स्वरूपवान् ॥

उपहृदयं एवं स्यात् चित्तमन्त्रमुदाहृतम् ।  
ज्ञानबीजमिति ख्यातं ज्ञानमन्त्रः स उच्यते ॥

बीजेषु उपहृदयञ्चैव हृदयं मूलमन्त्रः ।  
ज्ञानं चित्तवाक्कायं भाव्यं जप्यं यथाक्रमात् ॥

जप्यं पूज्यं प्रयत्नेन यावत् भवेत् सिद्धिदम् ।  
अन्यथा विधिहीनस्य मन्त्रसिद्धिर्भवेन्न च ॥

श्रद्धयास्य गृहीतस्थ कायक्लेशन्तु केवलम् ।  
यरलवास्तु ये वर्णा वायुतेजोधराम्बुजाः ॥

पूर्वदक्षिणवारुण्ये उत्तरेषु वियोजयेत् ।  
दीर्घावह्नौ च नैऋत्ये मरुत ईश्वरक्रमात् ॥

ऊर्ध्वेऽधसि हहादेयाः मध्ये अं अः प्रपूजयेत् ।  
मण्डलं सर्वबुद्धानां कारयेत् गुरुकाग्रतः ॥

सद्धर्म-पठनार्थं हि अन्यत् पञ्चजिनात्मकम् ।  
वायुमण्डलधर्मे वृतं पूर्वविदेहकम् ॥

तेजो मण्डलधर्मेण जम्बुद्वीपं त्रिकोणकम् ।  
चतुरस्रापरगोदानी पृथिवीमण्डललक्षणा ॥

तोयमण्डलधर्मेणार्धचन्द्रोत्तरकुरुः ।  
 ब्रह्माण्डं शून्यरूपेण चन्द्रमण्डललक्षणम् ॥  
 अधसि ज्ञानरूपेण कालाग्निः सूर्यमण्डलम् ।  
 मध्ये बिन्दुविसर्गः स्यादध ऊर्ध्वं देवपर्वतः ।  
 एवं मण्डलकं कृत्वा ततो मन्त्रादिकं पूजयेत् ॥  
 रजो मण्डलवत् कुर्यादपरं मण्डलं भुवि ।  
 षष्ठस्कन्धधातुरूपाद्या षड्विंशत्पूजयेत् सदा ॥  
 पृथ्वीः सलिलं वह्निः वायुः शुक्रं रजस्तथा ।  
 षड्धातुक इह ख्यातो रूपस्कन्धः शरीरिणाम् ॥  
 कण्ठतालव्य-मूर्द्धन्य-ओष्ठ्य-दन्तानुनासिकम् ।  
 संज्ञापि षड्विधाख्याता भावाभावार्थसूचकी ॥  
 नयनश्रवणघ्राणजिह्वाकायमनेन्द्रियैः ।  
 विज्ञानस्कन्ध आख्यातः षड्विधः चक्षुरादिना ॥  
 एवं रूपस्य शब्दस्य गन्धस्य च रसस्य च ।  
 स्पर्शस्य धर्मधातोश्च विज्ञानाद् वेदना स्मृताः ॥  
 एवं षडिन्द्रियद्वारैर्विज्ञानानां प्रवर्तकः ।  
 संस्कारः षड्विधः प्रोक्तो विषयेषु प्रवर्तकः ॥  
 प्राणापानयोर्नित्यं पद्मनाडीषु वाहकः ।  
 ऊर्ध्वाधस्त्रिषु मार्गेषु ज्ञानस्कन्धोऽपि षड्विधः ॥  
 षड्विंशद्भिर्महाचितं सप्तत्रिंशतिमं परम् ।  
 धातुभिर्वेष्टितं योगी पूजयेदादिकादिभिः ॥  
 आदिकादिस्वभावेन ते द्वासप्ततिधातवः ।  
 षड्वर्गकाद् ये वर्णा ह्रस्वदीर्घप्रभेदतः ॥



द्वासप्ततिसंख्याताः स्वराः षट्त्रिंशदेव ते ।  
आदिकादि समायुक्तैरक्षसूत्रं प्रगीयते ॥

अष्टोत्तरशतैर्वर्णैर्मन्त्रजपाय योगिनाम् ।  
षट्त्रिंशद् व्यञ्जनैर्ह्रस्वैरष्टादशैर्युतम् ॥

अष्टोत्तरशतार्धैः तदक्षसूत्रं प्रगीयते ।  
नक्षत्रपदभेदेन तृतीयं परिगीयते ॥

नक्षत्रार्धप्रयोगेण चतुर्थं तद्वदेव हि ।  
षट्त्रिंशत् स्वरभेदेन पञ्चमः परिगीयते ॥

नक्षत्रभोगभेदेन षष्ठमः परिगीयते ।  
अष्टादशस्वरभेदेन सप्तमं परिगीयते ॥

पुनर्व्यञ्जनभेदेन षट्त्रिंशद्विस्तथाष्टमः ।  
एवमष्टविधा प्रोक्तमक्षसूत्रं तपस्विनाम् ॥

स्फटिकाष्टदशैरेकं शान्तिकं कारयेद्व्रती ।  
मौक्तिकः षट्त्रिंशद्विः स्वराभ्यां पौष्टिके नृणाम् ॥

सप्ताविंशद्विः नक्षत्रैर्नृदन्तैर्मारणं स्मृतम् ।  
तद् द्विगुणं खरदन्तैः स्याद्विद्वेषोच्चाटनेऽपि च ॥

षट्त्रिंशद्व्यञ्जनैः शुद्धं वश्याद्यं पुत्रजीवकैः ।  
स्वरव्यञ्जनसंमिश्रैः पद्माख्यैः चतुरोत्तरैः ॥

पञ्चाशद्विर्महाकृष्ट्या अथवा चन्दनबीजकैः ।  
नक्षत्रार्द्धपदैरन्यत्र रिष्टकैर्मोहने स्मृतम् ॥

स्वरव्यञ्जनपदैः शुद्धं रुद्राक्षं स्तम्भने स्मृतम् ।  
एवमष्टविधं प्रोक्तं शुद्धवैशुद्धकर्माणि ॥



मिश्रैर्नानाविधैर्बीजैर्मणिभिर्वाऽत्र कारणात् ।  
धातुवर्णेषु भेदेन यथालब्धं तथा कुरु ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि योगिनां मन्त्रलक्षणां ।  
येन सिद्धिकरं शीघ्रं मन्त्रं भवति कुलोदितम् ॥

अकुहक्षाश्च ये कण्ठ्यः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।  
आकाशधातुसंभूताः हकारज्ञपकेन ते ॥

इचुयशाश्च तालव्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।  
वायुधातुसंभूताः यकारज्ञपकेन ते ॥

ऋटुरशा( षा )श्च मूर्धन्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।  
तेजोधातुसमुद्भूता रकारज्ञपकेन ते ॥

उपुपधश्च ये ओष्ठ्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।  
तोयधातुसमुद्भूताः वकारज्ञपकेन ते ॥

लृतुलसा[ श्र ] ये दन्त्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।  
पृथ्वीधातुसमुद्भूता लकारज्ञपकेन ते ॥

अनुस्वरो विसर्गश्च स्वरव्यञ्जनवर्जितः ।  
ज्ञानधातुसंभू( समुद्भू )तः एवं षट्धातुकं कुलम् ॥

भूतोयहुतभुक्वायु शुक्रं चैव रजः भूतम् ।  
षट्धातुक इह ख्यातो महापुरुषपुद्गलः ॥

जनकः सर्वमन्त्राणां आदिकाद्यात्मकः प्रभुः ।  
स्कन्धधातुमन्त्रात्मा प्रत्याहारेण शंकरः ॥

देशयेत् सर्वसिद्ध्यर्थं मन्त्रसिद्धो तमेव च ।  
सर्वज्ञोऽपि तथा मन्त्रान्न बालपठनक्रमैः ॥

मिश्रा ये कण्ठतालव्याः कण्ठ्योष्ठ्यव्यञ्जनस्वराः ।  
द्विस्थानीयाश्च ये चान्ये शुद्धाः प्रकृतिजा न ते ॥

एकस्थाने तु कण्ठाद्ये शुद्धाः प्रकृतिजाः स्वराः ।  
उच्चारितः महामन्त्रो द्विस्थानोच्चारणान्न सः ॥

अकारस्वरसंयुक्तं स्वस्थानं न जहाति यत् ।  
प्रकृत्या परिशुद्धं तद् व्यञ्जनं विसर्गबिन्दुकम् ॥

इका[रा]दिस्वरैर्युक्तं द्विस्थाने यत् प्रवर्तते ।  
न तत् प्रकृतिजं शुद्धं व्यञ्जनं द्विगुणं भवेत् ॥

माहेन्द्रमण्डलं पीतं लकाराक्षरसंभवम् ।  
वारुणमण्डलं शुक्लं वकाराक्षरसंभवम् ॥

आग्नेयमण्डलं रक्तं रेफाक्षरसमुद्भवम् ।  
वायव्यमण्डलं कृष्णं यकाराक्षरसमुद्भवम् ॥

आकाशमण्डलं श्यामं हकाराक्षरसमुद्भवम् ।  
विसर्गबिन्दुसंभूतं ज्ञानाख्यं सर्ववर्णजम् ॥

एवं त-वर्गजं पीतं लृकारस्वरसम्भवम् ।  
शुक्लं प-वर्गजं प्रोक्तं उकारस्वरसंभवम् ॥

रक्तं ट-वर्गसमुद्भूतं ऋकारस्वरसंभवम् ।  
कृष्णं च-वर्गजं प्रोक्तं इकारस्वरसम्भवम् ॥

श्यामं क-वर्गजं प्रोक्तं अकारस्वरसम्भवम् ।  
एवं सकारसंभूतं पीतमल्लकारसंभवम् ॥

शुक्लं यकारसंभूतं ऊँकारगुणसंभवम् ।  
रक्तं षकारसंभूतं एकारगुणसंभवम् ॥

कृष्णं शकारसंभूतं एकारगुणसंभवम् ।  
श्यामं क्षकारसंभूतं अकारगुणसंभवम् ॥

अइऋउलृगित्येते शुद्धाः प्रकृतिजाः स्वराः ।  
अ ए अर् ओ अल् चेते द्विधा प्रकृतिजागुणाः ॥

हयरवलित्येते यणादेशाद्विधा तथा ।  
गौणमुख्यद्वयोर्मध्ये प्रमुखाः मण्डलनायकाः ॥

भूयः प्रत्येकवर्गस्य प्रकृतिः पञ्चविधा स्मृता ।  
डजणमननित्येते शून्यधातुसमुद्भवाः ॥

घझढ [ भ ] धित्येते वायुधातुसमुद्भवाः ।  
गजडबददित्येते तेजोधातु समुद्भवाः ॥

खछठफथित्येते तोयधातुसमुद्भवाः ।  
कचटपतित्येते पृथिवीधातुसमुद्भवाः ॥

षट्कुलं वर्गभेदेन प्रकृतेर्मुख्यभेदतः ।  
प्रत्येकाक्षरभेदेन कुलं पञ्चविधं भवेत् ॥

पृथिवीपुच्छं यथा पीतं रूपं कायेन्द्रियं तथा ।  
तोयं चन्द्रं य[ था ] शुक्लं संज्ञा जिह्वेन्द्रियं तथा ॥

तेजसूर्या यथा रक्ते वेदना चक्षुरेव ते ।  
वायुः राहुः यथा कृष्णः संस्कारो नासिका तथा ॥

यथा आकाशं ध्रुवं श्यामं विज्ञानं श्रवणं तथा ।  
ज्ञानागस्तिर्यथा नीलं तथा ज्ञानं मनः स्मृतम् ॥

एवं गन्धश्च वर्णश्च रसश्च स्पर्शमेव च ।  
शब्दश्च धर्मधातुश्च षट्धातुकं कुलं क्रमात् ॥



एवं वायुस्तथापादश्च पाणिवागिन्द्रियं तथा ।  
भगो दिव्येन्द्रियं चैव पृथ्व्यादिकुलोद्भवम् ॥

एवमालापमादानं गतिर्विदस्त्राव एव च ।  
शुक्रच्युतिः क्रिया एताः पृथ्व्यादिकुलोद्भवाः ॥

एवं षड्धातवः प्रोक्ताः षट्स्कन्धा इन्द्रियाणि च ।  
षड्विषयाः कर्मेन्द्रियाण्येवं षष्ठकर्मेन्द्रियक्रिया ॥

षट्स्कन्धभेदेन षट्त्रिंशदिति धातवः ।  
सप्तत्रिंशतिधा प्रज्ञा सर्वे धर्मेकशून्यता ॥

धातवो बाह्यदेहे च यथा देहे तथा परे ।  
स्तम्भनं शुद्धमेदिन्यो शुद्धतोयेन शान्तिकम् ॥

शुद्धेन तेजसा वश्यं विद्वेषं शुद्धवायुना ।  
जीवनं शुद्धं शून्येन शुद्धज्ञानेन मारणम् ॥

षट्कर्माणीति शुद्धानि विमिश्राण्यपराणि च ।  
पृथिवीतोयविमिश्रेण पौष्टिकं सर्वदेहिनाम् ॥

वायुतेजोविमिश्रेण कम्पनं भवति देहिनाम् ।  
वायुतोयविमिश्रेणाकर्षणं भवति देहिनाम् ॥

पृथिवीशून्यविमिश्रेण पातनं भवति देहिनाम् ।  
पृथिवीज्ञानविमिश्रेण पतितोत्थापनं पुनः ॥

तोयतेजविमिश्रेण द्रावणं स्त्रीनृणां स्मृतम् ।  
पृथिवीवायुविमिश्रेण मोहनं कीलनं भवेत् ॥

शून्यतोयविमिश्रेण सत्त्वस्याप्यायनं भवेत् ।  
शून्यज्ञानविमिश्रेण प्रत्युज्जीवनं भवेत् ॥



तेजभूमिविमिश्रेण संतापं सर्वदेहिनाम् ।  
 तेजशून्यविमिश्रेण ज्वरो भवति देहिनाम् ॥

तेजोज्ञानविमिश्रेण स्तोभो भवति देहिनाम् ।  
 वायुशून्यविमिश्रेण विश्वमुच्चाटयेद् ध्रुवम् ॥

वायुज्ञानविमिश्रेण त्रैलोक्यं बन्धयेत् क्षणात् ।  
 शून्यज्ञानविमिश्रेण उत्पादः सर्वदेहिनाम् ॥

ज्ञानैकं सर्वकर्माणि कुरुते ज्ञानवादिनाम् ।  
 न जापो नाक्षसूत्राणि न होमो न मन्त्रपूजनम् ।  
 ध्यानमात्रेण सिद्ध्यन्ते सर्वकर्माणि योगिनाम् ॥

एवं त्रिकुलमन्त्राश्चतुः पञ्चकुलाश्च ये ।  
 कुर्वन्त्यनन्तकर्माणि विधिना धातुस्वभावतः ॥

इत्येवं षट्कुलमन्त्राः शुद्धा अन्योन्यमिश्रिताः ।  
 तेऽसंख्या महासत्त्व देवतासिद्धिसाधने ॥

मन्त्राणां लक्षणं वक्ष्ये पञ्चधातुस्वभावतः ।  
 शत्रुमित्रमुदास्यं च सत्त्वार्थाय निगद्यते ॥

<sup>1</sup>अकुहज्ज(क्ष)श्च ये कण्ठ्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।  
 शून्यवाय्वादिमन्त्राणां मित्रर्थेन सदा स्थितः ॥

इचुयशाश्च तालव्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।  
 वायुधातुसमुद्भूताः शत्रवः तोयजन्मिना ॥

ऋटुरषास्तु मूर्धन्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।  
 तेजोधातुसमुद्भूताः शत्रवो भूमिजन्मिनाम् ॥

1. “अकुहज्ज(क्ष)श्च ये.....से.....नामजो भवेत्” तक कालचक्रतन्त्रटीका विमलप्रभा में भी मूलतन्त्र के वचन के रूप में उद्धृत है। (भाग-II, पृ० 233)

उपुवशा( पध्मा )श्च ये चौष्ठ्याः स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।

तोयधातुसमुद्भूताः शत्रवो वह्निजन्मिनाम् ॥

लृतुलसाश्च दन्त्याः ये स्वरव्यञ्जनलक्षणाः ।

पृथिवीधातुसमुद्भूता शत्रवो वायुजन्मिनाम् ॥

वायोर्मित्रं सदा शून्यं उदास्य वार्यशक्तितः ।

अग्नेर्मित्रं सदा वायुः उदास्य पृथ्व्याशक्तितः ॥

पृथ्व्या उदकं मित्रं च उदास्य वायुरेव च ।

तोयस्य मेदिनी मित्रमुदास्योऽग्निं र ]शक्तितः ॥

प्रणवं वर्जयित्वा तु मन्त्रस्याद्यक्षरं कुलम् ।

चित्तं तदेव मन्त्राणां बिम्बनिष्पत्तेर्कारणम् ॥

अन्ये व्यञ्जनसंयुक्तं मन्त्रस्याद्यक्षरं भवेत् ।

तदा पूर्वतयो ग्राह्यः प्रथमोच्चारहेतुतः ॥

स्वरव्यञ्जनभेदेन तदेव द्वैविधं भवेत् ।

प्राणस्य शत्रुमित्रञ्च कायस्यापि निगद्यते ॥

प्राणस्य शत्रवो मित्रं उदास्या वा स्वराः स्मृताः ।

कायस्य शत्रवो मित्रं उदास्याः व्यञ्जनाः स्मृताः ॥

स्वरशत्रुहरेत् प्राणं साधकस्य न संशयः ।

रोगाद्यं कुरुते काये शत्रुव्यञ्जनलक्षणः ॥

एकवर्गेऽपि ये पञ्च काद्याव्यञ्जनधर्मिणः ।

पृथ्व्यादि कुलं तेषां ज्ञातव्यं मन्त्रसाधने ॥

डञ्जमणननित्येते मित्रत्वे नापरे स्थिताः ।

घझढभधधित्येते शत्रवः तोयजन्मिनाम् ॥

गजडबददित्येते शत्रवो भूमीजन्मिनाम् ।  
 खछठफथथित्येते शत्रवो [ वह्निजन्मिनाम् ॥  
 कचटपततित्येते शत्रवो ] वायुजन्मिनाम् ।  
 एवं पूर्ववत् ज्ञेयो मित्रोदास्याः परस्परम् ।  
 मन्त्रादौ संस्थितो वर्णाः स्ववर्गेषु परेषु वा ॥  
 साधकानां द्विधा वर्णा जन्मजो नामजो भवेत् ।  
 द्विधा सोऽपि परे ज्ञेयो व्यञ्जनस्वरलक्षणः ॥  
 जन्मकालेऽपि यल्लग्नं पञ्चदण्डात्मकं भवेत् ।  
 मकाराद्यं नरस्त्रीणां व्यञ्जनं तेन शोधयेत् ॥  
 मकरे कादयः पञ्च दण्डभेदेन शोधयेत् ।  
 कुम्भेऽपि डादयः पञ्च शून्यादिक्रमभेदतः ॥  
 मीनेऽपि चादयः पञ्च मेषेऽपि त्रादयः क्रमात् ।  
 वृषभे दादयः पञ्च मिथुनेषु णादयः तथा ॥  
 पादयः कर्कटलग्ने च सिंहलग्नेऽपि मादयः ।  
 कन्यानां तादयः पञ्च तुलायां नादयः तथा ॥  
 वृश्चिके सादयः पञ्च धनुषिं कादयः स्मृताः ।  
 संहारसृष्टिभेदेन षष्टिवर्णादिवानिशम् ॥  
 दक्षिणे वामसंचारे पञ्चमण्डलवाहकाः ।  
 ऋतुपक्षप्रभेदेन यथा बाह्ये तथा तनौ ॥  
 स्वराश्चतुः कलामध्ये त्रिंशद्भेदैर्विशोधयेत् ।  
 शुक्लप्रतिपदारभ्य अमान्ताः त्रिंशद्देवताः ॥  
 अङ्गुल्लुगित्येते प्रतिपदाद्या यथाक्रमम् ।  
 अण्ओअल्वित्येते षष्ट्याद्याः परिकीर्तिताः ॥



हयरवलहित्येते एकादश्यादयः स्मृताः ।

लाद्यापञ्चविलोमेन कृष्णप्रतिपदादयः स्मृताः ॥

आलाकारदयः पञ्च षष्ठ्याद्यं कृष्णपक्षतः ।

लृकाराद्याश्च ये पञ्च एकादश्यादयः स्वराः ॥

पूर्णान्ते बिन्दुकः प्रोक्तः अमान्ते च विसर्जनी ।

ते मुहूर्तप्रभे[ दे ]न चन्द्रस्य प्रतिकलाः स्मृताः ॥

यः स्वरो नायको यस्यां कलायामुदयं व्रजेत् ।

मुहूर्ते प्रथमे सोऽस्य जातकस्य स्वरो भवेत् ॥

तद् द्वितीयो द्वितीयेन एव सर्वे यथाक्रमम् ।

त्रिंशत्मुहूर्तभेदेन जन्मनः स्वर उच्यते ॥

प्राणक्षयो महाव्याधिः साधकानां न संशयः ।

शब्देन मन्त्रपूर्वेण स्वरेण व्यञ्जनेन वै ॥

जन्मस्वरापरिज्ञानात् व्यञ्जनस्याप्रबोधतः ।

नामादिस्वरो ग्राह्यो व्यञ्जनं ह्यन्यः(?) पूर्वकः ॥

<sup>1</sup>मन्त्रादिव्यञ्जनानां वा स्वराणां साधनाय च ।

कर्मार्थं षट्विधं प्रोक्तं सेवाजापं प्रकुर्वतः ॥

प्रथमं ताडनं कुर्यात् आवेशं दाहनं ततः ।

आप्यायनं ततो मन्त्री पोषणं [ तोषणं ] ततः ॥

सविसर्गेन शून्येन आक्रान्तो मन्त्रपूर्वकः ।

मूर्च्छाविस्थामवाप्नोति मन्त्रराजेन ताडितः ॥

1. “मन्त्रादिव्यञ्जनानां .....गृह्यते बुधैः” तक कालचक्रतन्त्रटीका विमलप्रभा में भी मूलतन्त्र के वचन के रूप में उद्धृत है, भाग-II, पृ० 234-235



लक्षजपेन मन्त्रस्य मूर्च्छिता सा तु देवता ।  
अहंकारं परित्यक्ता साधकस्य वशी भवेत् ॥

एवं सा वायुनाक्रान्ता आदिसंयाति योगिनम् ।  
दह्यते वह्निनाक्रान्ता तोयेनाप्यायते ततः ॥

पृथिवीमूर्ध्निस्थिता पुष्टिर्जप्ता गच्छति देवता ।  
मूर्ध्नि चन्द्रकलाक्रान्तो तोषिता वरदा भवेत् ॥

एवं षट्लक्षजापेन पूर्वसेवा निगद्यते ।  
मूलतन्त्रेषु सर्वेषु सुगतेनेष्टसिद्ध्ये ॥

षट्कार हूं तथा वौषट् नमः स्वाहा वषट्स्तथा ।  
षट्कर्माणि यथासंख्यं मन्त्रान्ते कारयेद् व्रती ॥

आदौ वैरोचनं दत्त्वा पुनर्जापं समारभेत् ।  
कोटिजापं ततः कृत्वा होमं कुर्यात् दशांसिकम् ॥

तन्त्रोक्तविधिना सर्वं ततः सिद्ध्यति देवता ।  
वरं ददाति सा सिद्धां मन्त्रिणां प्रार्थितं च यत् ॥

अन्य जातिः क्रिया चान्यो कालो मन्त्रीकुलं कुली ।  
अन्यस्थानदिशाधारं निष्फलं सर्वकर्मेषु ॥

पुस्तकात् पठितैर्मन्त्रैः सम्प्रदायविवर्जितैः ।  
साधनं ये प्रकुर्वन्ति ते क्लिश्यन्ति नरा भुवि ॥

किन्नाम सम्प्रदायं तं पुस्तकाद्यदि लभ्यते ।  
यथा लिखितपाठेन नेयार्थेन प्रकाशितम् ॥

आकाशं भोक्तुमिच्छन्ति मन्त्रसद्भाववर्जिताः ।  
पुस्तकात् पठितैर्मन्त्रैर्देवादीनां च साधकाः ॥

स्वचित्तदृढवीर्येन मन्त्रजापेन वा भवेत् ।  
ईप्सिता लौकिकीसिद्धिः साधकानां परार्थिनाम् ॥

मन्त्रजापैस्तथा होमैः स्नानपूजाविधिक्रमैः ।  
क्रियाहीना न सिद्ध्यन्ति यथाभूतमिदं वचः ॥

शास्तृणां बोधिसत्त्वानां देवतादेश सम्प्रति ।  
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तदेव गृह्यते बुधैः ॥

( 6 )

<sup>1</sup>वज्रगर्भं प्रवक्ष्यामि देवतासाधनं विधिम् ।  
येन सिद्ध्यति योगात्मा मन्त्रमुद्राविभावकः ॥

प्रभातसमये मन्त्री प्रस्त्रावं विण्मूत्रयोः ।  
कृत्वा शौचादिकं पश्चादुपविश्य सममृदौ ॥

दशद्रव्यमयीं कृत्वा गुडिकां स्वमुखे क्षिपेत् ।  
पुरतो मण्डलं कृत्वा सपञ्चामृतं गोमयेन् ॥

गन्धपुष्पादिकं दद्याद् गौर्यादीनां यथाक्रमम् ।  
इन्द्रे गौरी यमे चौरी वेताली वारुणे स्थिता ॥

धनदे डाकिनीदेवी अधो भूचरिका स्थिता ।  
ऊर्ध्वे खेचरिका तत्र पूजनीया यथाक्रमम् ॥

ईशाने पुक्कसी देवी आग्नेय्यां शबरी तथा ।  
चाण्डाली राक्षसी कोणे वायव्यां डोम्बिनीक्रमात् ॥

हेवज्रं चक्रमध्ये तु नैरात्मा सह पूजयेत् ।  
तत्पुनः सर्वसत्त्वेषु मैत्रीकरुणादिकं स्मरेत् ॥

पूजयित्वा ततस्तां तु तद्बीजं स्वतनौ न्यसेत् ।  
 नामाक्षरं बीजं तत्साकारं सबिन्दुका ॥

रूपधातौ गता गौरी शब्दधातौ तु चौरिका ।  
 गन्धधातौ तु वेताली रसधातौ घस्मरी ॥

भूचरी स्पर्शधातौ तु खेचरी धर्मधातुके ।  
 चक्षुषोः पुक्कसी-देवी श्रोतयोः शबरी मता ॥

घ्राणे चण्डालिनीदेवी जिह्वायां डोम्बिनी मता ।  
 कायेन्द्रिये तु हेवज्रं नैरात्मा मनसि स्थिता ॥

( 7 )

<sup>1</sup>आसनं क्रोधराजानां प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।  
 मुखवर्णभुज[ 1? ]स्त्राणि प्रत्यालीढपदानि च ॥

वज्रपञ्जरमध्ये तु अष्टारचक्रं न्यसेत् ।  
 आकाराष्टसंभूतं तं विभाव्य ततः पुनः ॥

पञ्जरस्योऽपि अध ऊर्ध्वं अरद्वयं च कारयेत् ।  
 रेफैरेकादशैः सूर्यमण्डलानि यथाक्रमम् ॥

रविकैकादशारेव पदान्यवर्कस्य तानि च ।  
 हूंकारविन्यसेत तत् प्रत्येकं भानुमण्डले ॥

हूंकारोद्भूतभानुस्थान् क्रोधराजं विभावयेत् ।  
 मध्यसूर्यासने ध्यायात् वज्रहूंकारनायकम् ॥

त्रिमुखं षट्भुजं नीलं प्रत्यालीढपदे स्थितम् ।  
 मूलं नीलमुखदंष्ट्रा विकारालोग्रभीषणम् ॥



वामं सव्यं सितरक्तं यथा नाडीत्रयं स्थितम् ।  
 वज्रकर्त्री त्रिशूलं च सव्यहस्ते यथाक्रमम् ॥  
 वज्रघण्टाकपालं च खट्वाङ्गमपि वामतः ।  
 विश्ववज्रं जयमौली अक्षोभ्यश्चार्धचन्द्रमा ॥  
 मुण्डमाला स्थिता स्कन्धे शिरसि च कपालकैः ।  
 पञ्चमुद्रास्थिभिर्व्याघ्रचर्मणा कटिवेष्टितम् ॥  
 नवनेत्रं ललज्जिह्वं सर्पाभरणभूषितम् ।  
 ईदृशं वज्रहंकारं नायकं भावयेत्ततः ॥  
 कृष्णहंकारसम्भूतं पूर्वसूर्ये निवेशयेत् ।  
 कृष्णं यमान्तकं रौद्रं प्रत्यालीढपदे स्थितम् ॥  
 कृष्णशुक्लारुणास्यं च बृहत् कुक्षिं त्रिलोचनम् ।  
 पञ्चमुद्राकपालेश्च मालाव्याघ्राजिनं कटौ ॥  
 नागेन्द्रा विश्ववज्राङ्गं सर्वेषां मुकुटेऽधिपं कुलम् ।  
 भिन्नं वर्णायुधं तेषां चत्वारचरणं तथा ॥  
 दण्डं चक्रं भवेत् वज्रं सव्यहस्ते यथाक्रमम् ।  
 हृदये तर्जनीपाशं घण्टा परशुं वामतः ॥  
 मौलौ वैरोचनो बुद्धो वज्रमौलिश्च अपरः ।  
 सितहंकारनिष्पन्नं दक्षिणे सूर्यमण्डले ॥  
 शुक्लं प्रज्ञान्तकं क्रोधं सितनीलारुणाननम् ।  
 प्रज्ञाखट्वाङ्गं पविः दण्डः सव्यहस्ते यथाक्रमम् ।  
 हृदये तर्जनीपाशं घण्टा परशुं वामतः ॥

रक्तहूँकारनिष्पन्नं रक्तनीलसिताननम् ।  
पद्मान्तकं न्यसेत् सूर्ये पश्चिमेऽमितमौलिनम् ॥

मुषलं वज्रखड्गं च सव्यहस्तेषु धारयेत् ।  
हृदये तर्जनीपाशं घण्टा परशुं च वामतः ॥

नीलहूँकार-निष्पन्नमोघसिद्धिमौलिनम् ।  
नीलरक्तसितास्यं च करालमुखविभ्रमम् ॥

विश्ववज्रं तथा चक्रं मुषलं चापि सव्यतः ।  
घण्टा च तर्जनीपाशं परशुं चापि वामतः ॥

विद्धान्तकं न्यसेत् सूर्ये उत्तरेऽमृतकुण्डली ।  
नीलहूँकारनिष्पन्नं अग्नौ सूर्येऽचलं न्यसेत् ॥

नीलरक्तसितास्यं च श्रीवैरोचनमौलिनम् ।  
खड्गं वज्रं तथा चक्रं सव्यहस्तेषु धारयेत् ॥

हृदये तर्जनीपाशं घण्टा परशुं च वामतः ।  
नीलहूँकारनिष्पन्नं नीलरक्तसिताननम् ॥

नैर्ऋत्ये टक्किराजानं रत्नसंभवमौलिनम् ।  
त्रैलोक्यविजयां मुद्रां धृतं पाणिद्वयेन तु ॥

दक्षिणे वज्रखड्गौ च वामतः पाशमङ्कुशम् ।  
नीलहूँकारनिष्पन्नं अमिताभकिरीटिनम् ॥

नीलदण्डं न्यसेत् मन्त्रो वायव्ये सूर्यमण्डले ।  
मूलं सव्यतरं रौद्रं नीलरक्तसिताननम् ॥

दण्डखड्गं तथा चक्रं सव्यहस्ते यथाक्रमम् ।  
वामे तर्जनीपाशं पद्मं परशुमेव च ॥

नीलहंकारनिष्पन्नममोघसिद्धिमौलिनम् ।  
 ईशानार्के न्यसेत् मन्त्री नीलवर्णमहाबलम् ॥  
 कृष्णरक्तसितास्यञ्च बृहत् कुक्षिं भयानकम् ।  
 दण्डं खड्गं तथा चक्रं सव्यहस्ते यथाक्रमम् ॥  
 हृदये तर्जनीपाशं शूलं परशुं च क्रमात् ।  
 श्यामहंकारनिष्पन्नमक्षोभ्यकृतशेखरम् ॥  
 वामदक्षिणहस्तायां उष्णीषं मूर्ध्नी धारयेत् ।  
 वज्रपद्मं च सव्याभ्यां तर्जनीखड्गमन्यत् ॥  
 आकाशे सूर्यमाक्रम्य ब्रह्मस्थाने विचिन्त्येत् ।  
 कृष्णहंकारनिष्पन्नं अक्षोभ्यकृतशेखरम् ॥  
 सुम्भराजमधः सूर्ये कृष्णरक्तसिताननम् ।  
 वज्रं चक्रं त्रिशूलञ्च सव्यहस्ते यथाक्रमम् ॥  
 हृदये तर्जनीपाशं खड्गं परशुं च वामतः ।  
 एवं भावयित्वा तु क्रोधव्यूहं भयानकम् ।  
 उपसंहार्य ततो मन्त्री स्वकाये तन्निवेशयेत् ।  
 वामे यमान्तकं बाहौ सव्ये प्रज्ञान्तकं न्यसेत् ॥  
 वामे पद्मान्तकं हस्ते सव्ये विघ्नान्तकं न्यसेत् ।  
 अचलं वामे उरौ च टक्किराजं च दक्षिणे ॥  
 वामेऽङ्घ्रौ नीलदण्डं च सव्यपादे महाबलम् ।  
 शिखास्थाने महोष्णीषं सुम्भराजं गुदे न्यसेत् ।  
 हृदये वज्रहंकारं स्वनामाद्यक्षरं न्यसेदिति ॥



## बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का अभिप्राय

—ठिनलेराम शाशनी—

[ प्रस्तुत अंक में उपर्युक्त शीर्षक के अन्तर्गत 'आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प' नामक ग्रन्थ से पारिभाषिक शब्दों को संकलित किया गया है। आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प (मिथिला-संस्करण) क्रियातन्त्र का एक प्रमुख आगम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल 55 पटल हैं। इस अंक में प्रारम्भिक 15 पटलों से सामग्री एकत्रित की गई है। अवशिष्ट पटलों से संकलित सामग्री को धीः के आगामी अंकों में प्रकाशित की जाएगी। ]

### अक्षमाला

शोभनां चारुवर्णां तु अच्छिद्रामस्फुटितां तथा ।  
रुद्राक्षं सुतजीवं वा इन्द्राक्षफलमेव तु ॥  
अरिष्टां शोभनां नित्यं अव्यङ्गां फलसंमताम् ।  
ग्रथेन्मन्त्री सदोद्युक्तो अक्षमालां तु यत्नतः ॥  
सौवर्णमथ रूप्यं वा माणिक्यं स्फाटिकं समम् ।  
शङ्खं मुसारं चैव मौक्तं वापि विधीयते ॥  
प्रवालैर्विविधा माला कुर्यादक्षमालिकाम् ।  
अन्यरत्नांश्च वै दिव्यान् कुर्यात् शुभमालिकाम् ॥ (पृ० 88)

### उष्णीषराजानः

... तद्यथा—उष्णीष अत्यद्भुत अत्युन्नत सितातपत्रं अनन्तपत्रं शतपत्रं जयोष्णीषं लोकोत्तरं विजयोष्णीषं अभ्युद्गतोष्णीषं कमलरश्मिं कनकरश्मिं सितरश्मिं व्यूढोष्णीषं कनकराशिं सितराशिं तेजोराशिं मणिराशिं समनन्तराशिं विख्यातराशिं भूतराशिं सत्यराशिं अभावस्वभावराशिं अवितथराशिः। (पृ० 6)

### उष्णीषराजानः ( अष्टौ )

... अष्टौ उष्णीषराजानः समन्तज्वालामालाकुलाः। ... तद्यथा—चक्रवर्ती उष्णीषः अभ्युद्गतोष्णीषः सितातपत्रः जयोष्णीषः कमलोष्णीषः तेजोराशिः उन्नतोष्णीष इति।

(पृ० 28)

ऋषिवरः

कपिलमुनिर्नाम ऋषिवरः। (पृ० 31)

गन्धर्वराट्

गन्धर्वराट् पञ्चशिखः। (पृ० 32)

गरुडराज्ञः

येऽपि ते गरुडराज्ञस्तेऽपि तत्पर्षन्मण्डलं संनिपतिता अनेकशतसहस्रपरिवाराः, तद्यथा—सुपर्ण श्वेतपर्ण पन्नग पर्णग सुजातपक्ष अजातपक्षः मनोजव पन्नगनाशन वैनतेय भरद्वाज शकुन महाशकुन पक्षिराजश्चेति। (पृ० 13)

किन्नरराजा

किन्नरराजा द्रुमः। (पृ० 32)

किन्नरराजानः

येऽपि ते किन्नरराज्ञः अनेककिन्नरशतसहस्रपरिवाराः, तेऽपि तं पर्षन्मण्डलं संनिपतेयुः, तद्यथा—द्रुम उपद्रुम सुद्रुम अनन्तद्रुम लोकद्रुम लेद्रुम घनोरस्क महोरस्क महोजस्क महोज महर्द्धिक विरुत सुस्वर मनोज चित्तोन्मादकर उन्नत उपेक्षक करुण अरुणश्चेति। (पृ० 13)

तथागताः

... तद्यथा—ज्योतिस्सौम्यगन्धावभासश्रीर्नाम तथागतः भैषज्यवैदूर्यप्रभराजस्तथागतः समन्तावभासश्रीर्नाम तथागतः समुद्गतराजो नाम तथागतः शालेन्द्रराजो नाम तथागतः लोकेन्द्रराजो नाम तथागतः अमितायुर्ज्ञानविनिश्चयराजो नाम तथागतः अनन्तावभासराजेन्द्रो नाम तथागतः ज्योतिरश्मिराजेन्द्रो नाम तथागतः। (पृ० 5)

दानवेन्द्राः

एवं दानवेन्द्राः प्रह्लाद बलि राहु वेमचित्ति सुचित्ति क्षेमचित्ति देवचित्ति राहुबाहु-प्रमुखाः अनेकदानवकोटीशतसहस्रपरिवाराः विचित्रगतयो विचित्रार्थाः सुरयोधिनोऽसुराः, तेऽपि तत्पर्षन् मण्डलं संनिपतेयुः बुद्धाधिष्ठानेन बोधिसत्त्वविकुर्वणं द्रष्टुं वन्दितुं पर्युपासितुम्। (पृ० 13)



**देवाः**

एवं ब्रह्मा सहांपतिः महाब्रह्मा आभास्वरः प्रभास्वरः शुद्धाभः पुण्याभः अट्टह  
अतपाः अकनिष्ठा सुकनिष्ठा लोकनिष्ठा आकिंचन्या नैवकिंचन्या आकाशानन्त्या नैवाकाशा-  
नन्त्या सुदृशा सुदर्शना सुनिर्मिता परनिर्मिता शुद्धावासा तुषिता यामा तृदशा चातुर्महाराजिका  
सदामत्ता मालाधारा करोटपाणायः वीणातृतीयकाः पर्वतवासिनः कूटवासिनः शिखरवासिनः  
अलकवासिनः पुरवासिनः विमानवासिनः अन्तरिक्षचराः भूमिवासिनः वृक्षवासिनः गृह-  
वासिनः। (पृ० 13)

**धारण्यः ( षट्त्रिंशत् )**

... तद्यथा—वज्रानलप्रमोहनी धारणी मेकशिखरकूटागारधारिणी रत्नशिखर-  
कूटागारधारिणिधरा सुकूटा बहुकूटा पुष्पकूटा दण्डधारिणी निग्रहधारिणी आकर्षणधारिणी  
केयूरा केयूरवती ध्वजाग्रकेयूरा रत्नाग्रकेयूरा लोकाग्रकेयूरा पताग्रकेयूरा विपरिवर्ता लोकावर्ता  
सहस्रावर्ता विवस्वावर्ता सर्वभूतावर्ता केतुवती रत्नवती मणिरत्नचूडा बोद्धयङ्गा बलवती  
अनन्तकेतु समन्तकेतु रत्नकेतु विख्यातकेतु सर्वभूतकेतु अजिरवती अस्वरा सुनिर्मला षण्मुखा  
विमला लोकाख्या चेति। (पृ० 8-9)

**नक्षत्राः**

अथ ये नक्षत्राः खगानुचारिणः अनेकनक्षत्रशतसहस्रपरिवारिताः, तद्यथा—अश्विनी  
भरणी कृत्तिका रोहिणी मृगशिरा आर्द्रा पुनर्वसु पुष्य आश्लेषा मघा उभे फल्गुनी हस्ता  
चित्रा स्वाति विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा मूला उभौ आषाढौ श्रवणा धनिष्ठा शतभिषा उभौ  
भद्रपदौ रेवती देवती प्रभिजा पुनर्णवा ज्योती अङ्गिरसा नक्षत्रिका उभौ फल्गुफल्गुवती  
लोकप्रवरा प्रवराणिका श्रेयसी लोकमाया ईरा ऊहा वहा अर्थवती असार्था चेति। (पृ० 13)

**निर्ग्रन्थः**

निर्ग्रन्थतीर्थकरऋषभः निर्ग्रन्थरूपी अनुपूर्वतः। (पृ० 32)

**प्रत्येकबुद्धाः ( द्वासप्तति )**

... तद्यथा—गन्धमादनः सीमन्तायतन समन्तप्रभ चन्दन काल उपकाल नेमि उपनेमि  
रिष्ट उपरिष्ट उपारिष्ट पार्श्व सुपार्श्व दुन्दुभि उपदुन्दुभि लोकाख्य लोकप्रभ जयन्त अरेणु रेणु  
उपरेणु अंश उपांश चिह्न सुचिह्न दिनकर सुकर प्रभावन्त प्रभाकर लोककर विश्रुत सुश्रुत  
सुकान्त सुधान्त सुदान्त अदन्तान्त भवान्त सितकेतु जिह्मकेतु केतु उपकेतु तथ्य पद्महर  
पद्मसंभव स्वयंभु अद्भुत मनोज मनस महेन्दुकूटाख्य कुम्भसकलाख्य मकर उपकर शान्त



शान्तमानस वर्म उपवर्म वैरोचन कुसुम सुलील श्रेयस वद्यहरान्तक दुःप्रसह कनक विमलकेतु सोम सुसोम सुषेण सुचीर्ण शुक्रक्रतु इष्ट उपेन्द्र वसुश्चेति । (पृ० ९)

**बुद्धाः**

... तद्यथा—सुबाहुः सुरत्नः सुव्रतः सुनेत्रः सूरतः सुधर्मः सर्वार्थसिद्धिः सर्वोद्गतः धर्मोद्गतः रत्नोद्गतः रत्नश्रीः मेरुश्रीः अचिन्त्यश्रीः प्रभाकरश्रीः प्रभश्रीः ज्योतिश्रीः सर्वार्थ-श्रीः सर्वरत्नपाणिः चूडामणिः मेरुध्वजपाणिः वैरोचनगर्भः रत्नगर्भः ज्ञानगर्भः सचिन्त्यार्थगर्भः अचिन्त्यार्थगर्भः धर्मोद्गतगर्भः ध्वजकेतुः सुकेतुः अनन्तकेतुः विमलकेतुः गगनकेतुः रत्नकेतुः गर्जितघोषदुन्दुभिस्वरराजः अनन्तावभासज्ञानराजः सर्वतमोन्धकारविधमनराजः सर्वविकिरणबोधिविध्वंसनराजः सर्वचर्यातिशयज्ञानराजः लोकेन्द्रराजः अतिशयेन्द्रराजः विधमनराजः निर्धूतराजः आदित्यराजः अभावसमुद्गतराजः स्वभावसमुद्गतराजः अभाव-स्वभावसमुद्गतराजः अविवक्षितराजः स्वभावपुण्याभः लोकाभः अमिताभः मिताभः अनन्ताभः सुनेत्राभः सुसंभवाभः अर्थभावाभः अधृष्यः अमृष्यः अकर्षः अकनिष्ठः अमलः अनलः द्युतिपतिः मतिमुखः मुखनेमिः निमिकेतुः ऋक्षः दिविदेवदिव्यनाभिस्वनः लोकशान्तिः उपरिष्टः दुन्दुभिसिद्धः शिवः आख्यदिव्यः दुःप्रसहः दुर्धर्षदुरालभः दूरंगमः दुरालभः दूरस्थितः ऊर्ध्वद्रव्यतमः खद्योतः समहद्योतः अद्योतः ऋषभः आभः सुमनायः सुमनः महादेवः सुनिर्मलः मलान्तः दान्तः समि(?) सुचिह्नः श्वेतध्वजः इमि किमि कनिष्ठ निकर्ष जीव सुजात धूमकेतु ध्वजकेतु श्वेतकेतु सुकेतु वसुकेतु वसव पितामह पितरनिष्क कुरुलोकाख्य समन्ताख्य महाख्य श्रेयसि तेजसि ज्योतिकिरण समन्तकर लोकंकर दिवंकर दीपंकर भूतान्तकर सर्वार्थकर सिद्धंकर द्योतिंकर अवभासंकर दुन्दुभिस्वर रुतस्वर सुस्वर अनन्तस्वर केतुस्वर भूतमुनि कनकमुनि क्रकुच्छन्दः काश्यप शिखि विश्वभुक् विपश्चि(शिय) शाक्यमुनिश्चेति । (पृ० 5-6)

**बुद्धाः ( अष्टौ )**

तत्रस्थां बुद्धां भगवतां अष्टौ लिखेत् । तद्यथा—रत्नशिखिं वैदूर्यप्रभारत्नविच्छुरित-समन्तव्यामप्रभं पद्मरागेन्द्रनीलमरकतादिभिः वैदूर्याश्मगर्भादिभिः महामणिरत्नविशेषैः समन्ततो प्रज्वाल्यमाणं ईषदादित्योदयवर्णं तथागतविग्रहं पीतचीवरोत्तरासङ्गिनं पर्यङ्कोपविष्टं धर्म देशयमानं पीतनिवासितोपरिवस्तं महापुरुषलक्षणकवचितदेहं अशीत्यानुव्यञ्जनोपशोभितमूर्तिं प्रशान्तदर्शनं सर्वाकारवरोपेतं रत्नशिखिं तथागतमभिलिखेत् । द्वितीयं संकुसुमितराजेन्द्रं तथागतं कनकवर्णं अभिलिखेत् सुतरां नागकेसरबकुलादिपुष्पैरभ्यवकीरितमभिलिखेत् आर्यमभि-

निरीक्षणमाणं समन्तप्रभं रत्नप्रभाविच्छुरितद्योतिपर्येषम् । तृतीयं शालेन्द्रराजं तथागतमभिलिखेत्  
पद्मकिञ्जल्काभं धर्मं देशयमानम् । चतुर्थं सुनेत्रं तथागतमभिलिखेत् । यथेमं दुःप्रसहम् ।  
(पञ्चमं?) षष्ठं वैरोचनं जिनम् । सप्तमं भैषज्यवैदूर्यराजम् । अष्टमं सर्वदुःखप्रशमनराजेन्द्रं  
तथागतमभिलिखेदिति । (पृ० 44)

... अष्टौ बुद्धा भगवन्तः ... तद्यथा—संकुसुमितराजेन्द्रस्तथागतः रत्नशिखिः शिखिः  
विश्वभुक् क्रकुच्छन्दकः बकग्रीविः काश्यपः सुनेत्रश्चेति । (पृ० 48)

### बोधिसत्त्वगणाः

... तद्यथा—रत्नपाणिः वज्रपाणिः सुपाणिः अनन्तपाणिः क्षितिपाणिः आलोकपाणिः  
सुनिर्मलः सुकूपः प्रभूतकूटः मणिकूटः रत्नकूटः रत्नहस्तिः समन्तहस्तिः गन्धहस्तिः सुगतिः  
विमलगतिः लोकगतिः चारुगतिः अनन्तगतिः अनन्तकीर्तिः विमलकीर्तिः गतिकीर्तिः अमल-  
कीर्तिः कीर्तिकीर्तिः नाथः अनाथः नाथभूतः लोकनाथः समन्तनाथः आत्रेयः अनन्तत्रेयः  
समन्तत्रेयः मैत्रेयः सुनेत्रेयः नमन्त्रेयः त्वद्धत्रेयः सरूलात्रेयः त्रिरन्तात्रेयः त्रिशरणात्रेयः त्रिया-  
नात्रेयः विस्फूर्जः सुमनोद्भवर्णवां धर्मीश्वरः अभावेश्वरः संमतेश्वरः लोकेश्वरः अवलोकितेश्वरः  
सुलोकितेश्वरः विलोकितेश्वरः लोकमहः सुमयः गर्जितेश्वरः दुन्दुभिस्वरः विततेश्वरः  
विध्वस्तेश्वरः सुवक्षाः सुमूर्तिः सुमहद्यशोवतः आदित्यप्रभावः प्रभविष्णुः सोमेश्वरः सोमः  
सौम्यः अनन्तश्रीः लोकश्रीः गगनः गगनाढ्यः गगनगञ्जः क्षितेश्वरः महेश्वरः क्षितिक्षितिगर्भः  
नीवरणः सर्वावरणः सर्वावरणविषकम्भि सर्वनीवरणविष्कम्भि समन्तनिर्मथनः समन्तभद्रः  
भद्रपाणिः सुधनः सुसंहतः रसुपुष्य सुनभ आकाश आकाशगर्भः सर्वार्थगर्भः सर्वोद्भवः  
अनिवर्ती अनिवर्तितः अपायजहः अविवर्तितः अवैवर्तिकसर्वधर्मोपगश्चेति । (पृ० 6)

### बोधिसत्त्वाः ( अष्टौ )

एवमष्टौ बोधिसत्त्वाः आर्यमैत्रेयः समन्तभद्रः क्षितिगर्भः गगनगञ्जः सर्वनीवरण-  
विष्कम्भी अपायजह आर्यवज्रपाणि सुधनश्चेति । (पृ० 80)

### बोधिसत्त्वाः ( पञ्च )

वामपार्श्वे पद्मस्याधस्ताच्छुद्धावासकायिकाः देवपुत्ररूपिणः बोधिसत्त्वाः पञ्च  
आलेख्याः । तद्यथा—सुनिर्मलः सुदान्तः संशुद्धः तमोद्घातनः समन्तावलोकश्चेति । (पृ० 29)

### बोधिसत्त्वाः ( षोडश )

एवं बोधिसत्त्वाः षोडश कार्याः । तद्यथा—समन्तभद्रः क्षितिगर्भः गगनगञ्जः सर्व-  
नीवरणविष्कम्भी अपायजहः मैत्रेयः, चमरव्यग्रहस्तः बुद्धं भगवन्तं निरीक्षमाणः, विमलगतिः



विमलकेतुः सुधनः चन्द्रप्रभः विमलकीर्तिः सर्वव्याधिचिकित्सकः सर्वधर्मीश्वरराजः  
लोकगतिः महामतिः पतिधरश्चेति । एते षोडश बोधिसत्त्वाः प्रसन्नमूर्तयः सर्वालङ्कारभूषिता  
लेख्याः । (पृ० 28)

**बोधिः**

न हि ध्यानैर्विना मोक्षं न मोक्षं ध्यानवर्जितम् ।  
तस्माद् ध्यानं च मोक्षं च संयुक्ते बोधिमुच्यते ॥ (पृ० 124)

**मन्त्रप्रतिष्ठा**

मन्त्रप्रतिष्ठा बुद्धानां शासनं इहोदितम् ।  
निर्विकल्पस्तु तं मन्त्रं विकल्पेऽस्मिन् तदिहोच्यते ॥  
करोति सर्वसत्त्वानामर्थानर्थं शुभाशुभम् ।  
गतिबुद्धिस्तथा सत्त्वं लोकानां च शिवाशिवम् ॥  
स एष प्रपज्यते कल्पे निःप्रपञ्चास्तथागताः ।  
लोकातीता स्वसंबुद्धा लोकहेतोरिहोच्यते ॥ (पृ० 123)

**महाऋषयः**

येऽपि ते ऋषयो महाऋषयः, तद्यथा—आत्रेय वरि(श?)ष्ठः गौतम भगीरथः जह्नु  
अङ्गिरसः अगस्ति पुलस्तिः व्यास कृष्ण कृष्णगौतम अग्नि अङ्गिरस जाम्दग्नि आस्तीक  
मुनिः मुनिवर अश्वरः वैशंपायन पराशरः परशुः योगेश्वरः पिप्पलः पिप्पलाद वाल्मीकः  
मार्कण्डश्चेति । (पृ० 12)

**महाग्रहाः**

येऽपि ते ग्रहा महाग्रहा लोकार्थकरा अन्तरिक्षचराः, तद्यथा—आदित्य सोम  
अङ्गारक बुध बृहस्पति शुक्र शनिश्चर राहु कम्प केतु अशनिनिर्घात तारध्वज घोरधूम्र  
धूमवज्र ऋक्षवृष्टि उपवृष्टि नष्टार्क निर्नष्ट हशान्त (?) माष्टि ऋष्टि तुष्टि लोकान्त क्षय विनिपात  
आपात तर्क मस्तक युगान्त श्मशान पिशित रौद्र श्वेत अभिज अभिजत मैत्र शङ्कु त्रिशङ्कु  
लूथ रौद्रकः ऋतुनाशन बलवां घोर अरुण विहसित माष्टि स्कन्द सनत् उपसनत्  
कुमारक्रीडन हसन प्रहसन नर्तक नर्तक खज विरूपश्चेति इत्येते महाग्रहाः । (पृ० 13)

**महादूत्यः**

... तद्यथा—मेखला सुमेखला सिङ्गला वज्राणां वज्रजिह्वा वज्रभू वज्रलोचना वज्रांसा  
वज्रभुकूटी वज्रश्रवणा वज्रलेखा वज्रसूची वज्रमुस्ती वज्राङ्कुशी वज्रशाटी वज्रासनी  
वज्रशृङ्खला सालवती साला विरटी कामिनी वज्रकामिनी कामवज्रिणी पशियका पशियनी



महापशियनी शिखरवासिनी ग्रहिला द्वारवासिनी कामवज्रिणी(?) मनोजवा अतिजवा शीघ्रजवा सुलोचना सुरसवती भ्रमरी भ्रामरी यात्रा सिद्धा अनिला पूरा केशिनी सुकेशा हिण्डिनी तर्जिनी दूती सुदूती मामकी वामनी रूपिणी रूपवती जया विजया अजिता अपराजिता श्रेयसी हासिनी हासवज्रिणी लोकवती यशवती कुलिशवती अदान्ता त्रैलोक्यवशंकरी दण्डा महादण्डा प्रियवादिनी सौभाग्यवती अर्थवती महानर्था तित्तिरी धवलतित्तिरी धवला सुनिर्मिता सुनिर्मला घण्टाखड्गपट्टिसा सूची जयती अवरा निर्मिता मायिका गुह्यकी विस्त्रम्बिका मुसला सर्वभूतवशंकरी चेति। (पृ० 8)

**महानागराजानः**

येऽपि ते महानागराजानः अनेकनागकोटीनियुतशतसहस्रपरिवारा आनीताः क्रोध-राजेन बोधिसत्त्वऋद्धिबलाधानेन च, तद्यथा—नन्द उपनन्द कम्बल उपकम्बल वासुकि अनन्त तक्षक पद्म महापद्म शङ्खपाल शङ्ख शङ्खपाल (?) कर्कोटक कुलिक अकुलिक माण कलशोद कुलिशिक चाम्पेय मणिनाग मानभञ्ज दुकुर उपदुकुर लकुट महालकुट श्वेत श्वेतभद्र नीलनीलाम्बुद क्षीरोद अपलाल सागर उपसागरश्चेति। (पृ० 12)

**महानागराजानः (अष्टौ)**

नागौ नन्दोपनन्दौ तक्षकवासुकिप्रभृतयोऽष्टौ महानागराजानः आलेख्याः। (पृ० 30)

नन्दोपनन्दौ नागमुख्यौ। (पृ० 31)

**महापिशाचाः**

येऽपि ते महापिशाचा अनेककोटीनियुतशतसहस्रपरिवाराः, तद्यथा—पीलु उपपीलु सुपीलु अनन्तपीलु मनोरथ अमनोरथ सुताय ग्रसन सुधाम घोर घोररूपी चेति। (पृ० 12)

**महापिशाच्यः**

येऽपि ते महापिशाच्यः अनेकपिशाचिनीशतसहस्रपरिवृताः तेऽपि तं भगवन्तं शाक्यमुनिं नमस्यन्त्यः संनिपतेयुः। तद्यथा—मण्डितिका पांसुपिशाची उल्कापिशाची ज्वाला-पिशाची भस्मोद्गिरा पिशिताशिनी दुर्धरा भ्रामरी मोहनी तर्जनी रोहिणिका गोवाहिणिका लोकान्तिका भस्मान्तिका पीलुवती बहुलवती बहुलदुर्दान्ता धणा चिह्नितिका धूमान्तिका धूमा सुधूमा चेति। (पृ० 14)

**महामातराः**

येऽपि ते मातरा महामातरा लोकमनुचरन्ति सत्त्वविहेठिका बलिमाल्योपहारिण्यश्च, तद्यथा—ब्रह्माणी माहेश्वरी वैष्णवी कौमारी चामुण्डा वाराही ऐन्द्री याम्या आग्नेया वैवस्वती

लोकान्तकरी वारुणी ऐशानी वायव्या परप्राणहरा सुखमण्डितिका शकुनी महाशकुनी पूतना कटपूतना स्कन्दा चेति । (पृ० 14)

### महायक्षिणी

हारीती महायक्षिणी । (पृ० 30)

### महायक्षिण्यः

येऽपि ते महायक्षिण्यः अनेकयक्षिणीशतसहस्रपरिताः, तद्यथा—सुलोचना सुभ्रू सुकेशा सुस्वरा सुमती वसुमती चित्राक्षी पूरांशा गुह्यका सुगुह्यका मेखला सुमेखला पद्मोच्चा अभया जया विजया रेवतिका केशिनी केशान्ता अनिला मनोहरा मनोवती कुसुमावती कुसुमपुरवासिनी पिङ्गला हारीती वीरमती वीरा सुवीरा सुघोरा घोरवती सुरसुन्दरी सुरसा गुह्योत्तमारी वटवासिनी अशोका अन्धारसुन्दरी आलोकसुन्दरी प्रभावती अतिशयवती रूपवती सुरूपा असिता सौम्या काणा मेना नन्दिनी उपनन्दिनी लोकान्तरा चेति । (पृ० 14)

### महाराक्षसराजानः

येऽपि ते महाराक्षसराजानः अनेकराक्षसकोटीनियुतशतसहस्रपरिवाराः आनीता महाक्रोधराजेन, तद्यथा—रावण प्रविण विद्रावण शङ्कुकर्ण कुम्भ कुम्भकर्ण समन्तकर्ण यम विभीषण घोर सुघोर यक्ष यम घण्ट इन्द्रजित् लोकजिः योधनः सुयोधनः शूलः त्रिशूलः त्रिशिरः अनन्तशिरश्चेति । (पृ० 12)

### महाश्रावकाः

... तद्यथा—महाकाश्यप नदीकाश्यप गयाकाश्यप दुरविक्षोकाश्यप भरद्वाज पिण्डोल मौद्गल्यायन महामौद्गल्यायन शारिपुत्र महाशारिपुत्र सुभूति महासुभूति गवांपति कात्यायन महाकात्यायन उपालि भद्रिक कप्फिण नन्द आनन्द सुन्दरनन्द लोकभूत अनन्तभूत वर्णक उपवर्णक नन्दिक उपनन्दिक अनिरुद्ध पूर्ण सुपूर्ण उपपूर्ण तिष्य पुनर्वसु रूह रौद्र रौरव कुरुपञ्चिक उपपञ्चिक काल सुकाल देवल राहुल हरित उपहरित ध्यायिनन्दि ध्यायिक उपायि उपयायिक श्रेयसक द्रव्यो मल्लपुत्रः उपद्रव्यः उपेतः खण्डः तिष्य महातिष्य समन्ततिष्य आह्वयन यशोद यसिक धनिक धनवर्ण उपधनिक पिलिन्दवच्छ पिप्पल किंफल उपफल अनन्तफल सफल कुमार कुमारकाश्यप महोद षोडशवर्तिकानन्द उपनन्द जिह्व जिह्व जितपाश महेष्वास वात्सीक कुरुकुल्ल उपकुरुकुल्ल कोटीकर्ण श्रमण श्रोणापरान्तक गाङ्गेयक गिरिकर्णिक कोटिकर्णिक वार्षिक जेत सुजेत श्रीगुप्त लोकगुप्त गुरुगुप्त गुरुक द्योतीरस सनक डिम्भक उपडिम्भक बिसकोटिक अनाथद उपवर्तन विवर्तन उन्मत्तक द्योत समन्त भद्रलि सुप्रबुद्ध स्वागत उपागत लोहागत दुःखान्त भद्रकल्पिक महाभद्रिक अर्थचर



पितामहगतिक पुष्पमाल पुष्पकाशिख उपकाशिक महौषध महोजस्क महोज अनुराध महौजस्क महोज अनुराधराधक रासिक सुब्रह्म सुशोभन सुलोक समागम मितश्चेति ।

(पृ० 9-10)

**महाश्रावकाः ( अष्टौ )**

... अष्टौ महाश्रावका अभिलेख्याः बोधिसत्त्वशिरःस्थानावरजोपविष्टाः । तद्यथा—  
स्थविरशारिपुत्रः महामौद्गल्यायनः महाकाश्यपः सुभूतिः राहुलः नन्दः भद्रिकः  
कफिणश्चेति । (पृ० 44)

अष्टौ महाश्रावकाः तत्रैव स्थाने । तद्यथा—आर्यमहामौद्गल्यायन शारिपुत्र गवांपति  
पिण्डोलभरद्वाज पिलिन्दवत्सः आर्यराहुलः महाकाश्यप आर्यानन्दश्चेति । (पृ० 80)

**महाश्राविकाः**

... तद्यथा—यशोधरा यशोदा महाप्रजापती प्रजापती सुजाता नन्दा स्थूलनन्दा सुनन्दा  
ध्यायिनी सुन्दरी अनन्ता विशाखा मनोरथा जयवती वीरा उपवीरा देवता सुदेवता आश्रिता  
श्रिया प्रवरा प्रमुदिता प्रियंवदा रोहिणी धृतराष्ट्रा धृता स्वामिका संपदा वपुषा शुद्धा प्रेमा जटा  
उपजटा समन्तजटा भवान्तिका भावती मनोजवा केशवा विष्णुला विष्णुवती सुमना बहुमता  
श्रेयसी दुःखान्ता कर्मदा क.....वसुदा धर्मदा नर्मदा ताम्रा सुताम्रा कीर्तिवती मनोवती  
प्रहसिता त्रिभवान्ता त्रिमलान्ता दुःखशायिका निर्वीणा त्रिपर्णा पद्मवर्णा पद्मावती पद्मप्रभा  
पद्मा पद्मावती त्रिपर्णी सप्तवर्णी उत्पलवर्णा चेति । (पृ० 10)

**महोरगराजानः**

येऽपि ते महोरगराजानः, तेऽपि तत्पर्षन्मण्डलं संप्रविष्टा अभूवन् संनिषण्णाः ।  
तद्यथा—भेरुण्ड भूरुण्ड मरुण्ड मारीच दीप प्रदीपाश्चेति । (पृ० 12)

**माला ( चतुर्विधा )**

कुशाग्रग्रथिकां चैव कुर्याद् यत्नानुजापिनः ।  
शताष्टं पञ्चविंशं वा पञ्चाशं चैव मध्यमाम् ॥  
एतत्प्रमाणमालां तु ग्रथेन्मन्त्री समाहितः ।  
सहस्रं साष्टकं चैव कुर्यान्मालां तु ज्येष्ठिकाम् ॥  
एतच्चतुर्विधां मालां ग्रथितं नित्यमन्त्रिभिः ।  
ततो ग्रथितु माला वै त्रिमात्रां द्विक एव वा ॥  
पुष्पलोहमयैः कटकैः सौवर्णैः राजतैस्तथा ।  
ततो ताम्रमयैर्वापि ग्रथेन्मालां समासतः ॥ (पृ० 88)



यक्षराट्

यक्षराट् धनदः। (पृ० 32)

यक्षसेनापती

मणिभद्रपूर्णभद्रौ यक्षसेनापती। (पृ० 30)

राक्षसाधिपतिः

बिभीषणश्च राक्षसाधिपतिः। (पृ० 31)

राशयः ( षट्त्रिंशत् )

षट्त्रिंशद् राशयः, तद्यथा—मेष वृषभ मिथुन कर्कटक सिंह कन्य तुल वृश्चिक धनु मकर कुम्भ मीन वानर उपकुम्भ भृञ्जार खड्ग कुञ्जर महिष देव मनुष्य शकुन गन्धर्व लोकसत्त्वजित उग्रतेज ज्योत्स्न छाया पृथिवी तम रज उपरज दुःख सुख मोक्षबोधि प्रत्येक श्रावक नरक विद्याधर महोज महोजस्क तिर्यक्प्रेत असुर पिशित पिशाच यक्षराक्षस सर्वभूमित भूतिक निम्नग ऊर्ध्वग तिर्यग विकसित ध्यानग सुख योगप्रतिष्ठ उत्तम मध्यम अधमश्चेति। (पृ० 14)

विद्यागणाः

... तद्यथा—विद्योत्तमः सुविद्य सुविद्ध सुबाहु सुषेण सुरान्तक सुरद सुपूर्ण वज्रसेन वज्रकर वज्रबाहु वज्रहस्त वज्रध्वज वज्रपताक वज्रशिखर वज्रशिख वज्रदंष्ट्र शुद्धवज्र वज्रोम वज्रसंहत वज्रानन वज्रकवच वज्रग्रीव वज्रनाभि वज्रान्त वज्रपञ्जर वज्रप्राकार वज्रासु वज्रधनुः वज्रशरः वज्रनाराच वज्राङ्ग वज्रस्फोट वज्रपाताल वज्रभैरव.....नेत्र वज्रक्रोध जलान्तश्चर भूतान्तश्चर गन्धनान्तश्चर महाक्रोधान्तश्चर महेश्वरान्तश्चर सर्वविपान्तश्चर घोरः सुघोरः क्षेप उपक्षेपः पदनिक्षेपः विनायकान्तक्षेपः सविन्यासक्षेपः उत्कृष्टक्षेप बल महाबल सुम्भ भ्रमर भृङ्ग रिटि क्रोध महाक्रोध सर्वक्रोध अजर अजगर ज्वर शोष नागान्तदण्ड नीलदण्ड अङ्गद रक्ताङ्ग वज्रदण्ड मेध्य महामेध्य काल कालकूट शिवत्रोम सर्वभूतसंक्षय शूल महाशूल अति महार्ति यम वैवस्वत युगान्तकर कृष्णपक्ष घोर घोररूपी पट्टिस तोमर गद प्रमथन ग्रसन संसार अरह युगान्तार्क प्राणहर शक्रघ्न द्वेष आमर्ष कुण्डलि सुकुण्डलि अमृतकुण्डलि अनन्तकुण्डलि रत्नकुण्डलि बाहु महाबाहु महारोग दुष्टसर्प व्रसर्प कुष्ठ उपद्रव भक्षक अतृप्त उच्छृष्यश्चेति। (पृ० 7-8)

विद्याराजानः

... तद्यथा—भगवान् द्वादशभुजः षड्भुजः चतुर्भुजः हालाहलः अमोघपाशः श्वेतहयग्रीवः सुग्रीवः अनन्तग्रीवः नीलग्रीवः सुग्रीवः (?) सुकर्णः श्वेतकर्णः नीलकण्ठः

लोककण्ठः विलोकितः अवलोकितः ईश्वरसहस्ररश्मिः मनः मनसः विख्यातमनसः कमलः कमलपाणिः मनोरथः आश्वासकः प्रहसितः सुकेशकेशान्तः नक्षत्रः नक्षत्रराजः सौम्यसुगतः दमकश्चेति । (पृ० 7)

### विद्याराज्ञी

... तद्यथा—ऊर्णा भूलोचना पद्मा श्रवणा ग्रीवा अभया करुणा मैत्री कृपा प्रज्ञा रश्मि चेतना प्रभा निर्मला धीवरा । (पृ० 7)

... तद्यथा—तारा सुतारा नटी भृकुटी अनन्तटी लोकटी भूमिप्रापटी विमलटी सिता श्वेता महाश्वेता पाण्डरावासिनी लोकवासिनी विमलवासिनी अब्जवासिनी दशबलवासिनी यशोवती भोगवती महाभोगवती उलूका अलोका अमलान्तकरी समन्तान्तकरी दुःखान्तकरी भूतान्तकरी श्रिया महाश्रिया भूपश्रिया अनन्तश्रिया लोकश्रिया विख्यातश्रिया लोकमाता समन्तमाता बुद्धमाता भगिनी भागीरथी सुरथी रथवती नागदन्ता दमनी भूतवती अमिता आवली भोगवली आकर्षणी अद्भुता रश्मी सुरसा सुरवती प्रमोदा द्युतिवती तटी समन्ततटी ज्योत्स्ना सोमा सोमावती मायूरी महामायूरी धनवती धनददा सुरवती लोकवती अर्चिष्मती बृहन्नला बृहन्ता सुघोषा सुनन्दा वसुदा लक्ष्मी लक्ष्मीवती रोगान्तिका सर्वव्याधिचिकित्सनी असमादेवी ख्यातिकरी वशकरी क्षिप्रकरी क्षेमदा मङ्गला मङ्गलावहा चन्द्रा सुचन्द्रा चन्द्रावती चेति । (पृ० 7)

### शुद्धावासकायिका देवपुत्राः

एवं शुद्धावासकायिका देवपुत्रा अभिलेख्याः । शक्रश्च देवानामिन्द्रः सयामश्च संतुषितश्च सुनिर्मितश्च शुद्धश्च विमलश्च सुदृशश्च अतपश्च आभास्वरश्च ब्रह्मा च सहांपतिः अकनिष्ठश्च । (पृ० 48)

### स्वप्नानि

प्रथमे यामे तु ये स्वप्ना तां विदुः श्लेष्मसंभवां ।  
द्वितीये पित्तमुत्थानाद् गर्हिता लोकसंभवा ।।  
तृतीये वातिकं विद्याच्चतुर्थे सत्यसंभवाम् । (पृ० 102)

### स्वमन्त्रचर्यार्थधर्मपदम् ( अष्ट )

अथ मञ्जुश्रीः कुमारभूतः स्वमन्त्रचर्यार्थधर्मपदं भाषते स्म । एकेन धर्मेण समन्वा-  
गतस्य बोधिसत्त्वस्य मन्त्राः सिद्धिं गच्छेयुः । कतमेनैकेन? यदुत सर्वधर्माणां निःप्रपञ्चाकारतः



समनुपश्यता। द्वाभ्यां धर्माभ्यां प्रतिष्ठितस्य बोधिसत्त्वस्य मन्त्राः सिद्धिं गच्छेयुः। कतमाभ्यां द्वाभ्याम्? बोधिचित्तापरित्यागिता, सर्वसत्त्वसमता च। त्रयाभ्यां धर्माभ्यां स्वमन्त्रचर्यार्थनिर्देशाः पारिपूरिं गच्छन्ति। कतमाभ्यां त्रयाभ्याम्? सर्वसत्त्वापरित्यागिता, बोधिसत्त्वशीलसंवरा-  
 रक्षणतया, स्वमन्त्रापरित्यागिता च। चतुर्भिः धर्मैः समन्वागतस्य प्रथमचित्तोत्पादिकस्य बोधि-  
 सत्त्वस्य मन्त्राः सिद्धिं गच्छेयुः। कतमैश्चतुर्भिः? स्वमन्त्रापरित्यागिता, परमन्त्रानुपच्छेदनता,  
 सर्वसत्त्वमैत्र्योपसंहरणता, महाकरुणा भाविता चेतना च। इमैश्चतुर्भिः धर्मैः समन्वागतस्य  
 प्रथमचित्तोत्पादकस्य मन्त्राः सिद्धिं गच्छेयुः। पञ्च धर्मा बोधिसत्त्वस्य पिटकसमवशरणता  
 मन्त्रचर्याभिनिर्हारिं बोधिपूरिं गच्छेयुः। कतमे पञ्च? विविक्तदेशसेवनता, परसत्त्वाद्वेषणता,  
 लौकिकमन्त्रानिरीक्षणता, शीलश्रुतचारित्रस्थापनता च। इमे पञ्च धर्माः मन्त्रचर्यार्थपारिपूरिं  
 गच्छेयुः। षट् धर्मा मन्त्रचर्यार्थपारिपूरिं गच्छेयुः। कतमे षट्? त्रिरत्नप्रसादानुपच्छेदनता,  
 बोधिसत्त्वप्रसादानुपच्छेदनता, लौकिकलोकोत्तरमन्त्रानिन्दनता, निःप्रपञ्चधर्मधातुदम्भनता,  
 गम्भीरपदार्थमहायानसूत्रान्ताप्रतिक्षेपणता, अखिन्नमानसता, मन्त्रचर्यापर्यैष्टिः, कुशलपक्षे  
 अपरिहानता। इमे षट् धर्मा विद्याचर्यामन्त्रसिद्धिं समवशरणतां गच्छन्ति। सप्त धर्मा विद्या-  
 साधनकालौपयिकमन्त्रचर्यानुप्रवेशनतां गच्छन्ति। कतमे सप्त? गम्भीरनयः प्रज्ञापारमिता-  
 भावना पठनदेशनस्वाध्यायनलिखनबोधिसत्त्वचर्याविमुक्तिः कालदेशनियमजपहोममौनतप-  
 अविलम्बितगतिमतिस्मृतिप्रज्ञाधृति-अधिवासवतः बोधिसत्त्वसंभारमहायानधर्मनयसंप्रवेशनतः  
 स्वमन्त्रमन्त्राकर्षणरक्षणसाधनक्रियाकौशलतः महाकरुणामहामैत्रीमहोपेक्षामहामुदिता-  
 पारमिताभाववतः निःप्रपञ्चसत्त्वधातुधर्मधातुतथतासमवसरणतः द्वायाकारसर्वज्ञज्ञानपरि-  
 गवेषणतः सर्वसत्त्वारित्यागः हीनयानास्पृहणतश्च। इमे सप्त धर्मा विद्याविद्यामन्त्रसिद्धिं  
 पारिपूरतां गच्छन्ति। .... कतमे अष्ट? दृष्टादृष्टफलश्रद्धा कौतुकजिज्ञासतः अविचिकित्सा अष्ट-  
 धर्मविद्यामन्त्रचर्यासिद्धिं समवसरणतां गच्छन्ति। बोधिसत्त्वप्रसादसफलशुद्धिविकुर्वणतः  
 अविपरीतमन्त्रग्रहणगुरुगौरवतः बुद्धबोधिसत्त्वमन्त्रतन्त्र-आचार्योपदेशग्रहण-अविसंवादन-  
 सर्वस्वपरित्यागतः सिद्धक्षेत्रस्थानास्थानस्वप्नदर्शनकौशलप्रकाशनतः विगतमात्सर्यमल-  
 मखिलस्त्यानमिद्धवीर्यारम्भसततबुद्धबोधिसत्त्वाननिर्यातनतः। संक्षेपतः अतृप्तकुशलमूलमहा-  
 संनाहसंनद्धः सर्वविघ्नान् प्रहर्तुकामः बोधिमण्डाक्रमणमहाभोगप्रतिकाङ्क्षणमहेशाख्ययात्म-  
 भावतः महेशाख्यपुद्गलसमवधानाविरहितकल्याणमित्रमञ्जुश्रीकुमारभूतबोधिसत्त्वसमधान-  
 तश्च। इमे अष्टधर्मा मन्त्रचर्यार्थसिद्धिं समवशरणतां च गच्छन्ति। (पृ० 15-16)



# आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में मूर्ति और मण्डल

—सुनीति कुमार पाठक—

[ आधुनिक विद्वानों ने प्रायः बौद्ध शासन में मन्त्र, मूर्ति, मुद्रा और मण्डल आदि तत्त्वों को परवर्ती काल में प्रक्षिप्त हुआ माना है। परन्तु मञ्जुश्रीमूलकल्प पर ध्यान दिया जाए तो इस ग्रन्थ में प्राचीनकाल में भारतवर्ष में प्रचलित चार मुख्य सांस्कृतिक प्रवाहों का परिचय मिलता है; यथा—सिन्धु सभ्यता तथा वैदिक संस्कृति, श्रमण संस्कृति, लोकायत संस्कृति और तान्त्रिक संस्कृति। प्रस्तुत लेख में मञ्जुश्रीमूलकल्प के प्रमाण से प्राचीनकाल से बौद्ध समाज में मूर्ति के प्रयोग पर दृष्टि डालते हुए मूर्ति और मन्त्र तथा मूर्ति और मण्डल इत्यादि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। ]

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प बौद्धों के लिए एक आकर कल्प संकलन है, इसलिए इस कल्प का आकार-भेद चीनी, तिब्बती और संस्कृत में कुछ-कुछ भिन्न है। बौद्धतन्त्रों के विभाजन में क्रियातन्त्र के कल्प विधि-विधानों का यह मानक ग्रन्थ है। वैदिक और जैन कल्पसूत्रों में विधि-विधानों की निदेशना मिलती है। पाञ्चदैवत तन्त्रों में भी कल्पविधान भिन्न-भिन्न हैं। अतः एव मञ्जुश्रीमूलकल्प को तन्त्र का एक विधानकोष कहा जा सकता है। इसकी रचना और संकलन ई० पूर्व युग से लेकर तिब्बती राजवंश के अभ्युदय काल तक एक हजार साल में हुआ, यह अत्युक्ति नहीं है। भारतीय परम्परा में यह प्रायः होता रहता था।

पुनरपि, बौद्ध शासन में मन्त्र, मूर्ति, मुद्रा और मण्डल आदि को कुछ विद्वानों ने परवर्ती काल में प्रक्षिप्त माना है। उन लोगों ने भारतवर्ष में बौद्ध शासन के अवक्षय का कारण भी इसे माना है और वे इसे भारत में बाहरी लोगों के प्रभाव का परिणाम है, ऐसा भी अनुमान करते हैं। परन्तु, यह अभिमत विचार सापेक्ष है। क्योंकि, भारतवर्ष की सीमा इतिहास में बदलती रही है। अधुना भारत की सीमा संकीर्ण एवं क्षुद्राकार है। भारतवर्ष प्राचीन काल से आजतक बहुजनिक देश रहा है। अतः एव भारतवर्ष में सर्वत्र युक्ति, विचारधारा, समाजप्रथा, आचारादि विभिन्न होना भारतीय समाज-विज्ञान की महत्त्वपूर्ण विरासत है। मोहनजोदड़ो-हड़प्पा के काल से लेकर वर्तमान काल तक—अनुमानतः पाँच-छह हजार सालों में न जाने कितने सैकड़ों जनों की आबादी इस भारतवर्ष के प्रान्त-प्रान्त में चली आ रही है। इस दृष्टि से मञ्जुश्रीमूलकल्प भारतवर्ष का एक समाजदर्पण है।

इस कल्प तन्त्र के आधार पर बौद्ध शासन में मूर्ति और मण्डल के विधानों पर ध्यान दिया जाय तो निम्नलिखित विषय स्पष्ट होते हैं।

#### (1) सिन्धु सभ्यता तथा वैदिक संस्कृति

ये दोनों एकाकार थे कि नहीं यह एक अलग अध्ययन का विषय है, परन्तु श्रोत और स्मार्त धारा हिन्दू संस्कृति कहलाती है।

#### (2) श्रमण संस्कृति

जिसके प्रतिभू अब तक बौद्ध, जैन आदि विद्यमान हैं। आजीवक आदि श्रमणों के नाम का उल्लेख मात्र अवशेष है।

#### (3) लोकायत संस्कृति

अगणित छोटी बड़ी जातियों एवं गोष्ठियों में विशेष रीति-रिवाज, चलन, बोलियाँ, आस्था-विश्वास अब तक चले आ रहे हैं। वे प्रतिष्ठित धर्म सम्प्रदायों से बाहर अपने-अपने परिचय पर जीवित हैं। उनकी संस्कृति की डोरी अति प्राचीन रही है।

#### (4) तान्त्रिक संस्कृति

मानव-जीवन के भौतिक लाभ के साथ आध्यात्मिक निःश्रेयस को एक डोरी में बाँधने के लिए छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच का समवाय है। इस संस्कृति का परिचय पूर्णतया अब तक उपलब्ध नहीं है। क्योंकि यह भारतीय जीवन के विकास के क्रम के साथ लगा रहा है इसलिए बाहर से आये हुए लोगों, विधर्मियों का भी योगदान इसमें रहा है।

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में इन चारों सांस्कृतिक प्रवाहों का परिचय मिलता है। इसकी विषयवस्तु सामान्यतः असम्बद्ध है।

#### बौद्ध समाज में मूर्ति का प्रयोग

श्रमण संस्कृति में मूर्ति का प्रयोग प्रारम्भ से नहीं मिलता है। हालांकि हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ो से प्राप्त मूर्तियों के नमूने हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि मूर्ति का परिचय भारतवर्ष की सभ्यता की देन है। परन्तु त्रिपिटक में यह भी उल्लेख है कि भगवान् बुद्ध ने मनुष्य की अवयवी मूर्ति के पूजन को प्रोत्साहन नहीं दिया था। कोशल की राजमहिषी मल्लिका ने भगवान् बुद्ध से मूर्ति की प्रार्थना की थी। उन्होंने एक ज्यामितिक



रेखाचित्र से पाँच स्कन्धों को अवयवी आकार प्रदान किया था, जिसके आधार पर अब तक बौद्धों ने स्तूप रचना की शैलियाँ बनायी हैं। क्योंकि धर्मधातु का मूलतः अवयव नहीं है। कुछ विद्वानों ने बुद्ध मूर्ति की निर्माण कला ग्रीक मूर्ति अपोलो आदि का अनुकरण है, ऐसा माना है। परन्तु मोहनजोदड़ो से प्राप्त मूर्तियों से यह कहा जा सकता है कि मूर्ति कला में मानव प्रतिकृति का अवयव पुरातन युग से प्रचलित था। मञ्जुश्रीमूलकल्प में पाँच पटलों (चार से सात एवं दसवाँ पटल) का विषय पटविधान पर आधारित है। पट निर्माण की शैली पर अलग विचार अन्यत्र है, परन्तु यहाँ बौद्धतन्त्रों के साधनक्रम में मूर्ति के प्रयोग पर ध्यान दिया गया है।

### मूर्ति और मन्त्र

बौद्ध वाङ्मय में धारणी पिटक हमें आज उपलब्ध नहीं है। मन्त्रों के प्रायोगिक पक्ष में धारणी का उद्भव हुआ है। मन्त्रों से चित्त-चैतसिक धर्मों की परिशुद्धि होती है, परन्तु सदैव मन्त्रों के अजपाजप में सिद्धों-साधकों के अलावा सामान्य व्यक्तियों के लिए यह दुर्लभ है। अत एव सामान्य व्यक्ति के लिए धारणी मन्त्र का काम्यविधान रखा जाता है। भोटी भाषा में उपलब्ध धारणियों की संख्या 260 है। उनके अलावा नेपाल में बौद्ध संस्कृत पाण्डुलिपियों में धारणी-मन्त्रों का नाम नेपाल राष्ट्रीय अभिलेखालय की कुञ्जिका (कैटलाग) में उल्लेख है।

मन्त्रों के उपयोग के लिए साधकों ने मन्त्र पद का विभाजन किया है। जैसे, हृदय मन्त्र, उपहृदय मन्त्र, अक्षरमन्त्रपद आदि आर्य मन्त्रों के भेद हैं और अनार्य मन्त्र पद भी विभिन्न हैं। आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में मन्त्र पद का विन्यास एवं स्पष्टीकरण इस प्रकार है।

नमः सर्वतथागतानामचिन्त्याप्रतिहतशासनानां ओं र र स्मर अप्रतिहतशासनकुमार रूपधारिण हूम् हूम् फट् फट् स्वाहा। अयं स कुमार मञ्जुश्रीः मूलमन्त्रः। सर्वेषां तथागतानां हृदयः। सर्वैश्च तथागतैर्भाषितः भाषिष्यते। ...शाक्यमुनिना तथागतेनाभ्यनुज्ञातः परमहृदयम्। भवति चात्र ॐ वाक्ये द (वाक्येदं) नमः। उपहृदयं चात्र वाक्ये हूम्।<sup>1</sup>

अत एव यह स्पष्ट है कि मन्त्र शब्द मात्र नहीं है, अथवा ध्वनि का निर्गमन मात्र नहीं है, मन्त्र अधिभाषा है, अंग्रेजी में जिसे मेटालैंग्वेज व मेटास्पीच कहलाता है।



इस प्रसङ्ग में उल्लेखनीय है कि राढ़ भूमि तथा पश्चिम बंगाल में आज भी लोकसंस्कृति धर्मपूजा संरक्षित है। शशिभूषण दास गुप्ता के कथनानुसार धर्मपूजा की रीति बौद्ध समाज की देन है। क्योंकि धर्मठाकुर को ब्राह्मण लोगों ने माना है, किन्तु उसके पुजारी लोग पण्डित या ठाकुर कहलाते हैं। वे लोग ब्राह्मण नहीं हैं। यह सम्भवतः श्रमणों का सांस्कृतिक रूपान्तर है। लोकायत संस्कृति में धर्मठाकुर के आधार पर कथा साहित्य और गीत, नृत्य आदि प्रचलित हैं। सामान्यतः धर्मठाकुर का अवयव नहीं होता है। यह त्रिकोण प्रस्तर खण्ड है। स्वप्न में आदेश मिलने पर उस पत्थर का संग्रह किया जाता है, ऐसा विश्वास प्रचलित है।

पुनरपि प्रस्तर और वृक्ष आदि की पूजा करना मानव समाज का प्राचीन संस्कार है। आधुनिक लोक संस्कार में यह निन्दनीय है, इसे जंगलीपन का आचार कहा जाता है। परन्तु मूर्ति के अभ्युदय और विकास में यह महत्त्वपूर्ण है। मानव जाति के आविर्भाव से कई हजार वर्ष पूर्वकाल से यह प्रस्तर पृथ्वी में विद्यमान थे। धीरे-धीरे निसर्ग के प्रभाव से प्रस्तर पिघलते-पिघलते और सौर-ताप से वृक्ष और तरु-लता आदि उत्पन्न हुए। अत एव यह सत्य है कि प्रस्तर और वृक्ष मनुष्यों के अग्रज हैं। बाद में मूर्ति की रचना के लिए मनुष्यों ने पत्थर, लकड़ी और मिट्टी का उपयोग किया है। बौद्ध समाज में अब तक इन उपकरणों का व्यवहार प्रचलित है। मञ्जुश्रीमूलकल्प में भी यह विधान उपलब्ध है।

पुनरपि विविध विद्याएं जो गन्धर्व, यक्ष, यक्षिणी, नाग आदि मनुष्येतर सत्त्वों में प्राचीन काल से प्रचलित थीं, उन सबका भी उल्लेख इस कल्पतन्त्र में है, जैसे— दधिमधुघृताक्तानां तिलानामष्टशतं जुहुयात् त्रिसन्ध्यं सप्ताहम्। यं मन्त्रमुद्दिश्य सोऽस्य वशो भवति, यदुच्यते तत्कर्म करोति। प्रत्यादेशं वा प्रयच्छति, देवान् वशीकर्तुंकामः देवदारुसमिधानामष्टसहस्रं जुहुयात्। सप्तरात्रेण वश्यो भवति। इत्यादि।<sup>1</sup>

उपर्युक्त बात इस कल्पतन्त्र में इस प्रकार से मिलती है—

एष भगवां सर्वज्ञः बुद्धैर्मन्त्ररूपेण व्यवस्थितः ।

महाकारुणिकः शास्ता विचेरुः सर्वदेहिनाम् ॥

मन्त्राणामधिपतिः श्रीमां ख्यातो उष्णीषसम्मतः ।

करुणाय समागम्य स्थितोऽयमेषमक्षरः ।

स धर्मधातुं निश्चित्य स्थितोऽयं विश्वरूपिणः ॥

(एकाक्षरचक्रवर्त्युद्धवपटल 25.8-9)

बौद्ध संस्कृत वाङ्मय में पूर्णतया पाणिनीय संस्कृत शैली नहीं है। अतः इन श्लोकों का तात्पर्य संक्षेप में दिया जा रहा है—भगवान् सर्वज्ञ मन्त्र रूप से सब देहधारी सत्त्वों में विराजमान हैं। वह श्रीमान् मन्त्रों के अधिपति नाम से ख्यात होने से भी उष्णीष में विराजित अक्षर हैं। जिसका क्षरण नहीं है, वह धर्मधातु को आश्रय कर विश्व में आकारवान् विश्वरूपी है।

इस उद्धरण से मन्त्र पद के साथ सर्वज्ञता का समवाय सिद्ध होता है और वह देह मात्र में विराजमान विश्वरूपी है, जिससे मन्त्र की व्यापकता स्पष्ट होती है।

किन्तु मन्त्र का शाब्द प्रकाश से स्फोट होने पर वह अधिभाषा होता है। भाषा से प्रकटित होने पर शब्द शास्त्र से व्याकरण तथा ध्वनि विज्ञान, सन्धि, नाम, धातु आदि के विषय होते हैं। कुछ विद्वानों ने मन्त्रपदों की व्याकरण से अर्थसंगति पर अध्ययन किया है। मन्त्र दो प्रकार का है—रुत तथा राव मन्त्र, और अरुत, नीरव नाद है। अरुत नीरव नाद का साक्षात्कार करना अनुभवगम्य है। उससे शाब्द स्फोट होने से पहले नील, कृष्ण, श्वेत, पीत, रक्त आदि पाँच प्रकार के रंगों का साक्षात्कार करना ही मन्त्र का उष्णीष सम्मत वर्ण स्फोट है। षडङ्गयोग समाधि में यह अनुभव होता रहता है।

सामान्यतः इसके संदर्शन के लिए स्मृत्युपस्थान पर अधिक बल देना चाहिए। साधनमाला में यह वर्ण स्फोट के आधार पर शून्य भावना से नाभिकमल में उष्णीष सम्मत वर्णाली को प्रत्यक्ष करने की बातें मिलती हैं। वह स्पन्दन वाक्पथ से प्रत्यक्ष नहीं होता है, परन्तु ध्यानेन्द्रिय से साकारता (प्रत्यक्षीकरण) होती है। जो अमूर्त था वह मूर्त विग्रह का आकार तथा रूप परिग्रह करता है। यह चार स्मृत्युपस्थापनों का समवाय है।

इसलिए मन्त्र पद भाषा में व्यक्त नहीं होता। यह मूर्ति के सामने उद्गिरण किया जाता है। जिससे उद्गाता के काय और मन में अनुरूप स्पन्दन का अधिकार मिलता है। अत एव मन्त्र के अर्थ के सन्दर्भ में नीतार्थ, नेयार्थ, विचार को प्रायः गौण रखा जाता है। इस कारण मन्त्रपाठ कभी-कभी व्यर्थ होता है। क्योंकि उद्गाता को मन्त्रध्वनि के स्पन्दनों से परिचय नहीं हो पाता।



शाब्द विद्या के महामुनि पाणिनी ने 45 वर्णमाला को प्रकट करते समय स्पष्टीकरण किया है कि नटराज महेश्वर ने अपने डमरु से नव-पंच प्रकार की ध्वनि को विस्तार किया था, जिससे अ, इ, उ आदि स्वरों और व्यञ्जनों का प्रकाश हुआ।

**नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्च वारान् ।**

**उद्धर्तुकामः सनकादि सिद्धानेतद्विमर्शं शिवसूत्रजालम् ॥ (माहेश्वरसूत्र)**

अत एव तन्त्रों में कहा जाता है कि मन्त्र पद की शक्तियाँ और हल् (व्यञ्जन), अक्षर 'क्' आदि बीजभूत प्रकाश मात्र हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ऋग्वेद आदि में मुख्यतः 35 देव-देवियों का नाम मिलता है, किन्तु उपर्युक्त सूत्र के प्रमाण से 45 वर्णाक्षर हैं। इससे भारतीय वर्णमाला के विकास से सम्बन्धित कुछ बातें आती हैं। जिनके साथ भिन्न-भिन्न लिपियों की लेखन शैलियाँ भी हैं।

### मूर्ति और मण्डल

आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में मण्डल विधान के साथ मूर्तियों का विन्यास मिलता है। परन्तु इस कल्प की ग्रन्थन में प्राचीनता यत्र-तत्र विद्यमान है। उसका विवरण इस प्रकार है। कुमारभूत मञ्जुश्री को समनन्तर समापत्ति लाभ होने पर अपने नाभिमण्डल से रश्मिजाल प्रकटित होने लगा था, जिसकी आभायें एक नहीं थीं, परन्तु बहुत थीं। सूत्र में बहुत्व को सूचित करने के लिए “कोटिनियुतशतसहस्रपरिवारित” ऐसी भाषा प्रयुक्त है! यह वस्तुस्थिति है अतिशयोक्ति नहीं।

रश्मिजाल का मण्डल ही देवमण्डल है। क्योंकि अधुना मूर्ति को साकार विग्रह रूप में प्रत्यक्ष करना इन्द्रियों की स्थूलता है। अमूर्त द्युति का रूपायन ध्यानेन्द्रिय से होता है। इसलिए बोधिरश्मिजाल से परिवारित शाक्यमुनि के बोधिमण्ड में “अत्तदीपो भव” यह राव उदित हुआ था। इस शिक्षा पद को आत्मदीपनता ज्ञान कहा जाता है। बोधिपक्षीय धर्मों के निर्यास से अपने-अपने परिशुद्ध चित्त-चैत से अपना दीप प्रज्ज्वलित किया जाय। ध्यानेन्द्रियों से प्रज्ञा की विमूर्तता को देखो—आत्मदीपो भव, देव-देवियों के मण्डलों का आभास निरन्तर विद्यमान है, जिससे विश्वरूप का प्रत्यक्ष होता है। मञ्जुश्रीमूलकल्प में इस प्रकार कहा है—

**मण्डलं दर्शनादेव किं पुनर्मन्त्रसाधने ।**

**सत्त्वानामल्पपुण्यानां निर्वृते शाक्यपुङ्गवे ॥**



कुत एवंविधा भोगा विधिरेषा नु कल्प्यते ।  
 दरिद्रजनतां दृष्ट्वा मञ्जुघोषो महाद्युतिः ॥  
 उदीरयेत् कल्पसंक्षेपं मण्डलं तु समासतः ।  
 शालितण्डुल चूर्णेस्तु सूक्ष्मैः पञ्जरङ्गोज्ज्वलैः ।  
 शुक्ल-पीत-रक्त-कृष्ण-हरित-वर्णैर्वर्णयेत् ॥

(मण्डलविधानपटल 2.50-52)

मण्डल का दर्शन करने पर मन्त्र का साधन गौण हो जायेगा, क्योंकि मन्त्र के द्वारा आवाहन किया हुआ द्युतिमान रश्मिजाल से परिवारित आलोकप्रभा से अभीष्ट देव व देवी विराजित होती है। जिनके आह्वान के लिए भिन्न-भिन्न मन्त्र पाठ किये जाते हैं। जैसे—

ॐ ब्रह्म सुब्रह्म ब्रह्मवर्चसे शान्तिं कुरु स्वाहा। ॐ गरुडवाहन चक्रपाणि हूँ हूँ समयमनुस्मर। ॐ महामहेश्वर। भूताधिपति। वृषध्वज। प्रलम्बजटाजूटमुकुटधारिणे सित-भस्मधूसरितमूर्ति हूँ फट्-फट्। बोधिसत्त्वो ज्ञापयति स्वाहा।<sup>1</sup> आदि मन्त्र वैष्णवतन्त्र और शैवतन्त्रों में हैं, ऐसा उल्लेख है।<sup>2</sup>

यह पहले कहा गया है कि मूलतः तन्त्र में भेद विचार नहीं है। चित्त, चैत-धर्म, संस्कार, अविद्या आदि के प्रभाववश अध्यात्म का विभाजन किया जाता है। परन्तु परिशुद्धि का स्तर एकाधिक निष्पादित नहीं होता है। इस भिन्न-भिन्न चित्त-चैतसिक स्थिति के अनुसार विभिन्न मण्डल विधान और मूर्तियों का समागम (निर्माण) अलौकिकता नहीं है। वह सांवृतिक, परिकल्पित उत्पन्नक्रम का विधायक है। मञ्जुश्रीमूलकल्प में इस प्रकार के समन्वयात्मक विधानों से यह स्पष्ट होता है कि तन्त्र परम्परा की प्राचीन धारा ईसा पूर्व युग से चली आ रही थी।

1. आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प, पृ० 23, इस निबन्ध की विषयवस्तु का संकलन संस्कृत, भोटी और चीनी भाषा में विद्यमान स्रोतों से किया गया है। इनके उद्धरणों में पाठभेद भी मिलते हैं, जैसे—शैव मन्त्र में गणपति शास्त्री जी के सम्पादित ग्रन्थ में “प्रलम्बजटामुकुट” ऐसा पाठ है जो चीनी अनुवाद में भी है, परन्तु इस लेख में भोट पाठ के अनुसार “जटाजूट” रखा गया है। जो बहु प्रचलित विशेषण है।
2. उपर्युक्त तीन मन्त्र पदों से यह प्रतीत होता है कि शैवतन्त्र और वैष्णव तन्त्र की तरह सम्भवतः ब्राह्मतन्त्र भी प्रचलित था। गाणपत्य और सौरतन्त्रों का भी परोक्ष उल्लेख है। मात्र तन्त्र में विन्यस्त रूपावली से विभिन्न मूर्तियाँ और मण्डल परिलक्षित हैं।

कल्प विधान में सभी आचारों और प्रयोगों का एकत्र संकलन होता है। वैदिक कल्पसूत्रों में भी इस प्रकार के विधि-विधान मिलते हैं। जैन कल्पसूत्रों में भी विविध विषयों का संकलन है। मञ्जुश्रीमूलकल्प में बौद्ध परम्पराओं के साथ-साथ तन्त्र विषयक कई विषयों का परिचय मिलता है। जैसे एक और उल्लेख है—

ॐ हूँ जः ।

एष मन्त्रः समासेन कुर्यान्मानुषकं फलम् ।

नमः समन्तबुद्धानां समन्तोद्योतितमूर्तिनाम् ॥

अन्यत्र भी कहा है—

एष मञ्जुश्रियस्य कुमारभूतस्य कार्तिकेय—मञ्जुश्रीर्नामकुमारः अनुचरः सर्वकर्मिकः जापमात्रेणैव सर्वकर्माणि करोति, सर्वभूतानि त्रासयति, आकर्षयति, वशमानयति, शोषयति, चालयति यथेप्सितं वा विद्याधरस्य तत्सर्वं सम्पादयति ।<sup>1</sup>

•



# त्रिरल मङ्गलगाथा

—ज्ञलछेन नमडोल—

[ त्रिरल और द्वादशलीला से सम्बद्ध यह प्रस्तुत मङ्गलगाथा (नामक ग्रन्थ) क-ग्युर संग्रह के तन्त्रवर्ग और धारणीसंग्रह दोनों में बुद्धवचन के रूप में उपलब्ध होती है। परन्तु तन्युर-संग्रह के अन्त में मङ्गलगाथा से सम्बद्ध ग्रन्थों में इसे आचार्य नागार्जुन की रचना के रूप में दिया है। वस्तुतः यह ग्रन्थ बुद्धवचन या शास्त्र दोनों में किस श्रेणी में है? तथा एक ही ग्रन्थ को बुद्धवचन और शास्त्र दोनों के रूप में स्थापित करने में क्या कारण रहे हैं? इन सबके विषय में भूमिका में यथासम्भव परीक्षण एवं अन्वेषण किया गया है।

सामान्यतः इस ग्रन्थ के पुष्पिका में “त्रिरल द्वादशलीला मङ्गलगाथा” ऐसा नाम दिया हुआ है। तदनुसार इसमें त्रिरल से सम्बद्ध तीन श्लोक और द्वादशलीला से सम्बद्ध 16 (सोलह) श्लोक हैं। इसके प्रथम तीन श्लोक तन्त्र के मण्डलविधि और अभिषेकविधि से सम्बद्ध अनेक ग्रन्थों में उद्धृत हैं। जैसे आचार्य जगद्गुरु विरचित ‘वज्राचार्यक्रियासमुच्चय’ और आचार्य अभयकरगुप्त विरचित ‘मण्डलविधिवज्रावली’ जो संस्कृत में उपलब्ध है—इन दोनों ग्रन्थों में उक्त तीनों श्लोक उपलब्ध हुए हैं। अतः यहाँ उन तीनों श्लोकों के भोटपाठ का संस्कृत पाठ के साथ तुलनात्मक अध्ययन के साथ सम्पादित किया गया है। साथ ही, संस्कृत-पाठ का हिन्दी-अनुवाद और इसके विचारणीय विषयों से सम्बद्ध अनेक तथ्यों का विश्लेषण-परक परिचय भी दिया गया है। ]

## त्रिरल मङ्गलगाथा

( क ) मूल संस्कृत पाठ एवं हिन्दी भाषानुवाद

लक्ष्मीधरः काञ्चनपर्वताभस्त्रिलोकनाथस्त्रिमलप्रहीणः ।

बुद्धो विबुद्धाम्बुजपत्रनेत्र आद्यं प्रजाशान्तिकमङ्गलं तत्<sup>1</sup> ॥ 1 ॥

भगवान् बुद्ध सम्पत्तियों (स्वार्थ और परार्थ) की श्री से युक्त, काञ्चन पर्वत के समान आभा वाले, लोक (तीनों लोक) के नाथ हैं, जिन्होंने तीनों प्रकार के मलों (काय,

- 
1. क्रियासमुच्चय, पृ० 171 और वज्रावली, पृ० 100 में तीनों श्लोकों के अन्तिम चरण में “तन्मङ्गलं भवतु शान्तिकरं तवाद्य” इस प्रकार का एक समान पाठ दिया हुआ है और इन तीनों श्लोकों के प्रथम तीन चरण 11 अक्षरों वाली इन्द्रवज्रा और अन्तिम तीनों चरण 14 अक्षर वाला वसन्ततिलक छन्द के रूप में दिया हुआ प्रतीत होता है। कई पूजा-पाठ के ग्रन्थों में प्रथम श्लोक के अन्तिम चरण भी शेष दो श्लोकों के समान “तन्मङ्गलं लोकहितम्-आद्यम्” ऐसा भी दृष्टिगोचर होता है।



वाक् एवं चित्तमल) का प्रहाण कर दिया है तथा जिनके नेत्र विकसित कमल के पत्र के समान हैं—ऐसा यह प्रजा शान्तिकारी प्रथम मङ्गल है ॥ 1 ॥

तेनोपदिष्टः प्रवरस्त्वकम्प्यः ख्यातस्त्रिलोके नरदेवपूज्यः ।

धर्मोत्तमः शान्तिकरः प्रजानां तन्मङ्गलं लोकहितं द्वितीयम् ॥ 2 ॥

उन (सम्यक्सम्बुद्ध) के द्वारा उपदिष्ट उत्तम धर्म, सर्वश्रेष्ठ, अप्रकम्पित, तीनों लोकों में प्रसिद्ध, देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजनीय तथा (विनेय) जनों के लिए शान्तिकारक है—ऐसा यह लोककल्याणकारी द्वितीय मङ्गल है ॥ 2 ॥

सद्धर्मयुक्तः श्रुति<sup>1</sup>मङ्गलाढ्यः सङ्घो नृदेवासुरदक्षिणीयः ।

श्रीहीनिवासः<sup>2</sup> प्रवरो गणानां तन्मङ्गलं लोकहितं तृतीयम्<sup>3</sup> ॥ 3 ॥

॥ इति त्रिरत्नमङ्गलगाथा समाप्ता ॥

सद्धर्म (के आचरण) से युक्त एवं श्रवणरूपी मङ्गल से सुसम्बद्ध (भगवान् बुद्ध का) यह भिक्षु-संघ है, जो देव, मनुष्य और असुरों द्वारा दान देने और सत्कार करने योग्य है, जिसमें श्री एवं (पाप करने में अपने और दूसरों से) लज्जा का निवास है तथा जो अन्य सभी (तैर्थिक) संघों से श्रेष्ठ है—ऐसा यह लोककल्याणकारी तृतीय मङ्गल है ॥ 3 ॥

॥ त्रिरत्न मङ्गलगाथा समाप्ता ॥



1. श्रुत०-वज्रावली, पृ० 100

2. यः श्री०-वज्रावली, पृ० 100, श्रीनिवासः-क्रि० सं०, पृ० 179; श्रीहीनि०-भो० पाठ (देगे, कग्युर, तन्त्र 'व', प० 262) ।

3. यह 'मङ्गलगाथा' संस्कृत भाषा में आचार्य जगद्दर्पण कृत क्रियासमुच्चय, पृ० 171 और आचार्य अभयाकर गुप्त कृत वज्रावली, पृ० 100 से उद्धृत कर दिया गया है। ये दोनों ग्रन्थ शतपिटक सीरीज़ में (सं० 237 और 239), नई दिल्ली से सन् 1977 में डॉ० लोकेशचन्द्र द्वारा प्रकाशित किया है।

( ख ) मूल भोट-पाठ

དཀོན་མཆོག་གསུམ་གྱི་བཀྲིས་ཀྱི་ཚོགས་སུ་བཅད་པ།

༄༅། །ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་མངའ་བ་གསེར་གྱི་རི་བོ་ལྟོ།

འཛིག་རྟེན་གསུམ་གྱི་མགོན་པོ་དྲི་མ་གསུམ་སྤངས་པ།

སངས་རྒྱས་པདྨ་རྒྱས་པའི་འདབ་འདྲའི་ཕུན་མངའ་བ།

བཀྲིས་དེས་ནི་སྦྱེ་དགུ་མཛེས་བྱེད་དང་པོ་ལོ། ༡ །

དེ་ཡིས་ཉེ་བར་བསྐྱན་པའི་མཆོག་རབ་མི་གཡོ་བ།

འཛིག་རྟེན་གསུམ་ན་གྲགས་ཤིང་ལྟ་དང་མིས་མཆོད་པ།

༡ སློབ་དཔོན་བུ་པད་མཛད་པའི་གསང་འདུས་སྐྱབ་ཐབས་སུ་ “དཔལ་ལྷན་གསེར་གྱི་རི་བོ་ལྟོ་འབར་བ།”  
ཞེས་སོགས་དང་། སློབ་དཔོན་བྱང་དཀའ་རྒྱ་བས་མཛད་པའི་རྟོ་ཕྱེད་ཞེས་བྱ་བའི་འབྲེལ་པར། “དཔལ་འཛིན་དང་  
ནི་གསེར་གྱི་རི་བོ་ལྟོ།” ཞེས་སོགས་ཆོག་བར་དགུ་ཅན་དུ་གསལ་ཞིང་འགྱུར་བྱེད་ཤིན་ཏུ་ཆེ།

༢ འདོན་ཆ་ཁག་སོགས་སུ་ “སངས་རྒྱས་པདྨ་འདབ་མ་རྒྱས་འདྲའི།” ཞེས་གསལ་ཡང་། གྲེ་དགོ། ལྷ་ས། སྐར་  
ཐང་པར་མ་བཅས་བཀའ་འགྱུར་ཁག་གསུམ་དང་། གྲེ་དགོ་དང་གསེར་གྱིས་བསྐྱན་འགྱུར་སོགས་སུ་གོང་གསལ་  
ལྟར་འཁོད་ཡོད་པ་ནི་ལེགས་སྒྲུར་དང་མཐུན་ཆོད།

༣ གྲེ་དགོ་བཀའ་འགྱུར་སོགས་སུ་ “སྦྱེ་དགུ་རྣམས་ལ།” ཞེས་གསལ་ཡང་། དེ་ལྟར་བཞོད་ན་ཆོག་བར་བཅུ་གཉིས་  
ཅན་དུ་འགྱུར་བས་རྒྱང་པ་མ་སྦྱོམས་པར་འགྱུར་ཞིང་། གཞུང་པལ་ཆེ་བར་གོང་གསལ་ལྟར་བཞོད་ཡོད།

༤ ལེགས་སྒྲུར་གྱི་རྒྱ་དཔེ་ལག་ཏུ་སོན་པ་གཉིས་དང་། དེ་མིན་བོད་འགྱུར་མང་པོའི་ནང་ཆོག་རྒྱང་མ་མ་གསུམ་ “དེ་  
ནི་དེ་རིང་བྱེད་ལ་ཞི་བྱེད་བཀྲིས་ཤོག” །ཅེས་གཅིག་གྱུར་དུ་བཞོད་ཡོད་ཀྱང་། ཡོངས་གྲགས་འདོན་སྤྲོལ་ཆེ་  
བའི་དགོས་དབང་ལ་བརྟེན་ནས་འདིར་བཀའ་འགྱུར་ཁག་དང་། སློབ་དཔོན་སྐྱབ་ཀྱིས་མཛད་པར་བཤད་པ་དེ་  
དང་། འདོན་ཆ་ཁག་སོགས་སུ་གསལ་བ་དང་མཐུན་པར་བཞོད་དོ། །ཡང་འདོན་ཆ་མང་པོར་ཆོག་རྒྱང་མ་མ་ “དེ་  
ནི་འཛིག་རྟེན་དགོ་བའི་བཀྲིས་དང་པོ་ལོ།” ཞེས་བཞོད་པ་ཡང་ཡོད།



ཆོས་ཀྱི་དམ་པ་སྐྱེ་དགུ་ནམས་ལ་ཞི་བྱེད་པ།  
 དེ་ནི་འཇིག་རྟེན་དགེ་བའི་བགྲིས་གཉིས་པ་ལོ། १ ॥  
 དགེ་འདུན་དམ་པའི་ཆོས་ལྷན་ཐོས་པའི་བགྲིས་ལྷུག།  
 མི་དང་ལྷ་དང་ལྷ་མ་ཡིན་གྲིས་མཆོད་པའི་གནས།  
 ཆོག་པ་ཀྱི་མཆོག་རབ་ཏོ་ཆ་ཐེས་མཆོད་དཔལ་གྱི་གཞི།  
 དེ་ནི་འཇིག་རྟེན་དགེ་བའི་བགྲིས་གསུམ་པ་ལོ། २ ॥



## ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय

### ( क ) हिन्दी भाषा

मङ्गलाचरण के बारे में “आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्।” (काव्यादर्श-14) [अर्थात् मङ्गलाचरण-नमस्कार एवं वस्तुनिर्देश ग्रन्थ का मुख अर्थात् द्वार जैसा है]—ऐसा कहा गया है। इस वचन के अनुसार अनेक स्थानों (ग्रन्थों) में मङ्गलाचरण-गाथा ग्रन्थ के आरम्भ में दी गई है। क-ग्युर और तन्युर संस्करणों में परिणामना, प्रणिधान और मङ्गलगाथा ये तीन क्रमशः ग्रन्थ के अन्त में देने की परम्परा है।

१    འདོན་ཆ་སོགས་གཞུང་མང་པོའི་ནང་ “དགེ་འདུན་དམ་པ་” ཅེས་བཞོད་ཡོད་པ་ལྟར་ “དམ་པ་” ཅེས་པ་དགེ་  
 འདུན་གྱི་བྱེད་ཆོས་སྤྱད་ཡོད་ཀྱང་། དེ་ལོགས་སྤྱད་དང་བསྟན་ན་ “དམ་པའི་ཆོས་” ཞེས་ཆོས་ཀྱི་བྱེད་ཆོས་སྤྱད་  
 སྤྱོད་པ་ཤིན་ཏུ་འཐད་ཆེ་བར་མངོན་ནོ།

२    དཔེ་རྣམས་ནང་ “ལྷ་མ་ཡིན་གྱི་” ཞེས་འབྲེལ་སྒྲ་ཅན་དུ་བཞོད་ཡོད་ཀྱང་པལ་ཆེ་བར་བོད་གསལ་ལྟར་བཞོད་  
 ཡོད།

३    ལོགས་སྤྱད་གྱི་ཀྱི་དཔེ་ལག་གིས་རེ་བྱུང་ནང་ “རོ་ཆ་” ཞེས་པའི་སྐད་དོད་གསལ་མེད་ཀྱང་། དེ་ནི་ཆད་སྐྱོན་མིན་  
 ནམ་སྙམ་པས་ཞིབ་ཏུ་དབྱེད་འཆལ་ལོ།



तदनुसार उनमें मङ्गलगाथा-शब्द ग्रन्थसमूह के एकदम अन्त में ही दिये जाते हैं। यह परम्परा प्रचुर मात्रा में परिव्याप्त है। इसके अतिरिक्त धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक कार्यक्रमों में प्रारम्भ में मङ्गलाचरण के अनन्तर मुख्य कार्य को सम्पादित करने की परम्परा विद्यमान है।

प्रस्तुत ग्रन्थ से सम्बद्ध 'त्रिरत्न और द्वादश लीलात्मक' ये गाथाएं मङ्गल-गाथा के रूप में 'क-ग्युर' संग्रह के तन्त्र वर्ग और धारणीसंग्रह—इन दोनों में बुद्धवचन के रूप में दी हुई उपलब्ध होती हैं। परन्तु तन्युर-संग्रह के अन्त में यह ग्रन्थ आचार्य नागार्जुन के नाम से दिया हुआ प्राप्त होता है। क-ग्युर और तन्युर संग्रह दोनों में एक जैसी स्थिति यह देखने को मिलती है कि प्रारम्भ में ग्रन्थ का नाम देते समय 'मङ्गलगाथा' यह शीर्षक उपलब्ध होता है। अन्त में "त्रिरत्न द्वादशललीला मङ्गलगाथा" यह पुष्पिका दिया हुआ है। ग्रन्थ के अनुवादक (भारतीय) पण्डित और (भोट पण्डित) लोचावा के नामों में एवं ग्रन्थ के आकार और प्रतिपाद्य विषय आदि के बारे में बिल्कुल एक-जैसी स्थिति है। फिर भी मुख्य अन्तर यह है कि तन्युर संग्रह के अन्त में प्राप्य इस ग्रन्थ के अन्त में 'आचार्य नागार्जुन विरचित त्रिरत्न एवं द्वादशललीला मङ्गलगाथा समाप्त' यह पुष्पिका वाक्य उल्लिखित है। तदनुसार यह ग्रन्थ नागार्जुन की रचना के रूप में वहाँ दिया है।

यहाँ परीक्षणीय मुख्य विषय यह है कि यह ग्रन्थ बुद्धवचन है अथवा आचार्य नागार्जुन विरचित शास्त्र? वस्तुस्थिति या तथ्य क्या है? इसी का परीक्षण करना है। क-ग्युर-संग्रह में यह ग्रन्थ 'जिङ्-ग्युद्' और धारणीसंग्रह से पूर्व मुख्य तन्त्रग्रन्थवर्ग के अन्त में मङ्गलगाथाओं से सम्बन्धित बारह ग्रन्थों के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र ग्रन्थ (तो० 826 तन्त्र 'वा' 262-263) के रूप में दिया हुआ है।

तन्युर-संग्रह में आचार्य नागार्जुन के नाम पर जो ग्रन्थ (तो० 4411 विविध ग्रन्थ 'जो' 347-349) उपलब्ध है, उसका यदि परीक्षण किया जाए तो उन्नीस श्लोकात्मक यह मङ्गलगाथा यथावत् रूप में आचार्य आनन्दगर्भ विरचित योगतन्त्रविषयक "वज्रधातु-महामण्डलविधि सर्ववज्रोदय" (तो० 2516 तन्त्र 'कु' पृ० 46) में अविकल रूप से दी हुई है। वहाँ पर इन गाथाओं (श्लोकों) को सूत्र से या शास्त्र से कहाँ से लिया गया है, इसके बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं है। इस मङ्गलगाथा के वज्रोदय में यथावत् उपलब्ध होता देखकर बुस्तोन्-रिन्-छेन्-डुब् ने अपने द्वारा विरचित दो प्रकार की 'तन्युर-संग्रह सूची' (भाग-26,

‘ल’ पृ० 636 तथा भाग-28, ‘स’ पृ० 566) और उन (सूची) पर आधारित परवर्ती अनेक सूचियों में प्रस्तुत (इस) ग्रन्थ के अन्त में वर्णित ग्रन्थ के नाम और अनुवादक के नाम देने के तत्काल बाद ही “यह तो वज्रोदय में यथावत् उपलब्ध है, उसी को वहाँ से लेकर (यहाँ) दिया गया है—ऐसा प्रतीत होता है” यह वाक्य उन सभी सूचियों में एक जैसा उपलब्ध होता है। तथापि यह तथ्य अति विचारणीय है।

यदि ‘वज्रोदय’ नामक ग्रन्थ बुद्धवचन होता तो ऐसा कहने में कोई असुविधा नहीं होती। किन्तु यह ग्रन्थ शास्त्र है। दूसरी बात यह है कि उस ग्रन्थ के अन्त में आचार्य नागार्जुन का नाम उल्लिखित नहीं होता, तो भी वैसा कहने में कोई अनौचित्य दृष्टिगोचर नहीं होता, किन्तु आचार्य नागार्जुन के नाम का उल्लेख स्वयं आचार्य बुस्तोन् की तन्त्रयुग्म सूचियों में सुस्पष्ट रूप से विद्यमान है, इस स्थिति में इस प्रकार कहना निश्चित रूप से समीचीन प्रतीत नहीं होता। क्योंकि आचार्य नागार्जुन तो आचार्य आनन्दगर्भ से अनेक शताब्दी पहले हुए हैं तथा प्रसिद्धि और विद्वत्ता की दृष्टि से भी उनसे वरिष्ठ एवं श्रेष्ठ होने के कारण उक्त कथन समझस नहीं होता।

यदि यह ग्रन्थ वास्तव में जैसे आचार्य नागार्जुन के नाम से दिया हुआ है, वैसे ही तथ्य है तो आचार्य बुस्तोन् की सूचियों में उल्लिखित पूर्वकथन के विपरीत उसके स्थान पर “यह (मङ्गलगाथा) तो यथावत् रूप से आचार्य नागार्जुन के ग्रन्थ में उपलब्ध है और उसी से आचार्य आनन्दगर्भ ने अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया होगा”—ऐसा निश्चित रूप से कहा जा सकता था। तीसरी बात यह है कि इस ग्रन्थ के तन्त्रवर्ग और धारणीसंग्रह में बुद्धवचन के रूप में उपलब्ध होने के कारण इस विषय पर बुस्तोन् की सूची आदि में निश्चित ही स्पष्टीकरण उपलब्ध होना चाहिए था, किन्तु ऐसा बिलकुल ही देखने को नहीं मिलता। अतः यह अवश्य ही विचारणीय कोटि के अन्तर्गत ही है, बाहर नहीं, ऐसा प्रतीत होता है।

इनके बारे में बुस्तोन् द्वारा विरचित वज्रोदय के बृहत् टीका (‘द’ पृ० 797) में इस प्रकार कहा गया है—“इस विषय में मूलशास्त्र ग्रन्थों में श्लोकों के क्रम में भिन्नता है और सब में पूर्ण भी नहीं है, परन्तु यहाँ और श्रीपरमाद्य तन्त्र की वृत्तियों में एक समान रूप से पाया जाता है, अतः उन्हीं ग्रन्थों को ही प्रमाण के रूप में लेना चाहिए। कुछ लोग (अर्थात् ग्लेन् नामक विद्वान ने) इस ग्रन्थ को मङ्गलसूत्र से लिया गया है, ऐसा कहते हैं। पृथक् रूप से दिये गये उस ग्रन्थ को आचार्य नागार्जुन ने रचा है, ऐसा देखने को मिलता



है।'' इसके अतिरिक्त यहाँ वह ग्रन्थ सूत्र में और आचार्य नागार्जुन के नाम से कैसे उल्लिखित हुआ है इस पर प्रकाश नहीं डाला गया है। इस टीका में उन सभी श्लोकों की वृत्ति की गयी है।

यही मङ्गलगाथा आचार्य आनन्दगर्भ द्वारा रचित 'श्रीपरमाद्यतन्त्रटीका' (तो० 2512 तन्त्र 'सी' पृ० 116) 'श्रीपरमाद्यमण्डलविधि' (तो० 2520 तन्त्र 'कु' पृ० 124) तथा 'श्रीमञ्जु-वज्रोदय मण्डलविधि' (तो० 2590 तन्त्र 'डु' पृ० 269) इन तीनों ग्रन्थों में यथावत् उपलब्ध होती है। अतः इन ग्रन्थों पर और भी प्रकाश डालना और स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता है।

सामान्यतया क-ग्युर एवं तन्युर-संग्रहों में मङ्गलगाथात्मक ग्रन्थों की स्थिति इस प्रकार है—क-ग्युर में तन्त्रवर्ग के अन्त में 12 ग्रन्थ, धारणीसंग्रह के अन्त में 9 ग्रन्थ, तन्युर में तन्त्र टीकाओं के अन्त में 5 ग्रन्थ, सूत्रवर्ग की टीकाओं के अन्त में 19 ग्रन्थ और इनके अतिरिक्त 4 अन्य ग्रन्थ सहित कुल मिलाकर 49 ग्रन्थ होने का उल्लेख मिलता है। किन्तु इनमें से अनेक ग्रन्थ बार-बार दोहराए गये हैं। वास्तव में बुद्धवचन के रूप में (क-ग्युर के) तन्त्रवर्ग में 11 और धारणीसंग्रह में तथा तन्युर की सूत्रवर्ग-टीकाओं के अन्त में 8 ग्रन्थों के साथ कुल 19 ग्रन्थ हैं। 6 ग्रन्थ ऐसे हैं, जो बुद्धवचन और शास्त्र इन दो में से किसमें रखा जाए, ऐसी अनिश्चित स्थिति में हैं। शास्त्र के रूप में सम्भवतः 6 ग्रन्थ और हैं, जिन्हें मिलाकर कुल 31 ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ जैसे पहले कहा गया है, तदनुसार क-ग्युर-संग्रह के तन्त्रवर्ग, धारणीसंग्रह तथा तन्युर-संग्रह तीनों में उपलब्ध होता है। वह भी प्रथम दो में बुद्धवचन के रूप में तथा अन्तिम में आचार्य नागार्जुन की रचना के रूप में दिखलाई पड़ता है। समस्या यह है कि एक ही ग्रन्थ को बुद्धवचन और शास्त्र दोनों के रूप में सम्मिलित करना कैसे सम्भव है? वैसे तो इस ग्रन्थ के अन्त में पुष्पिका में 'त्रिरत्न और द्वादशलाला मङ्गलगाथा'—ऐसा उल्लिखित है। अतः त्रिरत्न से सम्बन्धित जो गाथाएं हैं, वे अनेक मण्डलविधियों और अभिषेकविधि के ग्रन्थों में उद्धरण के रूप में दी हुई प्राप्त होती हैं। सम्भवतः त्रिरत्न से सम्बद्ध यह (इतना) अंश बुद्धवचन के रूप में तथा द्वादश लीलाओं से सम्बद्ध अंश आचार्य नागार्जुन की रचना के रूप में विद्यमान रहा हो। इसी कारण से सम्भवतः यह ग्रन्थ क-ग्युर और तन्युर दोनों के रूप में अपने-आप सम्मिलित हो गया हो। ग्रन्थ के प्रथम तीन श्लोक अत्यन्त प्रसिद्ध और अभिषेक विधि आदि अनेक ग्रन्थों में



उद्धृत होने के कारण उनके महत्त्व को देखकर किसी विद्वान् ने उन्हें बुद्धवचन मानकर क-ग्युर-संग्रह के अन्तर्गत सम्मिलित कर दिया हो। फिर भी इस पर विद्वानों को विचार करने की आवश्यकता है।

सामान्यतः इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में उल्लिखित प्रथम तीन श्लोकों को बुद्धवचन के रूप में अथवा आचार्य नागार्जुन की रचना के रूप में अर्थात् दोनों में से किसी भी एक प्रकार से मान लेने में अधिक असमीचीनता प्रतीत नहीं होती, किन्तु उसके बाद की (भगवान् की) द्वादश लीलाओं से सम्बद्ध जो मङ्गल गाथाएँ हैं, उन्हें आचार्य नागार्जुन की रचनाएँ मानना ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि उन (गाथाओं) में स्पष्ट रूप से भगवान् बुद्ध के नाम का उल्लेख करते हुए उन लीलाओं से सम्बद्ध समय, स्थान (अर्थात् देश और काल) तथा व्यक्ति आदि का स्पष्ट प्रतिपादन हुआ है तथा भगवान् बुद्ध की अद्भुत स्तुति की गई है।

त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म और संघ) से सम्बद्ध प्रथम तीन श्लोक आचार्य जगद्-दर्पण के 'वज्राचार्यक्रियासमुच्चय' और आचार्य अभयाकरगुप्त प्रणीत 'वज्रावली' में मूल संस्कृत में उपलब्ध हुए हैं, परन्तु शेष 16 (सोलह) श्लोक अभी तक संस्कृत भाषा में उपलब्ध नहीं हो पाये हैं। वैसे प्रथम तीन श्लोक तन्त्र के अनेक मण्डलों और अभिषेकों से सम्बद्ध ग्रन्थों में उद्धरण के रूप में उपलब्ध हुए हैं, परन्तु अब तक वे (श्लोक) बुद्धवचन के रूप में मान्य किसी तन्त्र-ग्रन्थ के अंश के रूप में उपलब्ध नहीं हो सके हैं। उक्त दोनों (आचार्य जगद्-दर्पण एवं आचार्य अभयाकरगुप्त के) ग्रन्थों में प्रथम तीन श्लोकों के अन्तिम चरण "तन्मङ्गलं भवतु शान्तिकरं तवाद्य" यह अंश समान रूप से दृष्टिगोचर होता है। किन्तु यहाँ प्रस्तुत इस ग्रन्थ में कुछ विशिष्ट प्रयोजन को ध्यान में रखकर तथा परम्परागत प्रचलित पूजा-पाठ की शैली को दृष्टि में रखते हुए तथा 'क-ग्युर'-संग्रह में उपलब्ध ग्रन्थ और आचार्य नागार्जुन के नाम से प्राप्त दोनों पाठों को देखकर तदनुकूल ही इन श्लोकों को प्रस्तुत किया है।

त्रिरत्न के गुणों की स्तुति करने वाले ये तीन श्लोक अनेक ग्रन्थों में उद्धरण के रूप में उपलब्ध हैं। तथाहि—पूर्वोक्त वज्रोदय, श्रीपरमाद्यतन्त्रटीका आदि चार ग्रन्थों के अतिरिक्त जिन अनेक तन्त्र ग्रन्थों में ये उपलब्ध हुए उसकी सूचना यहाँ दी जा रही है, यथा—(1) वज्राचार्य-क्रियासमुच्चय (दे-गे-तन्युर, तन्त्र 'बु', प० 192), (2) वज्रावली (दे-गे-तन्युर, तन्त्र, 'फु', प० 74) ये दोनों ग्रन्थ मूल संस्कृत भाषा में उपलब्ध हैं, (3) कौमुदी नाम

पञ्जिका (दे-गे-तन्युर, तन्त्र, 'ग', प० 49), (4) रत्नज्वाला साधन (दे-गे-तन्युर, तन्त्र 'ज', प० 223), (5) सुपरिग्रह नाम मण्डलविधि (दे-गे-तन्युर, तन्त्र 'ज', प० 145), (6) सर्वबुद्ध-समायोगमण्डलविधि (देगे तन्युर, तन्त्र, 'ल', प० 186), (7) विशदपदसंग्रह नाम प्रतिष्ठाविधि (देगे-तन्युर, तन्त्र 'फि', प० 26), इन ग्रन्थों में त्रिरत्न और द्वादश लीलाओं से सम्बद्ध अधिकांश गाथाएँ दी हुई हैं, (8) गुह्यसमाजसाधन (दे-गे-तन्युर, तन्त्र, 'पि', प० 21), (9) हेरुकोद्धवमण्डलविधि (दे-गे, तन्युर, तन्त्र 'त', प० 81), (10) श्रीचक्रसंवरमण्डलविधि (दे-गे, तन्युर, तन्त्र 'श', प० 177), (11) अभिषेकप्रकरण (दे-गे, तन्युर, तन्त्र 'श', प० 241), (12) आर्यमञ्जुश्रीमण्डलविधि (दे-गे, तन्युर, तन्त्र 'डु', प० 97), (13) महामायासाधनमण्डलविधि (दे-गे, तन्युर, तन्त्र 'य', प० 282), (14) अवलोकितेश्वरपद्मजालमण्डलपूजाविधि (दे-गे, तन्युर, तन्त्र 'श', प० 155), (15) श्रीतन्त्रवर्गपञ्चमण्डलविधि (पेकिङ्-तन्युर, तन्त्र 'यु', प० 48) इन ग्रन्थों में द्वादश लीलाओं से सम्बद्ध गाथाएँ नहीं दी गई हैं। उक्त मङ्गलगाथाएँ इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य अनेक ग्रन्थों में भी उपलब्ध हो सकती हैं। अतः इनका अन्वेषण करना आवश्यक है।

इन सब उपलब्ध प्रामाणिक साक्ष्यों के आधार पर यहाँ उक्त तीनों श्लोकों के भोट-पाठ एवं संस्कृत-पाठ का तुलनात्मक अध्ययन के साथ सम्पादित किया है। साथ ही, संस्कृत-पाठ का हिन्दी भाषा में अनुवाद और इन विषयों से सम्बद्ध अनेक तथ्यों का विश्लेषणपरक, महत्त्वपूर्ण परिचय भी देने का प्रयास किया है।

इस महत्त्वपूर्ण त्रिरत्न मङ्गलगाथा (ग्रन्थ) के हिन्दी-अनुवाद में बौद्ध विद्याओं के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् प्रो० रामशङ्कर त्रिपाठी (शोध-आचार्य) ने अमूल्य सहयोग प्रदान किया है। अतः मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इस परम पवित्र कार्य से प्राप्त पुण्यों से 'सभी सत्त्व बुद्धत्व-प्राप्ति की ओर उन्मुख हों'—ऐसी परिणामना करता हूँ।

॥ भवतु सर्वमङ्गलम् ॥





དགོན་མཆོག་གསུམ་གྱི་བཀྲ་ཤིས་ཀྱི་ཆོགས་སུ་བཅད་པ།

ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय

( ख ) भोट भाषा

གཞུང་གི་ངོ་སྤྲོད་མདོར་བསྟུན། (བོད་སྐད།)

༡༡། །དེ་ཡང་ཇི་སྐད་དུ། “ཤིས་བཞེད་ཕྱག་བྱ་དངོས་པོ་ནི། །དེས་པར་བསྟན་པའང་  
དེའི་སྒོ།” །ཞེས་གསུངས་པ་ལྟར་སྐབས་མང་པོར་ཤིས་བ་བཞེད་པའི་ཆོག་དག་གཞུང་གི་དབྱར་  
བཀོད་པ་དང་། ཡང་བཀའ་བསྟན་སྒར་མ་རྣམས་ཀྱི་ཞབས་ལ་བསྟོ་སྟོན་དང་བཀྲིས་པའི་ཆོག་  
རྣམས་རིམ་པ་བཞིན་བཀོད་སྟོལ་ཡོད་པ་ལྟར་གཞུང་གི་མཐའ་ལ་བཀོད་སྟོལ་འདི་ཆེས་དར་བྱབ་  
ཆེ་བའི་ཚུལ་དུ་ཡོད། དེ་དག་ལས་གཞན་པ་སྟེ་ཆོགས་ནང་“ཆོས་དང་རིག་གཞུང་གི་ལས་  
རིམ་”མང་པོའི་ནང་ཐོག་མར་ཤིས་བཞེད་ཀྱིས་སྟན་བསྟུས་ཏེ་ལས་རིམ་དངོས་ལ་འཇུག་པའི་  
སྟོལ་ཡང་དར་ཡོད།

སྐབས་འབྲེལ་གྱི་གཞུང་ “སྟན་སུམ་ཆོགས་པ་མངའ་བ་གསེར་གྱི་རི་བོ་འདྲ།” །ཞེས་  
སོགས་མཆོག་གསུམ་དང་མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་བཀྲིས་པའི་ཆོགས་སུ་བཅད་པ་ཞེས་པའི་ཤིས་  
བཞེད་གྲགས་ཅན་འདི་ཚུལ་བའི་བཀའ་འགྱུར་རྒྱུད་འབྱུང་དངོས་ཀྱི་ནང་དང་། གཟུངས་བསྟུས་  
བཅས་སུ་ཚུལ་བའི་བཀའ་ཡིན་པ་ལྟར་དུ་བཀོད་ཡོད། འོན་ཀྱང་བསྟན་འགྱུར་རྣམས་ཀྱི་ཞབས་ལ་  
བསྟོ་སྟོན་དང་ཤིས་བཞེད་བཀོད་པའི་ཆོ། གཞུང་འདི་སྟོབ་དཔོན་ལྷ་སྟུབ་ཀྱི་མཆན་ཐོག་ལ་བསྟན་  
བཅོས་ཡིན་པ་ལྟར་དུ་བཀོད་ཡོད། བཀའ་བསྟན་གཉིས་ཀའི་ནང་གསལ་བའི་གཅིག་མཐུན་ཆེ་བའི་  
བཀོད་ཚུལ་ནི། ཕྱག་དཔེའི་མཆན་བྱང་དངོས་བཀོད་པའི་ཆོ། “ཆུ་གར་སྐད་དུ། མཁྲུལ་གྲུ་སྒྲ། བོད་  
སྐད་དུ། བཀྲིས་ཀྱི་ཆོགས་སུ་བཅད་པ་” །ཞེས་པ་དང་། ཡང་གཞུང་ཇོགས་ཁར་ “དགོན་མཆོག་



གསུམ་དང་མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་བགྱིས་ཀྱི་ཆོགས་སུ་བཅད་པ་” ཞེས་བཀོད་པ་དང་། བསྐྱར་  
བྱེད་ལོ་པཎ་གྱི་མཆན་དང་། གཞུང་དངོས་ཀྱི་ཆོག་སྒྲོར་དང་། གཞུང་ཆད་བཅས་ལ་བྱུང་པར་  
གཏན་ནས་མེད་པའི་གནས་བབས་དེ་ཡིན། འོན་ཀྱང་བྱུང་པར་ཆེ་བའི་གནད་དོན་གཙོ་བོ་ནི།  
བཀའ་འགྱུར་ནང་གསལ་བ་དེ་དང་བསྐྱར་འགྱུར་ནམས་ཀྱི་ཞབས་ལ་གཞུང་དེ་བཀོད་པའི་ཆེ་  
“དཀོན་མཆོག་གསུམ་དང་། མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་བགྱིས་ཀྱི་ཆོགས་སུ་བཅད་པ་སྟོབ་དཔོན་  
འཕགས་པ་ལྷ་སྐྱབ་ཀྱིས་མཛད་པ་ཚོགས་སོ།” ཞེས་སྟོབ་དཔོན་གྱི་མཆན་ཐོག་ལ་བཀོད་ཡོད་པ་  
དེ་ཡིན།

འདིར་དབྱེད་དགོས་པའི་གནད་དོན་གཙོ་བོ་ནི། གཞུང་དེ་སངས་རྒྱུས་ཀྱི་བཀའ་དང་སྟོབ་  
དཔོན་ལྷ་སྐྱབ་ཀྱིས་མཛད་པའི་བསྐྱར་བཅོས་གཉིས་ལས་དངོས་དོན་གང་དོན་ལ་གནས་མིན་  
བརྟགས་རྒྱ་དེ་ཡིན། གཞུང་འདི་བཀའ་འགྱུར་ནང་དུ་རྒྱུད་བྱུང་དང་། གཞུང་ས་བསྐྱུས་གཉིས་མ་  
བཀོད་པའི་གོང་རྒྱུད་འབྱུང་སྐྱེ་བྱིངས་ཀྱི་ཞབས་ལ་ཤིས་བཟོད་དང་འབྲེལ་བའི་གཞུང་ཆན་བཅུ་  
གཉིས་བཞུགས་པ་དེ་དག་གི་ཁྲིད་དུ་གཞུང་རང་ཆན་པ་ཞིག་གི་ཚུལ་དུ་བཀོད་ཡོད། གལ་ཏེ་འདི་  
རྒྱུད་གཞུང་གཞན་གྱི་ཆ་ཤས་རྩུར་འདོན་བྱས་པའི་གསལ་ཁ་རྙེད་ཆོ། དེ་རྒྱལ་བའི་བཀའ་ཡིན་པ་  
ལ་ངེས་པ་བརྟན་དུ་འགྲོ་ངེས་ཆེ་ཡང་། དེ་ལྟར་རྙེད་དཀའ་བས་བརྟག་དགོས་པ་འདུག

བསྐྱར་འགྱུར་ནང་སྟོབ་དཔོན་ལྷ་སྐྱབ་ཀྱི་མཆན་ཐོག་ལ་ཡོད་པ་དེའི་སྐོར་ལ་བརྟགས་པའི་  
ནམ་པ་གཅིག་དུ་ན། ཤིས་བཟོད་གྲགས་ཅན་ཆེཾ་བཅད་བཅུ་དགའི་བདག་ཉིད་ཅན་འདི་ཇི་ལྟ་བ་  
བཞིན་སྟོབ་དཔོན་ཀུན་དགའ་སྦྱང་པོས་མཛད་པའི་ནལ་འབྱོར་རྒྱུད་ཀྱི་སྐོར་ “དོ་ཇི་དབྱིངས་ཀྱི་  
དཀྱིལ་འཁོར་ཆེན་པོའི་ཆོ་ག་དོ་ཇི་ཐམས་ཅད་འབྱུང་བ་” ཞེས་པའི་ནང་བཀོད་ཡོད། དེར་གཞུང་  
ཆོག་འདི་དག་བཀའ་བསྐྱར་གང་ལས་བྱུངས་བཞེས་མཛད་པའི་གསལ་ཁ་གཏན་ནས་འཁོད་མེད་

ཀྱང་། དེ་གཟིགས་པའི་རྒྱུ་ལྟ་ནས་བྱ་སྟོན་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་མཛད་པའི་བསྟན་འགྱུར་  
 དཀར་ཆག་ཁག་གཉིས་དང་། དེ་དག་ལ་གཞི་མཛད་པའི་ཕྱིས་ཀྱི་དཀར་ཆག་མང་པོའི་ནང་།  
 གཞུང་འདིའི་མཚན་བྱང་དང་འགྱུར་བྱང་བཞོད་པའི་ཇེས་དེ་མ་ཐག་དུ། “འདི་ནི་དོ་ཇེ་འབྱུང་བའི་  
 ནང་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་ཡོད་པ་དེ་ལྟར་བ་འདྲའོ།” ཞེས་པའི་ཆོག་འདི་གཅིག་མཐུན་གྱི་ཚུལ་དུ་བཞོད་  
 ཡོད་ཀྱང་དབྱུང་གཞི་ཤིན་དུ་ཆེ་སྟེ། གལ་ཏེ་ “དོ་ཇེ་འབྱུང་བ་” ཞེས་པའི་གཞུང་དེ་སངས་རྒྱུས་ཀྱི་  
 བཀའ་ཡིན་ན། དེ་ལྟར་གསུངས་པ་འཐད་ཆེ་ཡང་དེ་ནི་བསྟན་བཅས་ཡིན་ལ། གཉིས་ཐད་ནས་  
 ཤེས་བཞིན་ཀྱི་གཞུང་འདིའི་མཐར་སློབ་དཔོན་སྐུ་སྐྱབ་ཀྱི་མཚན་འཁོད་མེད་ན། དེ་ལྟར་གསུངས་  
 ཀྱང་མ་བདེ་བ་མི་འབྱུང་མོད། འོན་ཀྱང་སློབ་དཔོན་སྐུ་སྐྱབ་ཀྱི་མཚན་འཁོད་པའི་གསལ་ཁ་མཁས་  
 པ་དེ་ནི་དེ་ཀྱི་དཀར་ཆག་ནང་ཡོད་བཞིན་དུ་དེ་ལྟར་གསུངས་པ་ནི་ཅུང་འཐད་པར་དཀའ་སྟེ། སློབ་  
 དཔོན་སྐུ་སྐྱབ་ནི་སློབ་དཔོན་ཀུན་དགའ་སྤྱང་པོ་ལས་བརྒྱ་ཕྱག་མང་པོའི་སྟོན་ལ་བྱོན་ཞིང་། མཁས་  
 པའི་མཚན་མཐོང་ཡང་དེ་ལས་ཆེས་ཤིན་དུ་ལྷག་ཅིང་། གཞུང་གི་མཐར་སློབ་དཔོན་སྐུ་སྐྱབ་ཀྱིས་  
 མཛད་པའི་གསལ་ཁ་དངོས་སུ་འཁོད་བཞིན་དུ་དེ་ལྟར་གསུངས་པ་ཇི་ལྟར་འཐད་དབྱུང་གཞི་ཆེའོ།

དེས་ན་གཞུང་འདིའི་མཐར་སློབ་དཔོན་སྐུ་སྐྱབ་ཀྱི་མཚན་འཁོད་པ་དེ་ངས་པའི་དོན་ལ་  
 གནས་པ་ཞིག་ཡིན་ན། བྱ་སྟོན་གྱི་དཀར་ཆག་ཁག་དུ་གསུངས་ཚུལ་ལྟ་མ་ལས་ལྟོག་སྟེ། “ཤིས་  
 བཞིན་འདི་སློབ་དཔོན་སྐུ་སྐྱབ་ཀྱི་གཞུང་དུ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་གསལ་ཡོད་པས། དེ་སློབ་དཔོན་ཀུན་སྤྱང་  
 གི་དོ་ཇེ་འབྱུང་བར་ཁྱེད་ས་བཞོད་མཛད་པ་འདྲ།” ཞེས་གསུངས་དགོས་ཆོད་དུ་འགྱུར་སྟེང་ཞིང་།  
 དེར་མ་ཟད་ ༡) སློབ་དཔོན་ཀུན་སྤྱང་དེ་ནི་དེ་ཀྱིས་མཛད་པའི་དཔལ་མཆོག་དང་པོའི་འགྲེལ་པ་  
 དང་། ༢) དཔལ་མཆོག་དང་པོའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་ཆོ་ག་གཉིས་དང་། ༣) འཇམ་དཔལ་དོ་ཇེ་  
 འབྱུང་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་ཆོ་ག་བཅས་གཞུང་གསུམ་གྱི་ནང་གཞུང་ཆོག་འདི་དག་ཆ་ཆང་ཇི་ལྟ་



བ་བཞིན་བཀོད་ཡོད་པས། དེར་ཡང་འགྲེལ་བཟླ་དེས་ཅན་ཞིག་མཛད་དགོས་པར་མཛོན་  
སྤང་ངོ་། །གསུམ་ཐད་ནས་གཞུང་འདི་རྒྱལ་བའི་བཀའ་རྒྱུད་འབྲུམ་དངོས་དང་གཟུངས་བསྐྱུས་  
བཅས་སུ་བཀོད་ཡོད་པ་དེའི་སྐོར་ལ་བྱ་སྟོན་རིན་པོ་ཆེའི་དཀར་ཆག་སོགས་སུ་གསལ་ཁ་དེས་ཅན་  
ཞིག་འོང་རྒྱུར་སྤང་ཡང་། དེ་འདྲ་མི་སྤང་བས་དཔྱད་གཞིའི་གནས་ལས་མ་འདས་སོ།།

འདི་དག་གི་སྐོར་ལ་བྱ་སྟོན་ཉིད་ཀྱིས་མཛད་པའི་དོ་མཉམ་འབྲུང་བའི་རྒྱ་ཆེར་བཤད་པར།  
(པོད་ ‘ད’ ༡༩༧) “འདི་ལ་རྒྱ་དཔེར་ཆོགས་བཅད་གོ་རིམ་མི་མཐུན་ཞིང་། ཐམས་ཅད་ཆང་  
བའང་མ་བྱུང་ན་ཡང་། འདི་དང་དཔལ་མཆོག་སྟོད་འགྲེལ་ན་མས་སུ་མཐུན་པར་བྱུང་བས་གཞུང་  
ཉིད་ཆད་མར་བྱའོ། །ཁ་ཅིག་(ཟུན་ནས་) འདི་བཀྱིས་ཀྱི་མདོ་ནས་བྱུང་བ་ཡིན་ཟེར། འདི་ལོགས་  
སུ་བྱས་པ་ན་སྟོབ་དཔོན་ལྷ་སྐྱབ་ཀྱིས་མཛད་བྱ་བ་སྤང་ངོ་།” །ཞེས་པ་ཙམ་ལས་གཞུང་འདི་མདོ་  
དང་། སྟོབ་དཔོན་ལྷ་སྐྱབ་ཀྱི་མཆོན་ཐོག་དུ་དེ་ལྟར་འཁོད་དགོས་པའི་རྒྱ་མཆོན་གཞན་གསུངས་  
མེད། དེར་ཆོགས་བཅད་ཆ་ཆང་གི་འགྲེལ་པ་གསལ་ཡོད།

སྤྱིར་བཀའ་བསྟན་ན་མས་སུ་བཀྱིས་ཀྱི་ཆོགས་སུ་བཅད་པ་དང་། ཐེས་བཟླ་དུ་སྐོར་  
བཀའ་འགྱུར་རྒྱུད་འབྲུམ་གྱི་ཞབས་ལ་ཆོས་ཆོན་བཅུ་གཉིས་དང་། དེ་བཞིན་གཟུངས་བསྐྱུས་ཀྱི་  
མཐར་དགུ་ །རྒྱུད་འགྲེལ་གྱི་མཐར་ལྔ་དང་། བསྟན་འགྱུར་མདོ་སྟོགས་ཀྱི་མཐར་བཅུ་དགུ་དང་།  
གསར་བཅུ་གུ་དང་། ཁ་བསྐྱོང་ནང་ཡོད་བཞི་བཅས་ཁྱོན་ཆོས་ཆོན་གྲངས་ ༧༩ ཙམ་གྱི་མཆོན་  
གསལ་ཡོད་ཀྱང་། དེ་དག་ལས་མང་པོ་ཞིག་བསྐྱར་སྐྱོས་ཡང་སྐྱོས་ཀྱི་ཚུལ་དུ་གསལ་ཡོད་པས།  
དངོས་དོན་བཀའ་འགྱུར་རྒྱུད་འབྲུམ་ནང་གསལ་ཆོས་ཆོན་བཅུ་གཉིས་དང་། དེར་མ་གསལ་བའི་  
གཟུངས་བསྐྱུས་དང་། མདོ་སྟོགས་ “སྤྱ་ཆོགས་སྟེ་ཆོན་” ནང་གསལ་ཆོས་ཆོན་བརྒྱུད་བཅས་ཁྱོན་  
ཆོས་ཆོན་བཅུ་དགུ་དང་། བཀའ་མདོ་རྒྱུད་གང་ལས་བྱུང་དུ་བྱུང་བའི་ཞལ་གསལ་དང་མཛད་པ་



པོའི་མཚན་སོགས་གང་ཡང་མ་འཁོད་པ་ཇི་སྟེན་ཅིག་ཡོད་པས། དེ་དག་ལས་མཐའ་གཅིག་ཏུ་  
བཀའ་བསྟན་གང་ཡིན་གྱི་ཁ་ཚོན་བཅད་དཀའ་བའི་ཆོས་ཚན་དུག་དང་། བསྟན་འགྲུར་ཡིན་པ་  
དུག་ཙམ་བཅས་ཁྱོན་ཤིས་བཞི་དུ་གྲོལ་ཆོས་ཚན་འདྲ་མིན་ ༣༡ ཙམ་ཡོད་ཆོད་འདུག།

སྐབས་འབྲེལ་གྱི་གཞུང་འདི་ནི་གོང་སློབ་ལྟར་བཀའ་འགྲུར་རྒྱུད་འབྲུམ་དང་། གཟུངས་  
བསྟུས་དང་། བསྟན་འགྲུར་བཅས་གསུམ་ཀའི་ནང་གསལ་ཡོད། དེ་ཡང་ཟུ་མ་གཉིས་སུ་རྒྱལ་བའི་  
བཀའ་ཡིན་པ་ལྟར་དང་། སྤྱི་མར་སློབ་དཔོན་ལྷ་སྐྱབ་ཀྱིས་མཛད་སྟོར་གསལ་ཡོད་ཅིང་། གཞུང་གི་  
མཐར་ “དཀོན་མཆོག་གསུམ་དང་མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་བཀྲིས་ཀྱི་ཆོགས་སུ་བཅད་པ་” ཞེས་  
གསལ་བ་ལ་བརྟགས་ན་པལ་ཆེར་མཆོག་གསུམ་གྱི་སྟོར་གྱི་ཤིས་བཞི་དུ་ཆོགས་བཅད་དང་པོ་  
གསུམ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བཀའ་དང་། དེ་བྱིངས་མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་སྟོར་སངས་རྒྱས་ལ་  
བསྟོད་པའི་ཤིས་བཞི་དུ་ཆོགས་བཅད་བཅུ་དུག་ཡོད་པ་དེ་དག་སློབ་དཔོན་ལྷ་སྐྱབ་ཀྱིས་མཛད་པའི་  
དབང་དུ་བཏང་ནས། གཞུང་དེར་བཀའ་བསྟན་གཉིས་ཀའི་ཆ་ཤས་ཡོད་པ་དང་། ལྷག་པར་དུ་ཤིས་  
བཞི་དུ་གཞུང་གཞན་ལས་ཀྱང་ཆེས་ཁྱད་དུ་འཕགས་པ་ཡོད་པའི་དབང་གིས་བཀའ་བསྟན་  
གཉིས་ཀའི་ནང་རང་བཞིན་གྱིས་འཁོད་སྤྱོད་པ་ཞིག་མིན་ནམ་སྟམ་པས་ཞིབ་ཏུ་དབྱེད་འཆལ་ལོ།

སྤྱིར་གཞུང་འདིར་གསལ་བའི་ཆོགས་བཅད་དང་པོ་གསུམ་ནི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བཀའ་དང་  
སློབ་དཔོན་ལྷ་སྐྱབ་ཀྱི་གསུང་ཙམ་གང་གི་དབང་དུ་བྱས་ཀྱང་མི་འཐད་པ་མེད་པར་མངོན་ཡང་།  
མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་སྟོར་དེ་དག་སློབ་དཔོན་ལྷ་སྐྱབ་ཀྱིས་མཛད་པར་འཛོག་ན་ཤིན་ཏུ་འཐད་ཆེ་  
སྟེ། དེར་སངས་རྒྱས་ཀྱི་མཚན་སྟོན་དང་བཅས་མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་སྟོར་རྣམས་བཀོད་པའི་ཆོ་  
དེའི་ཆེ་དེའི་དུས་ཀྱི་འབྲེལ་ཆེ་བའི་གནས་དང་གང་ཟག་སོགས་གསལ་བར་བསྟན་པའི་སྟོར་ནས་  
སངས་རྒྱས་ལ་བསྟོད་པ་ཆེས་སྒྲ་ན་མེད་པ་མཛད་ཡོད་པས་སོ།

མཆོག་གསུམ་གྱི་ཡོན་ཏན་བཟློན་པའི་ཆོག་ས་བཅད་གསུམ་ཅན་དང་པོ་གསུམ་སྟོབ་  
 དཔོན་འགྲོ་བའི་མེ་ལོང་གིས་མཛད་པའི་ “དོ་ཤེས་སྟོབ་དཔོན་གྱི་བྱ་བ་བརྟུས་པ་” དང་། སྟོབ་དཔོན་  
 འཛིག་ས་མེད་འབྱུང་གནས་སྤྱོད་པས་མཛད་པའི་ “དཀྱིལ་ཆོག་དོ་ཤེས་སྟོབ་བ་” གཉིས་སུ་  
 ལེགས་སྦྱར་གྱི་སྐད་ཐོག་རྟེན་སོན་བྱུང་ཡང་འབྲོས་རྣམས་ལེགས་སྦྱར་ཐོག་ད་བར་རྟེན་སོན་མ་  
 བྱུང་། ཆོག་ས་བཅད་དང་པོ་གསུམ་སྤྱོད་གྱི་དབང་ཆོག་དང་། དཀྱིལ་ཆོག་མང་པོའི་ནང་བྱུང་ས་  
 བཞོད་མཛད་ཡོད་ཀྱང་དེ་དག་སངས་རྒྱས་གྱི་བཀའ་དངོས་ཡིན་མིན་དང་། ཡིན་ན་གཞུང་གང་དུ་  
 གསལ་མིན་སོགས་ལ་འཆོལ་ཞིབ་ལན་མང་བྱས་ཀྱང་ད་བར་འཆོལ་ཞིབ་ངེས་རྟེན་མ་བྱུང་། བོད་  
 སྟོབ་གྱི་གཞུང་དེ་གཉིས་ཀར་ཆོག་ས་བཅད་གསུམ་ཀའི་ཆོག་རྒྱུ་མཐའ་མར་ “དེ་ནི་དེ་རིང་ཁྱོད་  
 ལ་ཞི་བྱེད་བགྱིས་ཐོག” ། ཅེས་གཅིག་གྱུར་གྱི་ཚུལ་དུ་གསལ་ཡོད་ཀྱང་། ཡོངས་གྲགས་འདོན་  
 སྟོལ་ཆེ་བའི་དགོས་དབང་ལ་ལྟོས་ནས་ད་ལམ་འདིར་བཀའ་འབྱུར་ནང་ཡོད་དང་། སྟོབ་དཔོན་སྟོབ་  
 སྟོབ་གྱིས་མཛད་པར་བཤད་པ་གཉིས་སུ་གསལ་བ་དང་མཐུན་པར་བཞོད་ཡོད།

མཆོག་གསུམ་གྱི་ཡོན་ཏན་བཟློན་པའི་ཆོག་ས་བཅད་གསུམ་ཅན་གྱི་ཤིས་བཟློན་གྲགས་  
 ཅན་འདི་སྤྱོད་གྱི་དབང་ཆོག་དང་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་ཆོག་སོགས་གཞུང་མང་པོའི་ནང་བཞོད་ཡོད་  
 པ་བཞིན་འདིར་དེའི་གསལ་ཁ་མཆོན་པ་ཙམ་བཞོད་ན། བོད་དུ་དོ་ཤེས་འབྱུང་བ་སོགས་གཞུང་  
 བཞིའི་ནང་ཇི་ལྟར་གསལ་བའི་གསལ་ཁ་བཞོད་ཟིན་ཅིང་། དེ་དག་ལས་གཞན་པ་ ༡- དོ་ཤེས་སྟོབ་  
 དཔོན་གྱི་བྱ་བ་ཀྱན་ལས་བརྟུས་པ། (རྒྱད་ ‘བྱ’ ༡༩༢) ༢- དཀྱིལ་ཆོག་དོ་ཤེས་སྟོབ་བ། (རྒྱད་ ‘བྱ’  
 ༧༧) གཞུང་འདི་གཉིས་ལེགས་སྦྱར་སྐད་ཐོག་རྟེན་སོན་བྱུང་གསལ་ཡིན། ༣- ཀྱོ་མུ་དྲི་ ཞེས་བྱ་  
 བའི་དཀའ་འབྲེལ། (རྒྱད་ ‘ག’ ༧༧) ༤- རིན་ཆེན་འབར་བ་ཞེས་བྱ་བའི་སྟོབ་ཐབས། (རྒྱད་ ‘ན’  
 ༢༢༢) ༥- བཟང་པོ་ཡོངས་སུ་བཟུང་བ་ཞེས་བྱ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་སྟོབ་ཐབས། (རྒྱད་ ‘ན’



༡༧) ༩- སངས་རྒྱལ་མཉམ་སྦྲེལ་གྱི་དཀྱིལ་ཆོག། (རྒྱད་ 'ལ' ༡༤) ༡- རྒྱ་ཆེ་བའི་ཆོག་  
 བསྐྱུ་བ་ཞེས་བྱ་བའི་རབ་གནས་ཀྱི་ཆོག། (རྒྱད་ 'མི' ༢༩) གཞུང་འདི་དག་གི་ནང་དཀོན་མཆོག་  
 གསུམ་དང་མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་བཀྲིས་ཀྱི་ཆོགས་སུ་བཅད་པ་པལ་ཆེ་བ་བཀོད་ཡོད། ༤-  
 གསང་འདུས་སྐྱབ་ཐབས། (རྒྱད་ 'མི' ༢༡) ༡- ཉེ་རུ་ཀའི་དཀྱིལ་ཆོག། (རྒྱད་ 'ད' ༤༡) ༡-  
 འཁོར་ལོ་སྒྲིམ་པའི་དཀྱིལ་ཆོག། (རྒྱད་ 'ཞ' ༡༧) ༡- དབང་གི་རབ་བྱེད། (རྒྱད་ 'ཞ' ༢༧)  
 ༡- འཕགས་པ་འཇམ་དཔལ་གྱི་དཀྱིལ་ཆོག། (རྒྱད་ 'དུ' ༢༧) ༡- རྒྱ་འབྲུལ་ཆེན་མོའི་སྐྱབ་  
 ཐབས་ཀྱི་དཀྱིལ་ཆོག། (རྒྱད་ 'ལ' ༢༤) ༡- རྒྱན་རས་གཟིགས་པར་བྱ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་  
 མཆོད་པའི་ཆོག། (རྒྱད་ 'ཤ' ༡༧) ༡- དཔལ་རྒྱུ་སྒྲེ་ལཱའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་ཆོག། (རྒྱད་  
 'ཡུ' ༧ བེ་ཀིང་སྤར་མ།) གཞུང་འདི་དག་ཏུ་དཀོན་མཆོག་གསུམ་དང་འབྲེལ་བའི་ཤིས་ཆོག་ལས་  
 མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་སྒྲིམ་རྣམས་བཀོད་མེད། འདི་དག་ལས་གཞན་པའི་གཞུང་མང་པོའི་ནང་  
 ཏུ་ཡང་ཤིས་བཟོད་དེ་བཀོད་ཡོད་ངེས་ཆེ་བས་ཞིབ་ཏུ་དབྱད་འཆོལ་ལོ།

འདོན་སྤྲོལ་ཆེ་བའི་ཆོགས་བཅད་དང་པོ་གསུམ་གཞུང་མང་པོའི་ནང་ལོགས་སུ་བཀོད་  
 ཡོད་པ་ལྟར་དུ་ལམ་འདིར་ཡང་དེའི་བོད་དཔེར་འདྲ་བསྐྱར་བསྐྱར་ཞིབ་དང་། ལེགས་སྦྲེལ་གྱི་དབར་  
 མཆོངས་བསྐྱར་དང་། ཉིན་སྐད་ཐོག་པའ་བསྐྱར་དང་སྤྲུགས་འབྲེལ་ཡོད་ཀྱི་གནད་དོན་གལ་ཆེ་  
 མང་པོར་ཉམས་ཞིབ་བྱས་པའི་ངོ་སྤྲོད་སྒྲུང་བཟོད་བཅས་བཀོད་དེ་ རྒྱ་ཏུ་སྤྲུག་དེབ་ ༧ པའི་ནང་  
 སྤྲུག་བསྐྱར་ཞུས་པ་དགོད།



# दुर्लभ ग्रन्थों की आधार सामग्री

—ठाकुरसेन नेगी—

[ इस शीर्षक के अन्तर्गत 'धीः' के 39वें अंक में 68 महत्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचना दी गई थी। प्रस्तुत अंक में उससे अन्य 79 हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचना दी जा रही है। ]

## ABBREVIATIONS

ASB	Sanskrit Manuscripts in the Government Collection, ed. by H.P. Shastri, Asiatic Society of Bengal, 1917.
ASHA	Asha Archives, Maitidevi, Kathmandu, Nepal.
BODLEIAN	Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Bodleian Library, Vol.II, 1905.
CAMBRIDGE	Catalogue of the Buddhist Manuscripts in the University Library, Cambridge, ed. by Cecil Bendall, Cambridge, 1883.
COMP./INCOMP.	Complete/Incomplete.
D-2	A Catalogue of Palm-Leaf and Selected Paper Manuscripts belonging to the Darbar Library, Nepal, ed. by H.P. Shastri, Calcutta, 1915.
DEV.	Devanāgarī.
IASWR	Buddhist Sanskrit Manuscripts, Micro-Fische Collection belonging to the Institute for Advance Studies of World Religions, New York.
IOL	Catalogue of the Sanskrit and Prakrit Manuscripts in the Library of India Office, Vol. II.
JBORS	The Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Patna.
MCBMBLJ	A Microfilm Catalogue of the Buddhist Manuscripts in Nepal, ed. by H. Takaoka, Buddhist Library, Japan, 1981.
N	Newārī Script.
NP/PL	Nepali Paper/Palm Leaf.
NEPAL-II	Catalogue of Darbar Library, Nepal, Vol.II.
RAK	Rāṣṭriya Abhilekhālāya, Kathmandu, Nepal.
RAS	Catalogue of Buddhist Sanskrit Manuscripts in the Possession of the Royal Asiatic Society, (Hodgson Collection) London.
SMTUL	A Catalogue of the Sanskrit Manuscripts in the Tokyo University Library, Tokyo, Japan, 1965.

Title	Author	Institution	Ms. No.
अभिषेकविधान Abhiṣekavidhāna		IASWR	MBB-II-16
अमोघपाशनामहृदयसूत्र Amoghapaśanāmahṛdayasūtra		RAK " IASWR	4/1383 5/183 MBB-I-30
अहोरात्रयज्ञक्रिया Ahorātrayajñakriyā		PCUV	
आर्यापरिमितायुसूत्र Āryāparimitāyusūtra		RAK	5/187
आर्यावलोकितेश्वरस्तोत्रसंग्रह Āryāvalokiteśvarastotraṅgraha		"	Reel No. E.391/30
आर्यमहाप्रतिसराकल्प Āryamahāpratīsarākālpa		SBL	B.4
उग्रवज्रवाराहीस्तव Ugravajravārāhīstava		RAK	5/2001

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	31	Comp.	
"	"	44	"	
"	Dev.	18		
"	"	25	"	
"	N	62	"	
"	"	13	"	
"	"	112	"	
"	"	42		
"	"	6		



Title	Author	Institution	Ms. No.
एकविंशतिप्रज्ञापारमिता Ekaviṃśatiprajñāpāramitā		IASWR	MBB-II-133
एकविंशतिस्तोत्र Ekaviṃśatistotra		RAK	Reel No. E.193/16
क्रियासंग्रहपञ्जिका Kriyāsaṅgrahapañjikā		IASWR	WGS-26
गुह्यपूजासिंहागतगीत Guhyapūjāsīṃhnāgatagīta		PCUV	
चिन्तामणिहृदयधारणी Cintāmaṇihṛdayadhārāṇī		RAK	5/300
चूडाकर्मविधि Cūḍākarmavidhi		"	Reel No. H.148/5
		"	" " H.388/10
छवस्कामिनीदेवीकथा Chvaskāminīdevīkathā		"	" " E.873/3
देवेन्द्रध्वजाग्रकेयूरनामधारणी Devendradhvajāgrakeyūranāmadhārāṇī		"	1/1696
दोषविज्ञान Doṣavijñāna		IASWR	MBB-II-280

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	25	Comp.	
"	"	9	"	
"	"	88	"	
"	"	99	"	
"	Raṇjanā	13	"	
"	N	8	"	
"	"	22	"	
"	"	52	"	
"	"	Folding book		
"	"	24		

Title	Author	Institution	Ms. No.
पञ्चरक्षा		ASHA	RN.2900
Pañcarakṣā		"	" 345
		"	" 1.570
		"	" 139
		"	" 1.641
पञ्चरक्षापूजाविधि		"	" 314
Pañcarakṣāpūjāvidhi		"	" 102
		RAK	Reel No. E.1867/15
पञ्चरक्षाविधान		ASHA	RN.92
Pañcarakṣāvidhāna		"	" 260
पञ्चरक्षसूत्र		"	Busu.49
Pañcarakṣāsūtra		"	" 50
		"	" 51
		"	" 52
		"	RN.2885
पञ्चाकार		CAMBRIDGE	1699-1
Pañcākāra			
पञ्चोपचारपूजाविधि		ASHA	RN.1094
Pañcopacārapūjāvidhi		"	DH.II-215
पद्मभाजनप्रतिष्ठाविधि		"	Babi.299
Padmabhājanapratīṣṭhāvidhi			



Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	114	Comp.	
"	"	204	"	
"	"	182	"	
"	"	128	"	
"	"	69	"	
"	"	49	"	
"	"	32	"	
"	"	14	"	
"	"	33	"	
"	"	44	"	
"	"	123	"	
"	"	166	"	
"	"	25	Incomp.	
"	"	171	Comp.	
"	"	79	"	
"	"	5		A.D.1199
"	"	12	"	
"	"	(1a-7b)		
"	"	12	"	

Title	Author	Institution	Ms. No.
पापमोचनपूजाविधि Pāpamocanapūjāvidhi		ASHA	RN.1198
पारमितासमास Pāramitāsamāsa	आर्यशूर Āryaśūra	RAK	5/145 (A.39/2)
पाशकर्मचर्या Pāśakarmacaryā		"	Reel No. E.1752/13
पीठस्तव Pīṭhastava		"	" " E.596/11
		"	" " E.594/2
पूजाविधि, देवी आमन्त्रणविधि Pūjāvidhi, Devī Āmantraṇavidhi		ASHA	DH.II-213
प्रज्ञापारमिता एकविंशतिस्तोत्र Prajñāpāramitā Ekaviṃśatistotra		RAK	Reel No. E.1364/5
प्रतिसरा Pratisarā		IASWR	MBB-II-237
प्रत्यङ्गिराकल्प Pratyāṅgirākālpa		RAK	Reel No. E.577/13
प्रत्यङ्गिरातन्त्र Pratyāṅgirātantra		"	" " E.873/8
बल्यर्चनबलिविधि Balyarcanabalividhi		ASHA	RN.1293

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	19	Incomp.	
PL	"	11		
NP	"	21		
"	"	8		
"	"	5		
"	"	12-14, 18-20		
"	"	4	Comp.	
PL	"	113	"	
NP	"	32	"	
"	"	202	"	
"	"	12	"	



Title	Author	Institution	Ms. No.
बौद्धधारणी, स्तोत्रसंग्रह Bauddhadhāraṇī, Stotrasaṁgraha		RAK	Reel No. E.922/4
बौद्धस्तोत्रसंग्रह Bauddhastotrasaṁgraha		"	" " E.15/17
		"	" " H.147/3
			" " E.64/1
भूतडामरतन्त्र Bhūtaḍāmaratantra		ASHA	Buta 112
मञ्जुवज्रस्तोत्र Mañjuvajrastotra		RAK	Reel No. E.1868/7
मञ्जुश्रीपाराजिका Mañjuśrīpārājikā		ASHA	Bubi.6
		"	RN. 2729
		"	" 635
		"	" 2729 'P'
मञ्जुश्रीस्तवस्तोत्र Mañjuśrīstavastotra		RAK	Reel No. E.1752/18
मण्डलाधिवासन Maṇḍalādhivāsana		"	" " H.25/13
मण्डलावली Maṇḍalāvalī		IASWR	MBB-II-244

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	322	Comp.	
"	Dev.	41	"	
"	N	98	Incomp.	
"	Dev.	100	Comp.	
"	N	77	"	
"	"	3	"	
"	"	31	Incomp.	
"	"	41	Comp.	
"	"	15	Incomp.	
"	"	41	Comp.	
"	"	12	Incomp.	
"	"	8	"	
PL	"	110	"	

Title	Author	Institution	Ms. No.
महाकालतन्त्र		ASHA	RN.122
Mahākālatantra		"	" 2.598
		"	Buta.65
		"	RN.3.611
		"	D.77 (DH.93)
		"	D.399 (II-121)
महाजातकमाला		RAK	Reel No. E.611/2
Mahājātakamālā			
महातन्त्रराजमहाकल्प ( द्वात्रिंशत्कल्पोद्भूत		PCUV	41
कल्पद्वयात्मक )		ASHA	DH.II-279
Mahātāntrarājamahākālpa			
(Dvātrīṃśatkalpoddhṛtakalpadvayātmaka)			
महाप्रत्यङ्गिरा		RAK	Reel No. E.594/3
Mahāpratyaṅgirā		"	" " E.1163/1
		"	" " E.1331/6
		"	" " E.1369/4
		"	" " E.1481/6
		"	" " E.1698/19
महाप्रत्यङ्गिरास्तोत्र		"	" " E.1548/6
Mahāpratyaṅgirāstotra			
महाबलिविधि		ASHA	DH.82
Mahābalividhi			
महासंवरगणदेवतास्तोत्र		RAK	Reel No. E.538/12
Mahāsaṃvaragaṇadevatāstotra			



Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	90	Comp.	
"	"	92	Incomp.	
"	"	32	"	
"	"	61	Comp.	
"	"	79	"	
"	"	9	Incomp.	
"	"	310	Comp.	
"	"	(109b-150b)		
"	"	(17a-61b)	Incomp.	Missing folios. 1-16, 21, 24-25, 27-60
"	"	30	Comp.	
"	"	210	"	
"	"	108	Incomp.	
"	"	127	Comp.	
"	Dev.	114	Incomp.	
"	N	26	"	
"	"	87	"	
"	"	15	"	
"	"	6	Comp.	

Title	Author	Institution	Ms. No.
मृदङ्गतालध्वनिसंकेत Mrdaṅgatāladhvanisāṅketa		RAK	Reel No. E.1752/14
भीमरथारोहणविधि Bhīmarathārohaṇavidhi		"	" " E.1139/9
योगाम्बरतन्त्र Yogāmbaratantra		ASHA	Buta.95
योगाम्बरविधि Yogāmbaravidhi		"	RN.281
योगाम्बरसाधन Yogāmbarasādhana		"	D.95 (DH.125)
योगिनीजालमहातन्त्रराज Yoginijālamahātantrarāja		"	D.247 (DH.377)
राष्ट्रपालपरिपृच्छानाममहायानसूत्र Rāṣṭrapālparipṛcchānāmamahāyānasūtra		SMTUL	319
लक्षाहुति Lakṣāhuti		RAK	Reel No. E.1866/13

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	17	Incomp.	
"	N	35	Comp.	
"	"	71	"	
"	"	30	"	
"	"	48	"	
"	"	43	"	
"	"	28	"	
"	"	15	"	



Title	Author	Institution	Ms. No.
लोकेश्वरपाराजिका, ताराप्रकृति Lokeśvarapārājikā, Tārāprakṛti		ASHA	DH.II-206
वज्रयोगिनीविधि Vajrayoginīvidhi		RAK	Reel No. A.129/2
वज्रयोगिनीसाधन Vajrayoginīsādhana		"	5/86
वज्रवाराहीकल्पमहातन्त्रराज Vajravārāhīkalpamahātāntrarāja		ASHA	D.271 (DH.404)
		"	D.265 (DH.396)
		"	D.659 (DH.311)
		"	D.243 (DH.373)
वर्षापणविधान Varṣāpaṇavidhāna		RAK	4/130 (B.24/20)
वसुधारात्रतविधि Vasudhārāvratavidhi		"	Reel No. E.1480/7
वसुधारासमाधिप्रज्ञाविधि Vasudhārāsamādhiprajñāvidhi		"	" " E.1485/11
वास्तुपूजाविधि Vāstupūjāvidhi		"	" " E.1574/22
		ASHA	RN.962

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(7a-13b)		
"	Dev.	Folding Book	Incomp.	
PL	N	8		
NP	"	236	Comp.	
"	"	154	"	
"	"	150	"	
"	"	103	"	
"	"	54		
"	"	13	Incomp.	
"	"	29	"	
"	"	110	"	
"	"	12	"	

Title	Author	Institution	Ms. No.
शान्तिबल्यर्चनविधि Śāntibalyarcanavidhi		RAK	Reel No. E.1243/16
सिन्दूराभिषेकविधि Sindūrābhiṣekavidhi		"	4/1490
सिंहनादनामधारणी Sīṁhanādanāmādhārāṇī		CAMBRIDGE	1648
संपुटतन्त्र Saṁpuṭatantra		ASHA	D.245 (DH.375)
संक्षिप्तप्रतिष्ठाविधि Saṁkṣiptapratīṣṭhāvidhi		"	Bubi 315
संपूर्णचक्रसंवरसमाधि Saṁpūrṇacakraśaṁvarasamādhī		"	RN.2.594
संपूर्णचक्रसंवरपूजाविधि Saṁpūrṇacakraśaṁvarapūjāvidhi		"	" 2.825
संवरसमाधिपूजा Saṁvarasamādhīpūjā		"	" 2.704



Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	18		
"	"	40		
"	"	(16a-17b)		
"	"	70	Comp.	
"	"	14	"	
"	"	36	"	
"	"	84	"	
"	"	15	"	

Title	Author	Institution	Ms. No.
संवरोदयतन्त्र ( हेरुकतन्त्र )		ASHA	D.132 (DH.212)
Samvarodayatantra (Herukatantra)		"	D.628 (II-353)
		"	D.254 (DH.384)
		"	D.194 (DH.308)
		"	D.124 (DH.199)
		"	RN. 318
		"	" 2.720
		"	" 1.667
		"	" 2737
		"	" 3614
		"	Buta.77
		"	RN.3622
		"	Buta.96
समयविधि		RAK	4/297 (A.521/9)
Samayavidhi			
सिंहसार्थवाहमहायानसूत्र		"	Reel No.E.874/3
Sirihhasārthavāhamahāyānasūtra		IASWR	MBB-I-134
सुभाषितसंग्रहमहामुद्रासिद्धि		ASHA	RB.2709
Subhāṣitasan̄grahamahāmudrāsiddhi			
स्वयम्भू-उत्पत्तिकथा		"	" 551
Svayambhū-Utpattikathā		"	" 346
		"	" 716
स्वयम्भूपञ्चबुद्ध-उत्पत्तिकथा		"	" 485
Svayambhūpañcabuddha-Utpattikathā		"	JRN 3102

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	16		
"	"	60	Comp.	
"	"	110	"	
"	"	92	"	
"	"	88	"	
"	"	68	"	
"	"	96	"	
"	"	76	"	
"	"	82	"	
"	"	78	"	
"	"	148	"	
"	"	53	"	
"	"	99	"	
"	Dev.	Folding Book	Incomp.	
"	N	125	Comp.	
"	"	126	"	
"	"	36	"	
"	"	120	"	
"	"	196	"	
"	"	254	"	
"	"	11	"	
"	"	7	"	



मञ्जुघोषप्रभृतयः पूजयन्ति यथा जिनान् ।

तथा तथागतान् नाथान् सपुत्रान् पूजयाम्यहम् ॥

(बोधिचर्यावतार- 2.22)

निर्वातुकामांश्च जिनान् याचयामि कृताञ्जलिः ।

कल्पाननन्तांस्तिष्ठन्तु मा भूदन्धमिदं जगत् ॥

(बोधिचर्यावतार- 3.5)

# पञ्चबुद्धों से उद्भूत देवताओं के विविध स्वरूप

—ठाकुरसेन नेगी—

[ प्रस्तुत लेख में पञ्चबुद्धों से उद्भूत देवताओं के विविध स्वरूप विषय पर विवेचन किया गया है। संक्षेप में बौद्ध तन्त्र में पञ्चबुद्धों से अनेक देवी-देवताओं की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। पञ्चबुद्धों को एक-एक कुल का जनक माना गया है। अतः सारे देवी-देवता किसी एक विशिष्ट कुल से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार इनसे उद्भूत देवताओं के मुकुट पर उस बुद्ध की सूक्ष्म अनुकृति अंकित होती है, जिससे वे उद्भूत हुई हैं। ]

## 1. अमिताभ बुद्ध से उत्पन्न देवता

बोधिसत्त्व के अतिरिक्त अन्य अनेक बौद्ध देवताओं की उत्पत्ति पञ्चबुद्धों से स्वीकार की गई है। यथा—

साधनमाला में अमिताभ बुद्ध से उत्पन्न देवताओं में—(1) महाबल तथा (2) सप्तशक्तिक हयग्रीव दो नाम प्राप्त होते हैं।

### ( 1 ) महाबल

साधनमाला साधन सं० 258 में यह रक्तवर्णी, एकमुखी एवं चतुर्भुजी है। इनके भूरे केश ऊपर की ओर उठे हैं, जिन्हें एक सर्प से बाँधा गया है। दायें हाथ में श्वेत दण्ड एवं श्वेत चामर तथा बायें हाथ वन्दना-अभिनय मुद्रा एवं सपाश युक्त तर्जनी मुद्रा में है। ये व्याघ्रचर्म एवं सर्पाभूषणों से अलंकृत प्रत्यालीढ मुद्रा में हैं तथा इनके मुकुट पर अमिताभ बुद्ध अंकित है।

“महाबलमेकमुखं चतुर्भुजं सर्वाङ्गरक्तमूर्द्धपिङ्गलसर्पावबद्धकेशं दक्षिणभुजाभ्यां सितदण्डसितचामरधरं वामभुजाभ्यां वन्दनाभिनयसपाशतर्जनीकरं व्याघ्रचर्मनिवसनं सर्पाभरणं प्रत्यालीढं ...अमिताभमुकुटिनं ...।” (साधनमाला, साधन सं० 258, पृ० 507)

### ( 2 ) सप्तशक्तिक हयग्रीव

साधनमाला (साधन सं० 259-260) में इस देवता की उत्पत्ति अमिताभ बुद्ध एवं अक्षोभ्य बुद्ध दोनों से वर्णित है।

अमिताभ बुद्ध से उत्पन्न ये रक्तवर्णी, त्रिमुखी, त्रिनेत्री तथा बृहत् उदर युक्त अश्वमुखी हैं। वे कपालमाला, सर्पाभूषण एवं व्याघ्रचर्म से अलंकृत हैं। इनका एक पैर पृथिवी पर तथा दूसरा पैर ऊपर की ओर उठा है। इनके हाथ में वज्र एवं दण्ड है तथा मुकुट पर अमिताभ बुद्ध अंकित है।

“हयग्रीव ...रक्तवर्ण महाभयानकं त्रिनेत्रं ...बृहदुदरं दंष्ट्राकरालिनं दन्तौष्ठकपाल-मालिनं जटामुकुटिनं अमिताभशिरस्कं द्वितीयं मुखं भीमभयानकं नीलं हयाननं ...व्याघ्र-चर्मनिवसनं सर्वालङ्कारभूषितम् ...गृहीतवज्रदण्डं ...।” (साधनमाला, साधन सं० 260, पृ० 509)

### अक्षोभ्य बुद्ध से उत्पन्न देवता

अक्षोभ्य बुद्ध से अनेक देवताओं की उत्पत्ति हुई है जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं—

#### (1) उच्छुष्म जम्भल

साधनमाला (साधन सं० 295) में यह पीतवर्णी, द्विभुजी एवं पञ्चवर्षीय कुमार रूप में स्थित है। इनका एक पैर कुबेर के मस्तक पर है जिसके मुख से रत्न निकल रहे हैं। दूसरा पैर कुबेर के दोनों पैरों पर है। बाहर की ओर निकले उदर(पेट) के कारण ये लम्बोदर तथा आभूषण के रूप में सर्प को धारण किये हैं। इनके दायें हाथ में रक्त से परिपूर्ण कपाल तथा बायें हाथ में नकुल है। ये नग्न प्रत्यालीढ भूस्पर्श मुद्रा में है। इनके मुकुट पर अक्षोभ्य बुद्ध अंकित है।

“भगवन्तं उच्छुष्मं पञ्चवर्षकुमाराकृतिं खर्वं विश्वपद्मस्थं चन्द्रोपरि सर्पाभरणभूषितं रत्नमुकुटिनं मुञ्चद्रत्नमुखपीताङ्गसुसधनदस्य ललाटं दक्षिणेन चरणेन चरणद्वयं वामेनाक्रान्त-मूर्तिं प्रत्यालीढपदं नग्नं ऊर्ध्वलिङ्गं लम्बोदरं हृदि दक्षिणपाणिस्थरक्तपूर्णकपालाभिमुखदृष्टिं ...पिङ्गोर्ध्वकेशं भूस्पर्शमुद्रानीलाक्षोभ्यमुनिमुद्रितमस्तकं ...।”

(साधनमाला, साधन सं० 295, पृ० 577)

#### (2) कृष्णयमारि

कृष्णयमारि तथा रक्तयमारि देवताओं का उद्भव अक्षोभ्य बुद्ध से प्रकल्पित है। कृष्णयमारि नीलवर्णी तथा रक्तयमारि रक्तवर्णी है। साधनमाला (साधन सं० 273-280) में कृष्णयमारि का वर्णन मिलता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि कृष्णयमारि के कम से कम चार रूप हैं—



(1) साधन सं० 275-277 में ये एक मुखी एवं द्विभुजी हैं। ये अपने दायें हाथ में वज्र द्वारा चिह्नित नील दण्ड तथा बायें हाथ में तर्जनीपाश धारण किये हैं।

(2) साधन सं० 273 में ये त्रिमुखी एवं चतुर्भुजी हैं। ये अपने दायें हाथों में मुद्गर एवं असि तथा बायें हाथों में पद्म एवं रत्न धारण किये हैं। इनका मूल मुख गाढ़ा नील, दक्षिण मुख श्वेत एवं वाम मुख रक्त है तथा वे अपनी प्रज्ञा के साथ आलिङ्गित हैं।

(3) साधन सं० 278-279 में ये त्रिमुखी एवं षड्भुजी हैं। ये दायें हाथों में चक्र, असि एवं मूसल तथा बायें हाथों में वेताली, परशु एवं पाश हैं।

(4) साधन सं० 274-280 में ये षड्मुखी एवं षड्भुजी हैं। इनके दायें हाथों में खड्ग, मुद्गर एवं वज्र तथा बायें हाथों में घण्टा, वज्रपाश एवं मूसल हैं। इनके मुकुट पर अक्षोभ्य बुद्ध अंकित है।

“...यमारि ...प्रत्यालीढपदस्थितं एकमुखं द्विभुजं नीलवर्णं दक्षिणकरे वज्राङ्कितोद्यतनीलदण्डं वामकरे तर्जनीपाशं हृदि ...।” (साधनमाला, साधन सं० 275, पृ० 547)

“...कृष्णं त्रिमुखं षड्भुजं, क्वचित् षण्मुखं षट्चरणं च... चक्रखड्गमूषलधर-दक्षिणभुजत्रयं वेतालीपरशुपाशधारिवामभुजत्रयं, खड्गमुद्गरवज्रधरदक्षिणकरं वामे घण्टावज्रपाशमूषलानि क्वचित्, मुण्डमालाविभूषित... आभरणं अक्षोभ्यमुकुटिनम् ...।”

(साधनमाला, साधन सं० 278, पृ० 554)

### ( 3 ) चण्डमहारोषण

साधनमाला (साधन सं० 85-88) में ये एकमुखी, द्विभुजी एवं पीतवर्णी हैं। इनके हाथों में खड्ग एवं तर्जनीपाश हैं तथा मुखाकृति पूर्ण भयावह है। ये मुण्डमाला सितसर्प यज्ञोपवीत एवं व्याघ्रचर्म से अलङ्कृत हैं। इनका वाम पाद पृथिवी पर तथा दक्षिण पाद कुछ ऊपर उठा हुआ है। इनके मुकुट पर अक्षोभ्य बुद्ध अंकित है।

“श्रीचण्डमहारोषणं भगवन्तं ...पुष्पसंकाशं एकमुखं द्विभुजं केकराक्षं दंष्ट्रा-विकरालमहाघोरवदनं ...मुण्डमालाशिरस्कमारक्तचक्षुर्द्वयं दक्षिणं खड्गधरं तर्जनीपाश-हृदयस्थवामकरं सितसर्पयज्ञोपवीतं व्याघ्रचर्मनिवसनं ...भूमिलग्नवामचरणमीषदुन्नतदक्षिण-चरणं ...अक्षोभ्यमुकुटिनं ...।” (साधनमाला, साधन सं० 86, पृ० 172)

## (4) जम्भल

बौद्धों में धन के देवता जम्भल है। साधनमाला (साधन सं० 286, 297) में जम्भल का वर्णन है। ये एकमुखी एवं द्विभुजी हैं। इनके दायें हाथ में एक मातुलुंग (चकोतरा) एवं बायें हाथ में एक नकुली है।

साधनमाला (साधन सं० 286) में ये त्रिमुखी एवं षड्भुजी हैं। ये दायें हाथों में मातुलुङ्ग (चकोतरा), अंकुश एवं बाण तथा बायें हाथों में नकुल, पाश एवं कार्मुक धारण किये हैं।

“जम्भलं त्रिमुखं षड्भुजं अक्षोभ्यजटामुकुटिनं दक्षिणत्रिभुजैः मातुलुङ्गाङ्कुश-  
बाणधरं प्रथमवामभुजैकेन वामपार्श्वस्थितप्रज्ञालिङ्गितमपरवामभुजाभ्यां सपाशनकुलीकार्मुक-  
धरं...।” (साधनमाला, साधन सं० 286, पृ० 564)

साधनमाला (साधन सं० 297) में जम्भल के एक चतुर्भुजी रूप का भी वर्णन है। इनके दायें हाथों में मातुलुङ्ग एवं खड्ग तथा बायें हाथों में नकुल एवं रत्न हैं।

“आर्यजम्भलं सव्ये बीजपूरखड्गधरं वामे नकुलीरत्नधरं भुजद्वयालिङ्गितस्वाभप्रज्ञं  
...।” (साधनमाला, साधन सं० 297, पृ० 581)

## (5) बुद्धकपाल

साधनमाला (साधन सं० 254) में ये नीलवर्णी, एकमुखी एवं चतुर्भुजी हैं। वे अस्थ्याभरण अर्द्धपर्यङ्कनृत्यमुद्रा में मुण्डमाला से विभूषित हैं। इनके वाम भुजा में खट्वाङ्ग एवं कपाल तथा दक्षिण भुजा में कर्तरी एवं डमरु हैं। इनके मुकुट पर अक्षोभ्य बुद्ध अंकित हैं।

“नीलवर्णो महावपुः अस्थ्याभरणमर्द्धपर्यङ्कनृत्यस्थं मुण्डमालाविभूषितं मुकुटे  
अक्षोभ्यधारिणं एकवक्त्रं चतुर्भुजं वामे खट्वाङ्गकपालं दक्षिणे कर्तिडमरुकं प्रज्ञालिङ्गितं  
वामे चित्रसेना मत्ता नग्ना मुक्तकेशी सर्वभयरहिता”। (साधनमाला, साधन सं० 254, पृ० 501-2)

## (6) महामाया

साधनमाला (साधन सं० 239-40) में ये (नील-पीत-सित-श्याम) चतुर्मुखी, त्रिनेत्री एवं चतुर्भुजी हैं। इनके दायें हाथ में कपाल एवं बाण तथा बायें हाथ में खट्वाङ्ग एवं धनुष हैं। ये नृत्यमुद्रा में अर्द्धपर्यङ्क आसन में स्थित हैं तथा इनके पार्श्व में चार देवी



स्थित हैं—पूर्व में वज्रडाकिनी, दक्षिण में रत्नडाकिनी, पश्चिम में पद्मडाकिनी तथा उत्तर में विश्वडाकिनी। ये सभी क्रोधावेश में कपालमाला से विभूषित हैं।

**महामायाह्वयं देवं चतुर्मुखं चतुर्भुजम् ।**

**अङ्गे यस्य तथा देवी चतस्रो दिक्षु चापराः ॥**

(साधनमाला, साधन सं० 239, पृ० 458)

“नीलपीतसितश्यामचतुर्मुखं चतुर्भुजं दक्षिणे भुजे कपालशरधरं वामे खट्वाङ्ग-  
धनुर्धरं रौद्रासनस्थं त्रिनेत्रं सार्द्रमुण्डस्त्रगदाममालिनं कपालमालाभिः शिरसि भूषितं...।”

(साधनमाला, साधन सं० 240, पृ० 467-68)

### ( 7 ) रक्तयमारि

साधनमाला (साधन सं० 268-69) में ये रक्तवर्णी, एकमुखी एवं द्विभुजी हैं। इनके बायें हाथ में रक्त परिपूर्ण कपाल तथा दायें हाथ में मुण्डाङ्कित(कपालाङ्कित) सितदण्ड हैं। इनके मुकुट पर अक्षोभ्य बुद्ध अंकित है। ये भयावह रूप वाले तथा सर्पाभरण एवं व्याघ्रचर्म से विभूषित हैं तथा केश अग्निज्वाला के सदृश ऊपर उठे हैं। वे महिष पर आलीढ मुद्रा में अपनी प्रज्ञा भगवती से आलिङ्गित हैं।

“...रक्तवर्णं प्रत्यालीढपदस्थितं एकमुखं द्विभुजं वामकरेण रक्तपरिपूर्णकपालं दक्षिणकरे मुण्डाङ्कितसितदण्डधरं सर्पाभरणभूषितं भयानकं पिङ्गलोर्ध्वकेशं गलद्व्याघ्र-  
चर्माम्बरं स्वाभप्रज्ञया विचित्राभरणयाऽऽलीढपदस्थितया आलिङ्गितम् ...”।

(साधनमाला, साधन सं० 268, पृ० 528)

“...एकमुखं द्विभुजं प्रत्यालीढपदं रक्तपरिपूर्णकपालवामकरं सार्द्रपीतमुण्डाङ्कित-  
सितदण्डदक्षिणकरं नागाभरणविभूषणं पिङ्गलोर्ध्वकेशं व्याघ्रचर्माम्बरधरं अक्षोभ्यमुकुटिनं  
स्वाभप्रज्ञालिङ्गितं महिषोपरि विश्वदलकमलसूर्यस्थं ...”।

(साधनमाला, साधन सं० 269, पृ० 530)

### ( 8 ) सप्ताक्षर

साधनमाला (साधन सं० 250-51) में ये त्रिमुखी, त्रिनेत्री एवं षड्भुजी हैं। इनके मूल मुख नील, दक्षिण मुख पीत एवं वाम मुख हरित हैं। ये 32 महापुरुष लक्षण तथा 80 अनुव्यञ्जनों से संयुक्त हैं तथा व्याघ्रचर्म धारण किये हैं। ये बायें हाथों में वज्र, घण्टा एवं आर्द्र नरचर्म तथा दायें हाथों में कपाल, खट्वाङ्ग एवं त्रिशूल धारण किये हैं। जब ये



अपनी शक्ति 'वज्रवाराही' से संयुक्त होते हैं तब नरचर्म को त्याग कर उन हाथों में धनुष, बाण लिए 'देवी वज्रवाराही' को अपने दोनों जंघों पर बैठाए हुए दिखाई देते हैं।

“षड्भुजं त्रिमुखं त्र्यक्षं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥  
 व्यञ्जनाशीतिसंयुक्तं आलिकाल्युद्भवं प्रभुम् ।  
 वज्रघण्टासमापन्नं नरचर्मार्द्रधारिणम् ॥  
 वामे कपालखट्वाङ्गत्रिशूलं दक्षिणे करे ।  
 कपालमालामुकुटिं विश्ववज्रजटाधरम् ॥  
 अर्द्धेन्दुशेखरं चैव षण्मुद्रादेहभूषणम् ।  
 नीलपीतहरितवक्त्रं व्याघ्रचर्माम्बरावृतम् ॥  
 आलीढभ्रान्तसूर्यस्थ-भैरवकालरात्रिकम् ।  
 यथा नाथस्य तथा वज्रवाराह्यापि भुजादिकम् ॥  
 देवी जानुसमावेष्ट्य परमानन्दविह्वला...” ।”

(साधनमाला, साधन सं० 250, पृ० 487-88)

“...षड्भुजं मूलदक्षिणवामनीलपीतहरितत्रिमुखं त्रिनयनं द्वात्रिंशल्लक्षणा-  
 शीत्यनुव्यञ्जनात्मकं प्रभुं आलिङ्गनभुजाभ्यां वज्रघण्टाधरं इतरोर्ध्वभुजाभ्यां नरचर्मधारिणं  
 वामभुजासक्तखट्वाङ्गकपालकलितकरं दक्षिणे त्रिशूलधरं कपालमालाभरणोज्ज्वलं षण्मुद्रा-  
 विभूषितं व्याघ्रचर्माम्बरावृतकटिं ...यथा नाथस्य तथा वज्रवाराह्या वर्णभुजादिकं किन्तु  
 नरचर्म त्यक्त्वा तत्कराभ्यां धनुर्बाणधारिणी देवी भगवज्जानुद्वयं समावेष्ट्य परमानन्द-  
 विह्वला...” । (साधनमाला, साधन सं० 251, पृ० 491-92)

### (9) हयग्रीव

साधनमाला (साधन सं० 259) में ये रक्तवर्णी, त्रिमुखी, त्रिनेत्री एवं अष्टभुजी हैं।  
 इनके दायें चार हाथों में वज्र, दण्ड, करणमुद्रा एवं बाण तथा बायें चार हाथों में पद्म,  
 धनुष, एक हाथ तर्जनीमुद्रा एवं एक हाथ वक्ष को स्पर्श किये हुए हैं। वे सर्पाभूषणों से  
 विभूषित एवं व्याघ्रचर्म धारण किये हैं। इनके मुकुट पर अक्षोभ्य बुद्ध अंकित हैं।

“...आर्यहयग्रीवं रक्तवर्णं त्रिमुखमष्टभुजं प्रतिमुखं त्रिनेत्रं नीलसितदक्षिणेतरवदनं  
 सर्पाभरणं ललिताक्षेपपदन्यासं सक्रोधदृष्टिनिरीक्षणं प्रथममुखं स्मेरं ललज्जिह्वं दक्षिणमुखं

दंष्ट्रावष्टब्धौष्ठं वाममुखं व्याघ्रचर्मनिवसनं वज्रदण्डकरणमुद्राशरोद्यतदक्षिणकरचतुष्टयं तर्जनि-  
कास्वकुचग्रहपद्मधनुरुद्यतवामकरचतुष्टयं अक्षोभ्यमौलिनं...”।

(साधनमाला, साधन सं० 259, पृ० 508)

### ( 10 ) हेरुक

अक्षोभ्य बुद्ध से उत्पन्न बौद्ध देवकुल में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देवता हेरुक है। जब ये अपनी शक्ति नैरात्म्या के साथ संयुक्त रूप में होते हैं, तब उनके असंख्य रूप होते हैं।

साधनमाला (साधन सं० 241, 244) में हेरुक के एकाकी रूप का वर्णन है। ये एकमुखी तथा द्विभुजी हैं। इनके दायें हाथ में वज्र तथा बायें हाथ में पूर्ण कपाल है। इनका शरीर भस्म से लिपा हुआ है तथा ये नर चर्म धारण किये हैं।

साधनमाला (साधन सं० 245) में ये व्याघ्रचर्म धारण किये हैं। ये शव पर अर्द्धपर्यङ्कमुद्रा में नृत्य करते हुए मानव के कटे सिरों के हार पहने हुए हैं। इनके सम्पूर्ण शरीर अस्थि-आभूषणों से विभूषित हैं। इनके भूरे केश अग्निज्वाला के सदृश ऊपर उठे हैं। इनके मुकुट पर अक्षोभ्य बुद्ध अंकित हैं।

“...नीलं नरचर्मभृतं कपालमालाक्षोभ्यालङ्कृतशिरस्कं ...द्विभुजैकमुखं दंष्ट्रा-  
करालवदनं दक्षिणकरेण वज्रधारिणं वामकरेण पूर्णकपालं वामस्कन्धासक्तचलद्वण्टिका-  
पताकानरशिरोविश्ववज्रालङ्कृतपञ्चसूचिकवज्रशिखरमध एकसूचिकवज्राकारं यज्ञोपवीत-  
वत्खट्वाङ्गं विश्वपद्मसूर्यं वामपादं ...दक्षिणचरणं ...नृत्यं कुर्वन्तं ...।”

(साधनमाला, साधन सं० 241, पृ० 469)

“शवस्थमर्द्धपर्यङ्कं नरचर्मसुवाससम् ।  
भस्मोद्धूलितगात्रं च स्फुरद्वज्रं च दक्षिणम् ॥  
चलत्पताकाखट्वाङ्गं वामे रक्तकरोटकम् ।  
शतार्द्धमुण्डमालाभिः कृतहारमनोरमम् ... ॥  
...पिङ्गोर्ध्वकेशमक्षोभ्यमुकुटं कर्णकुण्डलम् ॥”

(साधनमाला, साधन सं० 244, पृ० 473)

### रत्नसंभव बुद्ध से उत्पन्न देवता

#### जम्भल

रत्नसंभव बुद्ध से उत्पन्न प्रमुख देवता जम्भल है। ये अक्षोभ्य बुद्ध से उत्पन्न जम्भल के सदृश हैं। किन्तु इनके मुकुट पर रत्नसंभव बुद्ध अंकित हैं। ये एकमुखी, द्विभुजी एवं



सुवर्णवर्णी हैं। इनके दायें हाथ में मातुलुङ्ग (बीजपूरक) तथा बायें हाथ में नकुली हैं। ये लम्बोदर तथा नानारत्नालङ्कारों को धारण किये हैं।

“भगवन्तं जम्भलं सुवर्णवर्णं लम्बोदरं सर्वालङ्कारधरं वामदक्षिणहस्ताभ्यां नकुली-  
बीजपूरकधरं रत्नसंभवमुकुटं उत्पलमालाधरं ...।” (साधनमाला, साधन सं० 284, पृ० 560)

### उच्छुष्मजम्भल

साधनमाला (साधन सं० 291) में ये रत्नसंभव बुद्ध से उद्भूत हैं। ये कुमार के अनुरूप वामन रूप में पीतवर्णी एवं द्विभुजी हैं। इनके दायें हाथ में रक्तपूर्ण कपाल तथा बायें हाथ में नकुल हैं। ये लम्बोदर तथा नानारत्नाभूषणों से विभूषित हैं। इनके मुकुट पर रत्नसंभव बुद्ध अंकित हैं।

“उच्छुष्मं डिम्भरूपं अविद्धकर्णं कृष्णवर्णं पिङ्गोर्ध्वकेशं वामनाकारं कृतभृकुटिनं  
दंष्ट्रावन्तं रत्नसंभवमुकुटिनं अष्टनागाभरणभूषितं वामकरेण रत्नादिकमुद्गरन्तीनकुलीधरं  
दक्षिणेन रक्तपूर्णकपालधरं दक्षिणशिरः कनकवर्णनानालङ्कारभूषितम्।”

(साधनमाला, साधन सं० 291, पृ० 569)

### संयुक्त रूप से पञ्चबुद्धों से उत्पन्न प्रमुख देवता

संयुक्त रूप से पञ्चबुद्धों से अनेक देवताओं की उत्पत्ति हुई है, जिनमें से निम्न-  
लिखित प्रमुख हैं—

#### (1) भूतडामर

साधनमाला (साधन सं० 264-67) में भूतडामर का वर्णन है। इनका बौद्ध देवकुल में महत्त्वपूर्ण स्थान है। निष्पन्नयोगावली के अनुसार ये पञ्चबुद्ध कुल से सम्बन्धित हैं। साधनमाला (साधन सं० 264) में ये एकमुखी, त्रिनेत्री एवं चतुर्भुजी हैं। मुख्य हाथ वक्षस्थल पर है। संभवतः ये धर्मचक्रमुद्रा का प्रदर्शन कर रहे हैं। दायें हाथ में वज्र तथा बायें हाथ तर्जनीपाश मुद्रा में हैं। दूसरे दायें हाथ में डमरू एवं कर्त्रि तथा बायें हाथ में त्रिशूल एवं कपाल धारण किये हैं। कण्ठ में नरमुण्डों की माला, व्याघ्र चर्म तथा सर्पाभूषणों से विभूषित हैं। इनके मुकुट पर पञ्चबुद्ध अंकित हैं।



“नीलपिङ्गोर्ध्वबद्धकेशं नीलवस्त्रावृततनुं दक्षिणे वज्रधरं वामे सपाशतर्जनीधरं पञ्चकपालमकुटं वामे त्रिशूलकपालधरं दक्षिणे डमरुकत्रिकाधरं ...त्रिनेत्रं व्याघ्रचर्माम्बरं ...प्रत्यालीढपदाक्रान्तं।” (साधनमाला, साधन सं० 264, पृ० 513)

“...पञ्चकपालिनं त्रिनेत्रं दंष्ट्रकरालिनं ...यज्ञोपवीतिनं व्याघ्रचर्माम्बरधरं चतुर्भुजं सव्याभ्यां कर्त्रिडमरुधरं कपालत्रिशूलभृद्दामद्वयं रौद्रं प्रत्यालीढेनाक्रान्तो भूतडामरो महारौद्रो नीलः पञ्चकपालालङ्कृतमुकुटी पञ्चतथागतमुकुटी पिङ्गोर्ध्वबद्धकेशो नीलवस्त्रावृततनुः दंष्ट्रकरालवक्त्रो रक्तनेत्रत्रयः साट्टहासश्चतुर्भुजो दक्षिणेन नीलकरालवज्रमुल्लालयन्वामेन सपाशतर्जनीधरो द्वाभ्यामाबद्धमुद्रः।” (निष्पन्नयोगावली, पृ० 72)

## (2) महाकाल

वज्रयान में महाकाल का विशिष्ट स्थान है। यह पञ्चबुद्धों से उत्पन्न महत्त्वपूर्ण देवता है। साधनमाला (साधन सं० 301, 312) में यह उग्र स्वभाव एवं कृष्णवर्णी है। इनके दो रूप प्रदर्शित हैं—(1) एक मुखी रूप में ये द्विभुजी, चतुर्भुजी, षड्भुजी एवं त्रिनेत्री हैं तथा (2) अष्टमुखी रूप में ये चतुर्विंशति नेत्री एवं षोडशभुजी हैं। ये नरमुण्डों की माला एवं सर्पयज्ञोपवीत धारण किये हैं। इनके रत्नजटित मुकुट पर पञ्चबुद्ध अंकित हैं।

“श्रीमहाकालभट्टारकं द्विभुजमेकमुखं कृष्णवर्णं त्रिनयनं महाज्वालं कर्त्रिकपाल-धारिदक्षिणवामभुजं मुण्डमालालङ्कृतोर्ध्वपिङ्गलकेशोपरिपञ्चकपालधरं दंष्ट्राभीमभयानकं भुजङ्गाभरणयज्ञोपवीतं खर्वरूपं सुवद्रुधिरमुखमात्मानं...।” (सा०मा०, साधन सं० 301, पृ० 585)

“व्याघ्रचर्माम्बरं भीमं त्रिनेत्रं विकृताननम् ।

एकवक्त्रं करालास्यं षड्भुजं क्रोधविग्रहम् ॥

वज्राङ्गकर्त्रिसव्येष्वक्षस्रक् डमरुकं तथा ।

वामे कपालशूलं च वज्रपाशं तथैव च ॥”

(साधनमाला, साधन सं० 304, पृ० 590-91)

“भगवन्तं षोडशभुजमहाकालं ...चतुर्विंशतिनेत्रं चतुश्चरणं षोडशभुजं दक्षिणकरैः कर्त्रिवज्रगजचर्ममुद्गरत्रिशूलखड्गयमदण्डं वामकरैः रक्तपूर्णकपालगजचर्मघण्टाङ्कुश-श्वेतचामरडमरुनरशिरोदधानं शेषभुजाभ्यां प्रज्वालितं खर्वं कृष्णं ...पूरितमुखं महारौद्रं त्रिकायात्मकं पञ्चबुद्धमुकुटिनं नरमुण्डमालाभरणं भवभयङ्करं ...।”

(साधनमाला, साधन सं० 312, पृ० 597-98)

### ( 3 ) योगाम्बर

निष्पन्नयोगावली में ये कृष्णवर्णी, त्रिनेत्री, त्रिमुखी एवं षड्भुजी हैं। मूल मुख कृष्णवर्णी, दक्षिण मुख सितवर्णी एवं वाममुख रक्तवर्णी है। इनके हाथों में वज्र, घण्टा, स्तन, बाण, कमल एवं धनुष हैं। ये व्याघ्रचर्म एवं सर्पाभूषणों से विभूषित हैं। इनके मुकुट पर पञ्चबुद्ध अंकित हैं।

“...भगवान् योगाम्बरः कृष्णः कृष्णसितरक्तमूलसव्यवाममुखत्रयः प्रतिमुखं त्रिनेत्रः षण्मुद्रो ललाटतटस्थपञ्चकपालमाली ...धर्चन्द्रविश्ववज्राक्रान्तकृष्णजटाजूटस्फुरत्पञ्चतथागत-मुकुटी पश्चात्स्खलद्वयाघ्रचर्माम्बरः षड्भुजो वज्रवज्रघण्टाभृद्भुजाभ्यां कृष्णां शुक्लां वा ज्ञान-डाकिनीं पीतभुजङ्गभूषणामालिङ्गितः सव्याभ्यां स्तनबाणौ वामाभ्यामब्जभाजनधनुषी ...।”

(निष्पन्नयोगावली, पृ० 32)

### ( 4 ) वज्रामृत

निष्पन्नयोगावली में ये त्रिमुखी एवं षड्भुजी हैं। इनका मूल मुख श्यामवर्णी, दक्षिण मुख सितवर्णी तथा वाम मुख रक्तवर्णी है। ये मेखला(कडा), केयूर आदि विचित्र आभूषणों तथा नाना प्रकार के वस्त्रों से अलङ्कृत हैं। ये अपने दो हाथ में वज्र, घण्टा तथा अपनी प्रज्ञा से आलिङ्गित हैं। ये दायें हाथों में चक्र एवं खड्ग(असि) तथा बायें हाथों में पाश एवं अंकुश धारण किये हैं। इनके मुकुट पर पञ्चबुद्ध अंकित हैं।

“श्रीवज्रामृतः सत्त्वपर्यङ्की प्रियङ्गुश्यामः सितरक्तमूलसव्यवाममुखत्रयो विचित्र-कटककेयूरादिभिर्वस्त्रैश्चालङ्कृतः षड्भुजः सवज्रघण्टाभुजयुग्मालिङ्गितस्वाभप्रज्ञः सव्याभ्यां चक्रासी वामाभ्यां पाशाङ्कुशौ विभ्राणो रक्तप्रभामण्डलः ...चक्रेशः प्रतिबिम्बितपञ्चतथागत-वज्राङ्गितविचित्ररत्नमुकुटी ।” (निष्पन्नयोगावली, पृ० 19)

### स्वतन्त्रदेवता

पञ्चबुद्धों से असम्बद्ध स्वतन्त्र देवताओं के मुकुट पर पञ्चबुद्धों की आकृति अंकित नहीं होती है। उनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं—

#### ( 1 ) त्रैलोक्यविजय

साधनमाला (साधन सं० 262) में ये नीलवर्णी, चतुर्मुखी एवं अष्टभुजी हैं। इनका बायां पैर महेश्वर के मस्तक पर तथा दायां पैर गौरी के वक्षस्थल पर है। चतुर्मुख—इनके



प्रथम मुख से क्रोध, दायें मुख से रौद्र, बायें मुख से बीभत्स तथा पृष्ठ मुख से वीरता की अभिव्यक्ति होती है।

इनके दो हाथ—वज्र एवं घण्टा युक्त वज्रहंकार मुद्रा में हैं।

दायें तीन हाथों में खट्वाङ्ग, अंकुश एवं बाण तथा बायें तीन हाथों में धनुष, पाश एवं वज्र हैं। ये विचित्र वस्त्राभूषणों से विभूषित हैं।

“त्रैलोक्यविजयभट्टारकं नीलं चतुर्मुखं अष्टभुजं प्रथममुखं क्रोधशृङ्गारं दक्षिणं रौद्रं वामं बीभत्सं पृष्ठं वीररसं द्वाभ्यां घण्टावज्रान्वितहस्ताभ्यां हृदि वज्रहंकारमुद्राधरं दक्षिणत्रिकरैः खट्वाङ्गाङ्कुशबाणधरं वामत्रिकरैश्चापपाशवज्रधरं प्रत्यालीढेन वामपादा-क्रान्तमहेश्वरमस्तकं दक्षिणपादावष्टब्धगौरीस्तनयुगलं ...।” (साधनमाला, साधन सं० 262, पृ० 511), (इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, भट्टाचार्य, पृ० 146)

## (2) परमाश्व

साधनमाला (साधन सं० 261) में ये रक्तवर्णी, चतुर्मुखी, त्रिनेत्री एवं अष्टभुजी हैं। इनका पहला मुख क्रोध, दूसरा दक्षिणमुख रौद्र, तीसरा वाममुख ब्रह्म तथा चौथा मुख हरिताश्व स्वरूप है। (1) ये अपने दायें हाथ में त्रिपताका लिये विश्ववज्र सहित हैं। (2) बायें हाथ में दण्ड(खेटक) लिए विश्वपद्म सहित हैं। (3) पुनः दायें हाथ में त्रिपताका तथा (4) पुनः बायें हाथ में शक्ति धारण किये हैं। (5) पुनः दायें हाथों में खड्ग एवं बाण तथा (6) शेष बायें हाथों में दण्ड एवं धनुष लिए प्रत्यालीढ मुद्रा में हैं।

“परमाश्वं रक्तं चतुर्मुखं अष्टभुजं चतुश्चरणं प्रथममुखं क्रोधशृङ्गारं त्रिलोचनं दक्षिणं रौद्रं वामं ब्रह्ममुखं मूर्ध्नि ललितोद्भूलितौष्ठं हरिताश्वमुखं एकेन दक्षिणत्रिपताकाधरकरेण विश्ववज्रसहितेनोत्तिष्ठाभिनयं कुर्वन्तं एकेन वामखेटकहस्तेन विश्वपद्मं धारयन्तं पुनर्दक्षिण-त्रिपताका ...पुनर्वामकरेण शक्तिं धारयन्तं पुनर्दक्षिणकराभ्यां खड्गं बाणं च अवशिष्ट-वामकराभ्यां दण्डं चापं च धारयन्तं प्रत्यालीढेन ...।” (साधनमाला, साधन सं० 261, पृ० 510), (इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, भट्टाचार्य, पृ० 147)

## (3) वज्रज्वालानलार्क

साधनमाला (साधन सं० 263) में ये नीलवर्णी, चतुर्मुखी एवं अष्टभुजी हैं। इनके दायें चार हाथों में वज्र, खड्ग, चक्र एवं बाण तथा बायें चार हाथों में घण्टा, चाप, पाश एवं खट्वाङ्ग हैं। ये प्रत्यालीढ आसन में विभिन्न आभरणों से विभूषित हैं।



“वज्रज्वालानलार्क नीलवर्ण ज्वालामालाकुलप्रभं चतुर्मुखमष्टभुजं शृङ्गारवीर-  
बीभत्सकरुणरसान्वितचतुर्मुखं चतुर्भिर्दक्षिणकरैर्वज्रखड्गचक्रबाणधरं चतुर्वामकरैर्घण्टाचाप-  
पाशखट्वाङ्गासक्तविचित्रपताकधरं ज्वलदनलकपिलशिखाकलापं अतिभीषणमहाहिवलय-  
कङ्कणकटिसूत्रनूपुरकण्ठिकाकुण्डलमुकुटाभरणम्...” (साधनमाला, साधन सं० 263, पृ० 512)

#### (4) वज्रहूँकार

साधनमाला (साधन सं० 251) में वज्रहूँकार का एक ही साधन मिलता है। ये कृष्णवर्णी एवं द्विभुजी हैं। ये प्रलय रूपी अग्निसदृश अतिरौद्र, कृष्णवर्णी एवं महाद्युति (कान्ति) युक्त हैं। इनसे उद्भूत महारौद्र वज्रहूँकार है तथा रौद्र रूप में अट्टहास करता हुआ त्रिधातु का क्षेप(विक्षेप) करता है। ये अपने हाथों में वज्र एवं घण्टा लिए प्रत्यालीढ, वज्रहूँकारमुद्रा में स्थित हैं।

“.....सूर्ये हूँकारं ज्वलद्भास्वरम् ।  
कल्पानलमिवात्युग्रं कृष्णवर्णं महाद्युतिम् ॥  
तदुत्पन्नं महारौद्रं वज्रहूँकारसंज्ञकम् ।  
अट्टहासं महारौद्रं क्षेपयन्तं त्रिधातुकम् ॥  
घण्टावज्रप्रयोगेण मुद्राबद्धकरद्वयम् ।  
प्रत्यालीढपदेनैव भैरवाक्रान्तभीकरम् ॥”

(साधनमाला, साधन सं० 257, पृ० 506),

(इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, भट्टाचार्य, पृ० 143-44)

#### (5) विघ्नान्तक

साधनमाला (साधन सं० 281) में ये नीलवर्णी, एकमुखी एवं द्विभुजी हैं। इनके बायें हाथ में तर्जनी पाश तथा दायें हाथ में वज्र हैं। ये ऊपर उठे पीले केश में भयानक दिखाई देते हैं।

“...विघ्नान्तकं विचिन्तयेत् आत्मानं प्रत्यालीढपदस्थितं एकमुखं द्विभुजं नीलवर्णं  
वामकरेण तर्जनीकापाशं दक्षिणकरेणोद्यतवज्रं भयानकं पिङ्गलोर्द्धकेशम् ...।” (साधनमाला,  
साधन सं० 281, पृ० 358), (इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, भट्टाचार्य, पृ० 142-43)

# बौद्धतन्त्रों में सिद्धियाँ : स्वरूप एवं भेद

—बनारसी लाल—

[ “सिद्धि” बौद्ध एवं बौद्धेतर तन्त्रों का एक प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। प्रस्तुत लेख में बौद्ध तन्त्रों में वर्णित सिद्धियों के स्वरूप एवं भेदों पर विचार के प्रसंग में प्रथमतः इनके पृष्ठभूमि में बौद्ध साहित्य में आए कुछ शब्दों जैसे अभिज्ञा, प्रातिहार्य, वशिता, ऐश्वर्य इत्यादि का विमर्श किया गया है। तत्पश्चात् ‘सिद्धि’ शब्द का निर्वचन करते हुए सिद्धियों के भेदोपभेदों यथा खड्ग आदि एवं अणिमा आदि आठ सामान्य-सिद्धि तथा लोकोत्तर-सिद्धि की चर्चा की गई है। इस प्रसंग में बौद्धतन्त्रों में परिलक्षित इनके स्वरूप तथा सिद्धि में सहायक तत्त्वों पर भी प्रकाश डाला गया है। ]

बौद्धतन्त्रों के सन्दर्भ में ‘सिद्धि’ एवं उसके तात्पर्य का विवेचन करें, इससे पूर्व इसकी पृष्ठभूमि में कुछ शब्दों जैसे अभिज्ञा, वशिता, प्रातिहार्य, ऐश्वर्य एवं ऋद्धि आदि पर संक्षेप में दृष्टि डालना उपयुक्त होगा। क्योंकि, इन शब्दों का सन्दर्भ ‘सिद्धि’ शब्द के भाव को अभिव्यक्त करने में सार्थक होगा। प्रायः तन्त्र ग्रन्थों में इनका साथ-साथ ही उल्लेख हुआ है।<sup>1</sup>

बौद्धधर्म का उद्भव दुःख एवं दुःख के निवारण के उपाय के परिप्रेक्ष्य में हुआ। कुमार सिद्धार्थ ने जगत् का दुःख देखा। दुःखों को देखकर वह व्याकुल हुए और उसके निवृत्ति के उपाय को खोजने निकल पड़े। उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग कर अभिनिष्क्रमण किया। अति दुष्कर तपस्याओं के पश्चात् मध्यम मार्ग का अवलम्बन कर उन्होंने दुःख के निवृत्ति का मार्ग खोजा और प्राणिमात्र के कल्याण के लिए इसका पहली बार प्रकाशन वाराणसी के नजदीक ऋषिपत्तन, मृगदाव, सारनाथ में पञ्चवर्गीय भिक्षुओं के समक्ष किया। इसे प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन कहा जाता है, जिसमें उन्होंने चार आर्यसत्यों—दुःखसत्य, समुदयसत्य, निरोधसत्य और मार्गसत्य का प्रकाशन किया। इसी क्रम में आगे उन्होंने आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग एवं प्रतीत्यसमुत्पाद की देशना दी।

---

1. अन्यापि दिव्यचक्षुरादिलक्षणा अणिमादयो वा कायैश्वर्यादयो वा लौकिकलोकोत्तरसिद्धयः। (व० ति० टी०, पृ० 74), “प्राप्तोत्यष्टौ सिद्धीः पञ्चाभिज्ञास्तथाष्टगुणान्” (त० सं० सि०, शिष्यानु० 10, पृ० 54); “अणिमादि गुणाश्चापि महाभिज्ञादयस्तथा” (ज्ञानो०, पृ० 9)।



समाधि के पथ पर आरूढ़ साधक को अनेक सिद्धियाँ स्वतः प्राप्त हो जाती हैं। पालि साहित्य में इन ऋद्धि-सिद्धियों को समाधि के लिए विघ्न स्वरूप माने गए हैं। क्योंकि इनके आकर्षण में कतिपय साधकों का मन इतना रम जाता है कि वह विपश्यना ज्ञान प्राप्ति के लिए उपेक्षा कर बैठते हैं। इन दस योगान्तरायकों में ऋद्धि भी एक है।

कहा है—

आवासो च कुलं लाभो गणो कम्मं च पंचमम् ।

अद्धानं जाति आबाधो गन्थो इद्धी ति ते दसा ति ॥

(विसुद्धिमग्ग, पृ० 61)

पालि साहित्य से विदित होता है कि बुद्ध के जीवन काल में ही अनेक प्रकार के रहस्यात्मक, यौगिक विद्या एवं शक्तियों का प्रचलन था। ब्रह्मजालसुत्त में भगवान् ने इस प्रकार के रहस्यात्मक विद्याओं एवं ऋद्धियों के प्रदर्शन की निन्दा की है। विनयपिटक में भी दो कथानक आए हैं, एक पिंडोल भारद्वाज का और दूसरा गृहस्थ परिवार मेडक का। राजगृह में जब एक श्रेष्ठी ने महार्घ चन्दन काष्ठ का एक पात्र बनाकर उसे अनेक बाँसों को जोड़कर उसके सिरे पर उसे टांग दिया और यह घोषणा कर दी कि कोई भी श्रमण या ब्राह्मण अपने ऋद्धिबल से उसे उतार कर ले जावे। पूर्णकश्यप, अजितकेश कंबली, संजयवेदुली पुत्र आदि अनेक श्रमणों एवं ब्राह्मणों ने इसके लिए प्रयत्न किया, परन्तु वे असमर्थ रहे। उसी समय मध्याह्न में मोद्गल्यायन एवं पिंडोल भारद्वाज पिण्डपात के पश्चात् वहाँ पहुँचे। तब भारद्वाज ने अपने ऋद्धिबल से आकाश में ऊपर उठकर बाँस के सिरे से चन्दन काष्ठ के पात्र को निकाल कर राजगृह की तीन परिक्रमा कर गृहपति श्रेष्ठी के निवेदन पर गृहपति के घर के छत पर उतरे। तब समस्त राजगृह में इसकी चर्चा होने लगी। जब इसकी सूचना शास्ता के समक्ष पहुँची तो भगवान् ने भारद्वाज से पूछा कि क्या यह सत्य घटना है। उनके हाँ कहने पर भगवान् ने काष्ठ पात्र के लिए इस प्रकार के ऋद्धि प्रदर्शन की निन्दा की और श्रावकों (शिष्यों) के लिए यह नियम बना दिया कि कोई भी गृहस्थों के समक्ष उत्तर-मनुष्य-धर्म और ऋद्धि चमत्कार का प्रदर्शन नहीं करेगा तथा भिक्षा के लिए चन्दन, सुवर्ण, रजत, काष्ठ आदि के पात्र का निषेध किया; मात्र लोह एवं मिट्टी के पात्र रखने का नियम बनाया।

जब इस नियम का अन्य श्रमणों को पता चला तो वह बुद्ध एवं उनके श्रावकों से ऋद्धि-प्रातिहार्य की बात करने लगे। तब राजा बिम्बिसार ने भगवान् के पास जाकर



निवेदन किया कि श्रमण आप एवं आपके श्रावकों के साथ ऋद्धि-प्रातिहार्य करना चाहते हैं जबकि आपने श्रावकों के लिए ऋद्धि-प्रदर्शन न करने का नियम बना दिया है। तब भगवान् ने राजा को बतलाया कि यह नियम केवल श्रावकों के लिए हैं, वह स्वयं ऋद्धि-प्रातिहार्य का प्रदर्शन करेंगे। भगवान् ने उदाहरण देते हुए राजा को बतलाया कि जिस प्रकार राज-उद्यान में किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा फल तोड़ने पर उसे दण्डित करने का नियम बना है परन्तु यदि राजा स्वयं फल तोड़े तो वह नियम उस पर लागू नहीं होता। इसी प्रकार मेरा भी यह नियम श्रावकों के लिए बना है, मैं स्वयं ऋद्धि प्रदर्शन कर सकता हूँ। तब उसके चार माह बाद श्रावस्ती में भगवान् बुद्ध एवं श्रमणों का ऋद्धि प्रदर्शन आयोजित हुआ जहाँ बुद्ध ने अनेक प्रकार के यमक-प्रातिहार्य<sup>1</sup> का प्रदर्शन किया<sup>2</sup>।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि बुद्ध के काल से पूर्व ही अनेक प्रकार के गुह्यविद्याओं एवं शक्तियों से युक्त लोग थे। भगवान् बुद्ध स्वयं भी दशबल एवं षडभिज्ञ नाम से जाने जाते थे।

ऋद्धि एवं सिद्धि पर विचार करने से पूर्व अभिज्ञा एवं वशिता आदि पर भी विचार करना अपेक्षित होगा, क्योंकि पालि साहित्य के साथ-साथ महायानी एवं तान्त्रिक साहित्य में भी इनका विशद प्रस्तुतीकरण हुआ है। अभिज्ञाएं छह हैं। तन्त्रों में प्रायः पाँच प्रकार की अभिज्ञाओं का ही उल्लेख किया है, कहीं-कहीं तीन ही अभिज्ञा वर्णित हैं। अमरकोश के अनुसार छह प्रकार की अभिज्ञाएं निम्नलिखित हैं—दिव्य चक्षुःश्रोत, परचित्तज्ञान, पूर्वनिवासानुस्मृति, आत्मज्ञान, वियद्गमन और कायव्यूहसिद्धि<sup>3</sup>। वहीं बौद्ध तन्त्रों में पाँच अभिज्ञाओं का प्रायः उल्लेख हुआ है, वे हैं—<sup>4</sup>दिव्यचक्षु, दिव्यश्रोत, परचित्तज्ञान, पूर्वनिवासानुस्मृति और ऋद्धिविज्ञान (आकाश ऋद्धि)<sup>5</sup>।

- 
1. यमक प्रातिहार्य का तात्पर्य है जैसे शरीर के ऊपरी भाग से अग्नि पुञ्ज तथा निचले भाग से जल की धारा, दाहिने कान से अग्नि तथा बाएँ कान से जल का स्रोत निकालना आदि।
  2. बुद्धचर्या-राहुल सांकृत्यायन, पृ० 76-84
  3. दिव्यचक्षुःश्रोतम्, परचित्तज्ञानम्, पूर्वनिवासानुस्मृति, आत्मज्ञानम्, वियद्गमनम् कायव्यूहसिद्धिश्चेति षट् अभितो ज्ञायमानानि यस्य सः। षट्सु दानशीलक्षान्तिवीर्यध्यानप्रज्ञासु अभिज्ञा आद्यं ज्ञानमस्येति वा। (1.1.13)
  4. एवं पञ्चाभिज्ञा बोधिसत्त्वानां दिव्यं चक्षुः दिव्यं श्रोतं, परचित्तज्ञानम्, पूर्वनिवासानुस्मृति आकाशऋद्धिश्चेति। (वि० प्र०, III, पृ० 149), द्रष्टव्य-त० सं० टी०, पृ० 27; षडङ्गयोगटिप्पणी, पृ० 109
  5. तत्त्वज्ञानसंसिद्धि टीका में इसे आकाशगमन कहा गया है, पृ० 54

छह अभिज्ञाओं की गणना में इन पाँच अभिज्ञाओं के अतिरिक्त आस्रवक्षयज्ञान की भी गणना की जाती है। वहीं तीन प्रकार की अभिज्ञाओं में ऋद्धि, परचित्तज्ञान और आस्रवक्षय ज्ञान हैं<sup>1</sup>, वहीं सहजसिद्धि में कुछ भिन्न प्रकार की अभिज्ञाओं जैसे दिव्यचक्षु, दिव्यश्रोत के साथ दिव्यस्पर्श, दिव्यरस और दिव्यमनोमय का भी उल्लेख है<sup>2</sup>

अर्थ की दृष्टि से सरल होने से बौद्धतन्त्रों में षडभिज्ञाओं के स्वरूप का विशेष विवेचन नहीं मिलता है। योगिनीसंचारतन्त्र की व्याख्या में किञ्चित् निर्देश है। जैसा कि दिव्यश्रोत के स्वरूप के सम्बन्ध में कहा है—योगिनियों के प्रसाद से दूर के शब्द भी नजदीक की तरह तथा नजदीक के शब्द दूर की तरह सुनाई देते हैं और दिव्यचक्षु का तात्पर्य है कोई भी आवरण में पड़े वस्तु को क्षण भर में देख लेना जैसे सन्निकट ही पड़ा हो।<sup>3</sup> तीसरी अभिज्ञा परचित्तज्ञान है, जिसका अर्थ है उस व्यक्ति में ऐसा शक्ति है जो दूसरों के चित्त के तर्क वितर्क को जान लेता है। सूत्रों में प्रायः देखते हैं कि भगवान् प्रश्नकर्ता के मन के भावों को जान लेता है और उसी का सन्दर्भ लेकर भगवान् उपदेश देते हैं। इसलिए बुद्ध के समक्ष जिस स्तर का पात्र बैठा हो, उसी के अनुरूप धर्मोपदेश करते हुए वे दिखाई पड़ते हैं। आचार्य हरिभद्र ने अपने आलोक व्याख्या में कहा है—

यथा यथार्थसंपत्तिर्भव्यानामुपपत्त्यते ।

तथा तथावभासोऽपि भूयादस्मत्समाश्रयात् ॥ (अ० प्र०, पृ० 339)

चौथी अभिज्ञा पूर्वनिवासानुस्मृति है। इसका तात्पर्य है कि वह व्यक्ति अपने पूर्वजन्मों में किन-किन योनियों में उत्पन्न हुआ और कहाँ-कहाँ निवास किये उन सभी का स्मरण रहना। पाँचवीं अभिज्ञा है आकाश-ऋद्धि या ऋद्धि विज्ञान अर्थात् ऋद्धि का ज्ञानी। छठी अभिज्ञा आस्रवक्षयज्ञान है अर्थात् जन्मजन्मान्तरों के कारक आस्रवों (क्लेशों) के क्षय होने का ज्ञान होना।

इसी क्रम में दूसरा शब्द है वशिता, जैसे कि इस शब्द से ही द्योतित होता है कि इस शक्ति से सम्पन्न व्यक्ति, अनेक वस्तुओं को अपने वश में रखता है। विशेष रूप से

1. तिस्रोऽभिज्ञः-ऋद्धिः परचित्तज्ञानं आस्रवक्षयज्ञानं च । (महामायातन्त्र टीका, पृ० 23)

2. पञ्चाभिज्ञो-दिव्यचक्षुदिव्यश्रोतो दिव्यस्पर्शो दिव्यरसो दिव्यमनोमयश्चेति । (सहजसिद्धि-गुह्यादि अष्टसिद्धि संग्रह, पृ० 191)

3. योगिनीनां प्रसादात् सन्निहितानिव शब्दान् दूरतः शृणोति । चक्षुर्भ्यां क्षणात् पश्यतीति व्यवहितमपि रूपं सन्निहितमिव पश्यति । (योगिनीसञ्चारतन्त्रम्, पृ० 141)



बोधिसत्त्व दस प्रकार के तत्त्वों को अपने वश में रखते हैं। अतः इन्हें दश बोधिसत्त्व वशिता भी कहा जाता है। ये हैं—आयुवशिता, कर्मवशिता, परिष्कारवशिता, अधिमुक्ति-वशिता, प्रणिधानवशिता, ऋद्धिवशिता, उपपत्तिवशिता, धर्मवशिता, चित्तवशिता और ज्ञानवशिता<sup>1</sup>। यह वशिता बोधिसत्त्वों को अपने संभारों के पूर्ण होने पर प्राप्त होती है। इस सन्दर्भ में चार वैशारद्यों की भी समीक्षा होनी चाहिए।

तीसरा शब्द है प्रातिहार्य, जिसका अत्यन्त बहुलता पूर्वक स्थविरवादी साहित्य से तन्त्र साहित्य तक उल्लेख मिलता है। ये प्रातिहार्य तीन प्रकार के हैं—ऋद्धि प्रातिहार्य, आदेशना प्रातिहार्य और अनुशासनी प्रातिहार्य<sup>2</sup>। महामायातन्त्रटीका में इस शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है कि—प्रति प्रति ह्यन्ते आवर्ज्यन्तेऽनेन सत्त्वा इति प्रतिहार्यम्, स्वार्थेऽण् प्रातिहार्यम्<sup>3</sup>। (म० त० टी०, पृ० 23)

बौद्धतन्त्र ग्रन्थों में इसी प्रकार ऐश्वर्य शब्द का भी उल्लेख आया है जैसे “कायैश्वर्यादयो” (व० ति० टी०, पृ० 74) “अष्टैश्वर्येण भगवान् सदा सुखपदे स्थितः” (गु० स० प्र०, पृ० 13)। इसका सन्दर्भ भी प्रायः सिद्धि एवं अभिज्ञा आदि के साथ ही हुआ है<sup>4</sup>। यह ऐश्वर्य तीन प्रकार के हैं, यथा—कायैश्वर्य, वागैश्वर्य एवं चित्तैश्वर्य<sup>4</sup>। ऋद्धि आदि के साथ ये आठ हैं। भगवान् के छह विशेषणों में भी ऐश्वर्य का उल्लेख है। यथा—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य रूपस्य यशसः श्रियः ।

ज्ञानस्याथ प्रयत्नस्य षण्णां भग इति श्रुतिः ॥ (अ० प्र०, पृ० 272)

1. बोधिसत्त्ववशितादश भवन्ति—आयुर्वशिता, कर्मवशिता, परिष्कारवशिता, अधिमुक्तिवशिता, प्रणिधानवशिता, ऋद्धिवशिता, उपपत्तिवशिता, धर्मवशिता, चित्तवशिता, ज्ञानवशिता चेति। (वि० प्र०, III, पृ० 76); इनमें किञ्चित् नामभेद प्रतीत होता है। नागार्जुन रचित धर्मसंग्रह में उपपत्ति के स्थान पर जन्मवशिता है। (म० सू० सं०, पृ० 333); तथा षडङ्गयोगटिप्पणी में अधिमुक्ति के स्थान पर विमुक्तिवशिता है। (ष० यो० टि०, पृ० 106)
2. धर्मसंग्रह - म० सू० सं०, भाग-1, पृ० 339, महामायातन्त्र टीका, पृ० 23
3. अन्या अपि दिव्यचक्षुरादिलक्षणा अणिमादयो वा कायैश्वर्यादयो वा लौकिकलोकोत्तराः सिद्धयः। (व० ति० टी०, पृ० 74),  
किं पुनः सिद्धयः क्षुद्राः खड्गवेतालाकादयः ।  
अणिमादि गुणाश्चापि महाभिज्ञादयस्तथा ॥ (ज्ञानोदय, पृ० 9)
4. कायैश्वर्यं वागैश्वर्यं चित्तैश्वर्यं तथैव च ।  
ऋद्धिः सर्वगतैश्वर्यं इच्छा कर्ता गुणाष्टमः ॥ (गु० स० प्र०, पृ० 211)



## सिद्धि

‘सिद्धि’ शब्द ‘सिध्’ धातु से क्तिन् प्रत्यय से बना है। जिसका अर्थ है निष्पन्नता, पूर्णता अर्थात् पूर्ण होना। सामान्यतः अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए सिद्धियाँ प्राप्त की जाती हैं। सिद्धियाँ साधना जन्य होती हैं। पूर्व जन्मों में जितना पुण्य किए रहता है और इस जन्म में शील, समय और संवर के पालन से सिद्धियाँ शीघ्र प्राप्ति में सहायक होती हैं। योगसूत्र के अनुसार सिद्धियाँ जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि जन्य होती हैं। अनेक दुष्कर साधनाओं के पश्चात् सिद्धि प्राप्त होती है। जिन्होंने सिद्धि प्राप्त कर लिया ऐसे पुरुष सिद्ध कहलाते हैं। सिद्धियों को सिद्ध करने के लिए कई विध गुह्य-अनुष्ठान भी सम्पन्न किए जाते हैं। भारतीय परम्परा में विशेषकर बौद्ध परम्परा में चित्त की प्रवृत्तियों पर अधिक बल दिया गया है। अतः चित्त को एकाग्र कर उसकी वृत्तियों को निरुद्ध कर एक ही दिशा में उन्मुख करने से अर्थात् चित्त को नियन्त्रण में करने से अनेक प्रकार की प्रभुत्व लाभ स्वयमेव हो जाती हैं।

सिद्धि का सामान्य अर्थ करते हुए महामायातन्त्र टीका गुणवती में कहा है “सिद्धिर्निष्पत्तिः” (पृ० 20) अर्थात् निष्पन्न होना। वहीं दूसरे स्थल पर इसे “सिद्धि-रनुष्ठानम्” (पृ० 24) अर्थात् सिद्धि का अर्थ है अनुष्ठान या अनुष्ठित होना। सेकोदेश टीका में तीनों धातुओं (लोकों) में ईश्वरत्व अर्थात् प्रभुत्व प्राप्त होने के अर्थ में सिद्धि की व्याख्या की है।<sup>1</sup>

सिद्धि शब्द का भावार्थ बतलाते हुए चक्रसंवरतन्त्र की विवृति में कहा है कि सिद्ध होता है अर्थात् साक्षात्कार होता है वही सिद्धि है।<sup>2</sup> यहाँ सिद्धि का विशेष भाव सम्यक्सम्बोधि से गृहीत किया है। इस सन्दर्भ में लौकिक सिद्धि का तात्पर्य है अकनिष्ठ भुवन (लोक) पर्यन्त आधिपत्य और लोकोत्तरसिद्धि से तात्पर्य है वासनाओं सहित सभी क्लेशों एवं ज्ञेय आवरणों का प्रहाण कर द्वादश भूमि की प्राप्ति अर्थात् सम्यक्सम्बोधि का लाभ होना।<sup>3</sup> सम्बोधि ही सम्यक् सिद्धि है, जिसके स्मरण मात्र से तीनों लोक कांप उठते

1. सिद्धिस्त्रैधातुकेश्वरत्वम्। (से० टी०, पृ० 47)

2. सिद्धयति साक्षात् भवतीति सिद्धिः सम्यक्सम्बोधिः। (च० सं० वि०, पृ० 80)

3. लौकिकसिद्धिरित्यकनिष्ठभुवनपर्यन्ताधिपत्यम्। उत्तरसिद्धिरिति सवासनसर्वक्लेशज्ञेयसमापत्यावरण-प्रहाणितो द्वादशभूमिप्रतिलम्बेन सम्यक्सम्बुद्धत्वम्। (से० टी०, पृ० 3)

हैं।<sup>1</sup> सम्बोधि से जोड़ते हुए योगिनीसञ्चारतन्त्र व्याख्या में सिद्धि को “सिद्धिरिति हेरुकपदप्राप्तिरूपा” (पृ० 86) एवं “सिद्धिरिति श्रीहेरुकपदप्राप्तिलक्षणे” (पृ० 140) कहा है। वहीं इसे “सिद्धिमिति कायविवेकलक्षणाम्” (पृ० 42) भी कहा है।

### सिद्धियों के भेद

बौद्धतन्त्रों में मुख्यतः सिद्धियों का दो ही विभाजन किया है लौकिक एवं लोकोत्तर सिद्धि<sup>2</sup>। इसे सामान्य एवं उत्तमसिद्धि भी कहा गया है। अन्तर्धानादि सिद्धि सामान्यसिद्धि है तथा बुद्धत्व साधन उत्तमसिद्धि—

अन्तर्धानादयः सिद्धाः सामान्या इति कीर्तिता ।

सिद्धिरुत्तममित्याहुर्बुद्धा बुद्धत्वसाधनम् ॥ (गु० सं० त० 18/133)

वहीं विमलप्रभा में महामुद्रासिद्धि एवं लौकिक सिद्धि भेद से भी सिद्धियों के दो भेद प्रदर्शित हैं।<sup>3</sup> भोट परम्परा में भी सामान्यसिद्धि एवं परमसिद्धि भेद से दो ही प्रकार की सिद्धि बतलाए गए हैं। खड्ग आदि सिद्धि को सामान्य तथा बुद्धत्व साधन को परमसिद्धि की श्रेणी में रखा गया है।

सिद्धियों का एक दूसरे प्रकार का विभाजन उत्तम, मध्यम, और अधम भेद से तीन प्रकार का किया गया है। तदनुसार अन्तर्धानसिद्धि उत्तम सिद्धि है, भूमि के अन्दर के निधियों का दर्शन होना मध्यम सिद्धि है और वशीकरण आदि सिद्धि अधम सिद्धि की श्रेणी में रखे गए हैं।<sup>4</sup> आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प में भी उत्तम, मध्यम और क्षुद्र भेद से तीन प्रकार के सिद्धियों की ओर संकेत किया है। ये तीनों भेद सामान्य-सिद्धि के प्रतीत होते हैं।

उत्तमे उत्तमा सिद्धिर्मध्यमे मध्य उदाहृतम् ।

कन्यसे क्षुद्रसिद्धिस्तु कथितं जिनवरैः पुरा ॥ (38.35)

1. यस्याश्च स्मरणमात्रेण त्रैलोक्यमपि कम्पते यतश्च सम्यक्सिद्धिः सम्बोधिरिति। (च० सं० वि०, भाग-2, पृ० 575)
2. सिद्धिरिति लौकिकलोकोत्तराकारा। (यो० सं० त०, पृ० 114)
3. विमलप्रभा, भाग-2, पृ० 7
4. त्रिविधा सिद्धिरुत्तममध्यमाधमाः। तन्त्रान्तर्धानमुत्तमा। भूगतनिधानदर्शनं मध्यमा। वशीकरणं अधमा सिद्धिरित्याह भगवान् समन्तभद्रः। (गु० सं० प्र०, पृ० 222)



कालचक्रतन्त्र टीका विमलप्रभा में भी सिद्धियों का तीन ही विभाजन मिलता है। तदनुसार ये तीन प्रकार की सिद्धि हैं—सामान्यसिद्धि, मध्यमसिद्धि और उत्तमसिद्धि। सामान्यसिद्धि में खड्ग एवं विद्याधरसिद्धि परिगणित हैं, वहीं मध्यमसिद्धि में कर्ममुद्रासिद्धि एवं ज्ञानमुद्रासिद्धि सम्मिलित हैं। परमज्ञानसिद्धि को उत्तमसिद्धि कहा गया है।<sup>1</sup>

बौद्धतन्त्रों में अनेक प्रकार की सिद्धियों का उल्लेख है, जैसे— वाक्सिद्धि, किङ्करसिद्धि, भद्रघटसिद्धि, राज्यसिद्धि, पातालसिद्धि, पौष्टिकसिद्धि, अभिचारसिद्धि, क्षुद्रसिद्धि, अन्तर्धानसिद्धि, मणि, मन्त्र, भूचर, खेचर, सम्यक्सिद्धि, रत्नसिद्धि, निधानसिद्धि, रससिद्धि, दिव्यसिद्धि, महामुद्रासिद्धि, वेतालसिद्धि, खड्गसिद्धि, परपुरप्रवेश, विद्याधर एवं परमज्ञानसिद्धि आदि। इनमें आठ सिद्धियों का विशेष रूप से उल्लेख है। आठ सिद्धियाँ भी दो प्रकार की हैं। एक वर्ग में खड्ग आदि तथा दूसरे वर्ग में अणिमादि सिद्धियाँ हैं।

### खड्गादि अष्ट-सिद्धियाँ

इन आठ सिद्धियों के नामों में बौद्धतन्त्र ग्रन्थों में पर्याप्त नाम भिन्नताएं भी हैं। वसन्ततिलक और उसकी टीका में खड्ग, अञ्जन, पादलेप, पाताल, यक्षाङ्गना, गुटिका, त्रैलोक्योदरवर्ती एवं सूतकसिद्धि ये आठ सिद्धियाँ उल्लिखित हैं।<sup>2</sup> तत्त्वज्ञानसंसिद्धि टीका में अञ्जन, गुटिका, पादुका, सिद्धौषधि, मणि, मन्त्र, यक्षस्त्री और परपुरप्रवेश नामक आठ सिद्धियाँ<sup>3</sup> तथा <sup>4</sup>साधनमाला में खड्ग, अञ्जन, पादलेप, पाताल, भूचर, खेचर, अन्तर्धान और रसरसायनसिद्धि उद्धृत हैं। वहीं भोट परम्परा के अनुसार आठ महासिद्धियों में खड्ग, गुटिका, अञ्जन, पादलेप, रसायन, खेचर, अन्तर्धान और पातालगमन का उल्लेख मिलता है। अचिन्त्याद्वयक्रमोपदेश में इन सिद्धियों के साथ-साथ दिव्य-सिद्धि का भी उल्लेख है।<sup>5</sup> उपर्युक्त सिद्धियों के दो विभाजन में ये सभी सिद्धियाँ लौकिक या सामान्य-सिद्धि के अन्तर्गत परिगणित हैं।

1. विमलप्रभा, भाग-III, पृ० 144

2. या खड्गाञ्जनपादलेपगुटिकापातालयक्षाङ्गना-  
स्त्रैलोक्योदरचारि(वर्ति) सूतकगताः कर्मानुगाः सिद्धयः। (वसन्ततिलक, 9.9, पृ० 74)

3. तत्त्वज्ञानसंसिद्धिटीका, पृ० 27

4. खड्गाञ्जनपादलेपान्तर्धानरसरसायनखेचरभूचरपातालसिद्धिप्रमुखाः सिद्धीः साधयेत्। (साधनमाला, भाग-2, पृ० 350)

5. अचिन्त्याद्वयक्रमोपदेश, श्लो० 42-43, (गुह्यादि-अष्टसिद्धिसंग्रह, पृ० 199)



### अणिमादि अष्ट-सिद्धियाँ

बौद्धेतर शैव-शाक्त तन्त्र के ग्रन्थों में अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायिक नामक इन आठ सिद्धियों का नामोल्लेख है। बौद्धतन्त्र ग्रन्थों में भी स्थान-स्थान पर अणिमा आदि सिद्धियों की चर्चा की है।<sup>1</sup> सुभाषित संग्रह नामक ग्रन्थ, अमृतकणिकोद्योत निबन्ध एवं चर्यामेलापकप्रदीप में किञ्चित् नाम भेद के साथ ये ही आठ सिद्धियाँ उद्धृत हैं। यथा—

सूक्ष्मरूपं लघुस्पर्शं व्याप्तिः सम्प्राप्तिरेव च ।

प्रकाशं चैव स्थैर्यं च वशित्वं कामावसानिकम् ॥<sup>2</sup>

तदनुसार ये आठ सिद्धियाँ हैं सूक्ष्मरूप अर्थात् अणिमा, लघुस्पर्श (लघिमा), व्याप्ति, सम्प्राप्ति, प्रकाश, स्थैर्य, वशित्व एवं कामावसानिक।

अणिमा अर्थात् अणु के समान सूक्ष्म हो जाना। लघिमा अर्थात् अत्यन्त हल्का होकर उठ जाना। महिमा अर्थात् पर्वत के समान विशाल हो जाना। प्राप्ति अर्थात् सभी इच्छित पदार्थों का नजदीक हो जाना, जैसे चन्द्रमा या अन्य ग्रह को छू लेना। प्राकाम्य अर्थात् किसी भी प्रकार की इच्छाओं का अवरोध न होना जैसे पृथ्वी, जल आदि में समा जाना या उससे बाहर निकल जाना, वशित्व अर्थात् पाँच महाभूत तत्त्वों पर अधिकार होना। ईशित्व अर्थात् वस्तुओं के निर्माण में प्रभुत्व तथा कामावसायित्व का अर्थ है वस्तुओं को अपनी इच्छानुसार आकार देना या बना देना या जैसा कल्पना करता है वैसा ही हो जाना।

बौद्धेतरतन्त्रों में अणिमादि आठ सिद्धियों के अतिरिक्त अठारह, चौबीस और चौतीस प्रकार की सिद्धियों का उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्त पुराण को उद्धृत करते हुए विनयतोष भट्टाचार्य ने अणिमादि आठ के अतिरिक्त दूरश्रवण, परकायप्रवेश, मनोयायित्व, सर्वज्ञत्व, वह्निस्तम्भ, जलस्तम्भ, चिरजीवित्व, वायुस्तम्भ, क्षुत्पिपासानिद्रास्तम्भ, कायव्यूहप्रवेश, वाक्सिद्धि, मृतानयन, प्राणाकर्षण, प्राणदान, इन्द्रियस्तम्भ, बुद्धिस्तम्भ आदि चौबीस सिद्धियों का विवरण दिया है।<sup>3</sup>

1. अन्याऽपि दिव्यचक्षुरादिलक्षणा अणिमादयो वा कायैश्वर्यादयो वा लौकिकलोकोत्तरसिद्धयः। (व० ति० टी०, पृ० 74), “अणिमादि गुणाश्चापि”—ज्ञानोदय, पृ० 9

2. चर्यामेलापकप्रदीप, पृ० 101, सु० सं०, पृ० 86-88; आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति, पृ० 172, 200

3. An Introduction to Buddhist Esoterism, pp. 83-84 and Sādhnamālā, Introduction, pp. LXXX-LXXXI.

बौद्धेतरतन्त्रों में भी सिद्धियों को उत्तम, मध्यम और अधम भेद से तीन भागों में विभाजित किया है। बृहत् तन्त्रसार<sup>1</sup> में कृष्णानन्द ने इन सिद्धियों का लक्षण बतलाते हुए कहा है जो चिन्तन मात्र से या इच्छा मात्र से बिना प्रयास के उस वस्तु को प्राप्त कर ले ऐसी सिद्धि उत्तमसिद्धि है। मृत्यु का हरण, पर-पुरप्रवेश, परकायप्रवेश, चराचर लोक में अव्याहत संचरण, दर्शन मात्र से रोग का अपहरण, विष का अपहरण आदि सिद्धियाँ मध्यम-सिद्धि है। प्रसिद्धि, वाहन, आभूषण का लाभ, दीर्घजीवन, राजा एवं उसके गणों को वश में करना, लोक को वश में करना, ऐश्वर्य की प्राप्ति, धन की प्राप्ति, पुत्र-दारा आदि की प्राप्ति आदि अधमसिद्धि हैं।

### सिद्धियों का स्वरूप

उपर्युक्त अष्ट सिद्धियों का क्या स्वरूप है या इनका क्या अर्थ है, इसका अधिक स्पष्टीकरण तन्त्र ग्रन्थों में नहीं मिलता है। इस सन्दर्भ में वसन्ततिलक टीका में किञ्चित् प्रकाश डाला गया है, तदनुसार निम्नलिखित स्वरूप प्रकट होता है।

### खड्गसिद्धि

खड्ग, चक्र, रत्न, वज्र और पद्म ये पाँच विद्याधर सिद्धि हैं। इनमें खड्ग प्रमुख एवं उपलक्षणात्मक होने से इन्हें खड्गसिद्धि कहा जाता है।<sup>2</sup> भट्टाचार्य के अनुसार खड्गसिद्धि का तात्पर्य है मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक युद्ध में खड्ग संचालन में प्रवीणता या कुशलता प्राप्त करना।<sup>3</sup> धर्मवीर भारती का मानना है कि खड्गसिद्धि सम्भवतः मन्त्रों से अभिषिक्त शस्त्र सिद्धि को कहते थे जो शत्रुओं को पराजित करने और बलि देने में काम आती थी।<sup>4</sup> वहीं कृष्णयमारितन्त्र टीका में खड्ग का तात्पर्य है षण्मुखकान्तबीजाकृष्ट लोह से घटित खड्ग, इसकी साधना कर्मयोग के द्वारा सम्पन्न होती है। वहाँ उसका योग भी प्रतिपादित है।<sup>5</sup> ज्ञानसिद्धि में कहा है क्लेश रूपी शत्रुओं का छेदन करने के कारण इसे

1. बृहत् तन्त्रसार, पृ० 343-344

2. खड्गचक्ररत्नवज्रपद्मविद्याधरसिद्धयः पञ्च, खड्गस्योपलक्षणत्वात्। (व० ति०, पृ० 74); खड्गधर इत्युपलक्षणम्। चक्ररत्नपद्मवज्राणि दत्त्वा पञ्चधा... एवं खड्गेनेत्युपलक्षणम्। (कृ० य० त० टी०, पृ० 56)

3. An Introduction to Buddhist Esoterism, p. 88-89

4. सिद्धसाहित्य, पृ० 228

5. कृष्णयमारितन्त्र, पृ० 21



खड्ग कहा जाता है।<sup>1</sup> लघुतन्त्र टीका में कहा है कि इसकी साधना महोदधि तट पर करनी चाहिए।<sup>2</sup>

### अञ्जनसिद्धि

अञ्जन सिद्धि का तात्पर्य है उस सिद्ध अञ्जन अर्थात् कज्जल से जिसे आँखों पर लगाने से प्रत्यक्ष तथा परोक्ष सत्ताओं को देखने की क्षमता आ जाती है या जिसे लगाने से भूमि में छिपे निधियों को देखने की क्षमता आती है। वसन्ततिलक की टीका में अञ्जन सिद्धि का स्वरूप बतलाते हुए कहा है, “यया नष्टच्छायो भवति साञ्जनसिद्धिः”<sup>3</sup>। सामान्यतः इसकी ऐसी व्याख्या की जा सकती है, जिस सिद्ध अञ्जन से छाया नष्ट हो जाती है वह सिद्धाञ्जन है। छाया से यहां आवरण अर्थ ग्रहण करना होगा। अर्थात् जिस सिद्ध अञ्जन को आँखों पर लगाने से जो भी वस्तु आवरण में हो या ढका हुआ हो वह उसे स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है। सिद्ध अञ्जन के भी तीन भेद हैं—ज्वलित कज्जलाञ्जन, धूमायित कज्जलाञ्जन और ऊष्मायित कज्जलाञ्जन। कृष्णयमारितन्त्र टीका में इन अञ्जनों के प्रभाव को बतलाते हुए कहा है ज्वलित कज्जल के अञ्जन लगाने से तीनों लोकों में विचरण करते हुए किसी को भी दिखलाई नहीं पड़ता। धूमायित कज्जल के अञ्जन लगाने से भूचर अर्थात् भूलोक में कहीं भी सञ्चरण करने की क्षमता प्राप्त होती है। ऊष्मायित कज्जल के अञ्जन लगाने से मनोहारी रूप के साथ-साथ सभी लोगों का प्रिय बनने की क्षमता आती है।<sup>4</sup> अञ्जनसिद्धि की साधना श्मशान में की जाती है।<sup>5</sup> इसकी संक्षिप्त साधना विधि कृष्णयमारितन्त्र में उल्लिखित है।<sup>6</sup>

### पादलेप

इसे पादलेप या पादुका सिद्धि भी कहा जाता है। इस सिद्धि के प्राप्त होने पर क्षण मात्र में ही हजारों योजन की दूरी को पार कर सकते हैं। वसन्ततिलक टीका में कहा है “यया क्षणमात्रेण योजनशतसहस्राण्याक्रमति सा पादलेपसिद्धिः”।<sup>7</sup> पादलेप से प्रतीत होता

1. खड्गः क्लेशारिसंच्छेदात्, ज्ञान० सि० (गुह्यादि०, पृ० 139)
2. महोदधितटे खड्गसिद्धिं साधयेत्। (ल० त० टी०, पृ० 111)
3. वसन्ततिलकटीका, पृ० 72
4. कृष्णयमारितन्त्रटीका, पृ० 20
5. श्मशाने अञ्जनसिद्धिं साधयेत्। (ल० त० टी०, पृ० 111)
6. कृष्णयमारितन्त्र 3.9-10
7. वसन्ततिलकटीका, पृ० 74



है कि यह एक ऐसा सिद्ध लेप है जिसे पावं में लेप करने से वह सिद्ध पुरुष क्षण मात्र में कहीं भी पहुँच सकता है। वहीं पादुका शब्द से प्रतीत होता है कि यह एक विशिष्ट पादत्राण या सिद्ध उपानाह है जिसे पहनने पर वह सिद्ध पुरुष अव्याहत रूप से निमिष मात्र में कहीं भी संचरण कर सकता है या ऐसा लेप जिसे लगाने से वह व्यक्ति अदृश्य होकर विचरण कर सकता है। कृष्णयमारितन्त्र में इसके साधना के सन्दर्भ में कहा है—

कुङ्कुमं गृह्य रक्तेन पादलेपं तु साधयेत् ।  
कर्मवज्रप्रयोगेण पादलेपेन सिद्ध्यति ॥ (पृ० 21)

### पातालसिद्धि

पातालसिद्धि का तात्पर्य प्रायः निम्न लोकों में गमन करने की शक्ति से है। वसन्ततिलक में कहा है। भूगत अर्थात् भूमि के मध्य स्थित निधियों को देखना या विलद्वारों से प्रवेश कर असुर कन्याओं को आकर्षित करने की सिद्धि पातालसिद्धि कहा जाता है “यया भूगतनिधानानि पश्यति, बिलद्वारे प्रविश्यासुरकन्यका आकर्षयति वा, सा पाताल-सिद्धिः”<sup>1</sup> महामायातन्त्रटीका में कहा है “पातालगमनं बिलप्रवेशः”<sup>2</sup>

### यक्षाङ्गनासिद्धि

यक्षाङ्गनासिद्धि का ही अपर नाम यक्षस्त्रीसिद्धि या यक्षिणी-सिद्धि भी है। इस सिद्धि के सिद्ध होने पर मनोहर रूप वाली यक्षिणियों का उपभोग की सिद्धि प्राप्त होती है। वसन्ततिलकटीका में कहा है—“यया मनोरमतरवपुषो यक्षिणीर्भुङ्क्ते सा यक्षाङ्गना-सिद्धिः”<sup>3</sup>

### त्रैलोक्योदरवर्तिनीसिद्धि

त्रैलोक्योदरवर्ती सिद्धि अर्थात् तीनों लोकों के मध्य में संचरण की सिद्धि। वसन्ततिलक टीका में कहा है जिससे शान्तिक आदि आठ कर्मों को सिद्ध किया जाता है वह त्रैलोक्योदरवर्ती सिद्धि है—“यया शान्त्यादीन्यष्टौ कर्माणि साधयति, सा त्रैलोक्योदर-वर्तिनीसिद्धिः”<sup>4</sup> इस सिद्धि के सम्बन्ध में अधिक विवरण नहीं मिलता है, सम्भवतः भूचर, खेचर एवं पातालगमन सिद्धियाँ इसके अन्तर्गत आती हों।

1. वसन्ततिलकटीका, पृ० 74
2. महामायातन्त्रटीका, पृ० 12
3. वसन्ततिलकटीका, पृ० 74
4. वसन्ततिलकटीका, पृ० 74

### गुटिकासिद्धि

यह सिद्धि गुलिका, गुडिका एवं गुटिका नाम से उल्लिखित मिलता है। ये सभी नाम पर्याय प्रतीत होते हैं। इस सिद्धि में गुटिका या वटिका को सिद्ध किया जाता है। इस सिद्धि गुटिका को मुख में डालने से सभी बुद्धक्षेत्रों में विचरण एवं बुद्धों से धर्म श्रवण कर सकते हैं। वसन्ततिलकटीका में कहा है—“यया मुखक्षिप्तया सर्वबुद्धक्षेत्राण्यटित्वा बुद्धेभ्यो धर्मं शृणोति सा गुटिकासिद्धिः”<sup>1</sup>

### सूतकसिद्धि

यह सिद्धि सूतकसिद्धि, रससिद्धि, रसायनसिद्धि, सिद्धौषधि इत्यादि नाम से बौद्धतन्त्रों में उल्लिखित मिलता है। इस सिद्धि का तात्पर्य है जो भी पाषाण एवं ताम्रादि धातु हैं उन्हें रसायन से सुवर्ण में परिवर्तित करने की सिद्धि “यया पाषाणताम्रादीन् सुवर्णीकरोति सा सूतकसिद्धिः”<sup>2</sup> लामा तारनाथ लिखते हैं कि सरहपा के शिष्य नागार्जुन रसायनसिद्धि में पारंगत थे। एक समय मगध के आस-पास भीषण आकाल पड़ा। लोग भूखों मरने लगे। भिक्षुओं के लिए भी भिक्षा अन्न मिलना कठिन हो गया था। उसी समय नागार्जुन नालन्दा महाविहार में आए और उन्होंने रसायनसिद्धि के बल पर भिक्षु संघ का अनेक वर्षों तक पोषण किया।<sup>3</sup> रसायन जब पूर्ण रूप से सिद्ध होने लगता है, उस समय उस द्रव्य में विशेष प्रकार के लक्षण दिखलाई देने लगते हैं। वह स्वयमेव उबलने लगता है और उबलते समय दक्षिणावर्त चक्र काटते घूमता है, उसमें श्रीवत्स आदि का आकार उभरने लगता है। रसायन की सिद्धि तीन तरह से होती है। पहला पुण्य आदि सम्भार के पूर्ण होने से जैसे सिद्धार्थ बुद्धत्व प्राप्त करने ही वाले थे, उनके पेय क्षीर में उक्त लक्षण दिखलाई पड़ा। दूसरा मन्त्र शक्ति से जैसे सिद्ध शृङ्गीपा ने अपना मूत्र डालकर बहुत से पानी को रसायन-द्रव्य बना डाला। तीसरा विभिन्न द्रव्यों के योग से जैसे आचार्य नागार्जुन ने तैयार किया।<sup>4</sup>

इसी प्रकार इन आठ सिद्धियों में अन्यान्य अनेक सिद्धियों के नाम मिलते हैं जैसे अन्तर्धानसिद्धि, भूचर, खेचर, मन्त्र, मणि आदि। इनके नाम से ही स्वरूप का किञ्चित् परिचय हो जाता है। ये सभी सामान्य एवं लौकिक सिद्धि के रूप में जाने जाते हैं।

1. वसन्ततिलकटीका, पृ० 74

2. वसन्ततिलकटीका, पृ० 74

3. भारत में बौद्धधर्म का इतिहास, पृ० 41

4. चौरासी सिद्धों का वृत्तान्त, पृ० 209



### लोकोत्तरसिद्धि

लौकिक सिद्धियों का फल भी लौकिक ही होता है। इनके सिद्ध होने पर भी योगियों को परम श्रेष्ठ पद बुद्धत्व की सिद्धि नहीं होती है<sup>1</sup>। अतः तत्त्वकाङ्क्षियों को लोकोत्तर श्रेष्ठ सिद्धि बुद्धत्व के लिए प्रयत्न करना चाहिए। डाकिनीजालसंवरहस्य नामक ग्रन्थ में कहा है—

त्रिविधा लौकिकीसिद्धिः क्षरसुखेन देशिता ।

अक्षरा तु वरा सिद्धिर्ज्ञातव्या तत्त्वकाङ्क्षणा ॥<sup>2</sup>

सम्यक्-सिद्धि ही सम्बोधि की सिद्धि है। इस सम्बोधि की विशेषता बतलाते हुए चक्रसंवरविवृति में कहा है जिसके स्मरण मात्र से तीनों लोक कांपने लगते हैं “यस्याश्च स्मरणमात्रेण त्रैलोक्यमपि कम्पते यतश्च सम्यक्सिद्धिः सम्बोधिरिति”<sup>3</sup>। लौकिक सिद्धियों के माध्यम से योगी केवल अकनिष्ठ भुवन तक ही अपना आधिपत्य रख सकता है। वहीं लोकोत्तरसिद्धि द्वारा सभी प्रकार के वासनाओं एवं क्लेशों तथा आवरणों का प्रहाण कर बारहवीं भूमि को प्राप्त करते हुए सम्यक्सम्बुद्धत्व को प्राप्त कर लेता है<sup>4</sup>। योगिनीसञ्चारतन्त्र की टीका में तन्त्र विशेषकर हेरुकतन्त्रों के सन्दर्भ में लोकोत्तरसिद्धि का तात्पर्य हेरुकत्व या हेरुक-पद की प्राप्ति है। कहा है—“सिद्धिरिति हेरुकपदप्राप्तिलक्षणे”<sup>5</sup> हेरुकपद की प्राप्ति सम्भारद्वय के निष्पन्न होने पर होती है। वहीं अन्यत्र भी कहा है—“सिद्धिरिति हेरुकपद-प्राप्तिरूपा भवेत्, तादृशम्”<sup>6</sup>। तन्त्रों के विशिष्ट सन्दर्भ में लोकोत्तरसिद्धि को महामुद्रासिद्धि भी कहा गया है—

एवमभ्यस्यतः सम्यग् योगिनो योगसंभवात् ।

महामुद्राह्वया सिद्धिर्जायते नात्र संशयः ॥<sup>7</sup>

1. डाकिनीजालसंवरहस्यम्, पृ० 23

2. डाकिनीजालसंवरहस्यम्, पृ० 2

3. चक्रसंवरतन्त्रविवृति, भाग-2, पृ० 575

4. लौकिकसिद्धिरित्यकनिष्ठभुवनपर्यन्ताधिपत्यम्। उत्तरसिद्धिरिति सवासनसर्वक्लेशज्ञेयसमापत्त्यावरण-प्रहाणितो द्वादशभूमिप्रतिलम्भेन सम्यक्सम्बुद्धत्वम्। (से० टी०, पृ० 3)

5. यो० सं० तं०, पृ० 140

6. यो० सं० तं०, पृ० 86

7. ज्ञानोदयतन्त्र, पृ० 9



इस प्रकार उत्तमसिद्धि के सिद्ध होने पर अर्थात् चित्तवज्र को सिद्ध कर लेने से ऐसा कोई भी दूसरा सिद्धि नहीं बचता जो सिद्ध न होता हो।<sup>1</sup>

### सिद्धियों के सहायक तत्त्व

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि उत्तमसिद्धि की प्राप्ति सम्भारद्वय, पुण्य एवं ज्ञानसम्भार के पूर्ण होने पर होती है। इतना ही नहीं तन्त्र ग्रन्थों में इनके अतिरिक्त, चतुर्ब्रह्मविहार, शील, समय, संवर, कर्म एवं बोधिचित्त इत्यादि का भी उल्लेख इस सन्दर्भ में हुआ है। लघुतन्त्रटीका में कहा है सिद्धियों का नित्य कारण ही समय का पालन है।<sup>2</sup> क्योंकि समय के पालन के बिना सिद्धी प्राप्त नहीं होती।<sup>3</sup> वहाँ अनेक समयों का उल्लेख हुआ है, उनमें बोधिचित्त प्रथम समय है।<sup>4</sup> वहीं डाकिनीजालसंवररहस्य नामक ग्रन्थ में समयसत्त्व के आकांक्षी योगियों को लौकिक और लोकोत्तर सिद्धियों को सिद्ध करने के लिए चार अभिषेकों को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है।<sup>5</sup> सेकोद्देशटीका में अभिषेकों को लौकिक एवं लोकोत्तरसिद्धियों को सिद्ध करने के लिए सोपान रूप कहा है तथा लौकिकसिद्धि के साधन के लिए संवृति भूत सात अभिषेक तथा परमार्थानुकूल तीन अभिषेक बतलाए गए हैं।<sup>6</sup> अधिकतर सिद्धियाँ स्वकृत पुण्य के वश से या पूर्व जन्मों में संचित कुशलकर्मों के विपाक से लब्ध होता है। विमलप्रभा कालचक्रतन्त्र की टीका में कहा है—पुरुषों (योगियों) को जो सिद्धि मिलती है वह स्वकृत शुभ कर्मों के वश से मिलती है।<sup>7</sup> डाकिनीजालसंवररहस्य नामक ग्रन्थ में लोकोत्तर सिद्धि के साधन में मैत्री आदि चार ब्रह्मविहारों की भावना को प्रमुखता देते हैं।<sup>8</sup>

1. परमाक्षरयोगेन साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् ।  
साधिते चित्तवज्रे तु तत्रास्ति यत्र सिद्ध्यति ॥ (डाकिनीजालसंवररहस्यम्, पृ० 2)
2. सिद्धीनां कारणं नित्यं समयानां तु पालनम् । (ल० तं० टी०, पृ० 153)
3. समयं विना न सिद्ध्यति । (ल० तं० टी०, पृ० 40)
4. इह सिद्धीनां कर्ममुद्रा-ज्ञानमुद्रा-महामुद्रासिद्धीनां तिसृणां कारणं बोधिचित्तं नित्यं हेतुः । (ल० तं० टी०, पृ० 153)
5. समयसत्त्वकाङ्क्षिभिः समयसत्त्वानां लौकिकलोकोत्तरसिद्धिसाधनाय चत्वारोऽभिषेकाः श्रेष्ठत्वेन प्रकीर्तिताः । (डा० जा० सं० २०, पृ० 1)
6. लौकिकलोकोत्तरसिद्धिसौधसोपानभूतानधरसंवृतिरूपान् सप्तसेकान् योगिसंवृतिभूतान् लौकिकसिद्धि-साधनान् परमार्थानुकूलांस्त्रिविधसेकान् । (से० टी०, पृ० 21)
7. येन या सिद्धिर्भवति पुसां स्वकृतशुभवशात् .... । (वि० प्र०, III, पृ० 144)
8. लोकोत्तरसिद्धिसाधनाय चत्वारो ब्रह्मविहारो भावनीया मैत्र्यादिक्रमेण, पृ० 2

यहाँ संक्षेप में बौद्धतन्त्रों में वर्णित सिद्धियों की चर्चा करते हुए उनके पृष्ठभूमि में ऋद्धि, प्रातिहार्य, अभिज्ञा, वशिता इत्यादि विषयों पर भी दृष्टि डालते हुए सिद्धियों के भेद एवं स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। बौद्धेतर शैव-शाक्त आदि तन्त्रों में भी अत्यन्त विस्तार एवं बहुलता से इनका उद्धरण मिलता है। यहाँ सम्प्रति उसकी विवेचना का अवसर नहीं है। यद्यपि स्वरूप एवं भेदों की दृष्टि से इनकी तुलनात्मक अध्ययन एवं शोध करने की आवश्यकता है, जिससे तन्त्रों के इस विधा पर पूर्ण प्रकाश पड़ सके। सामान्य सिद्धियों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि ये दोनों ही परम्पराओं में समान रूप से स्वीकृत हैं, जबकि लोकोत्तर-सिद्धि बौद्धतन्त्रों की अपनी विशिष्ट मान्यता है। इसी प्रकार सिद्धियों के भेद एवं स्वरूप भी पन्थगत विशिष्टताओं के कारण भिन्न हो सकते हैं।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अचिन्त्याद्वयक्रमोपदेश (गुह्यादि-अष्टसिद्धिसंग्रह), दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ माला-1, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1988
- अमरकोष-रामाश्रमी व्याख्या - हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1982
- अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितासूत्र - बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली-4, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1960
- आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प (महायानसूत्रसंग्रह-II) - बौ० सं० ग्र०-18, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1964
- आर्यमञ्जुश्रीनामसङ्गीति बनारसी लाल, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1994
- एन इन्ट्रोडक्शन टु बुद्धिस्ट एसोटेरिज्म - विनयतोष भट्टाचार्य, मोतीलाल बनारसी दास, रिप्रिन्ट, 1980, दिल्ली।
- कृष्णयमारितन्त्रम्-पञ्जिका सहित - दु० बौ० ग्र० मा०-26, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1992
- गुह्यसमाजतन्त्रम् बौ० सं० ग्र०-9, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1965
- गुह्यसमाजप्रदीपोद्योतनटीका षट्कोटिव्याख्या - काशीप्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पटना, 1984



- चक्रसंवरतन्त्रम्-विवृति सहित - दु० बौ० ग्र० मा०-26, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2002
- चर्यामेलापकप्रदीपम् दु० बौ० ग्र० मा०-22, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2000
- चौरासी सिद्धों का वृत्तान्त अनु० सेम्पा दोर्जे, द्वितीय संस्करण, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी।
- ज्ञानसिद्धि (गुह्यादि-अष्टसिद्धिसंग्रह), दु० बौ० ग्र० मा०-1, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1988
- ज्ञानोदयतन्त्रम् दु० बौ० ग्र० मा०-2, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1988
- डाकिनीजालसंवररहस्यम् दु० बौ० ग्र० मा०-8, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1990
- तत्त्वज्ञानसंसिद्धि - मर्मकलिका सहित - दु० बौ० ग्र० मा०-23, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2000
- धर्मसंग्रह (महायानसूत्रसंग्रह-1) - बौ० सं० ग्र०-17, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1961
- बुद्धचर्या राहुल सांकृत्यायन, भारतीय बौद्ध समिति, लखनऊ, तृतीय संस्करण, 1995
- बृहत् तन्त्रसार कृष्णानन्द आगमवागीश कृत, सम्पा० रामकुमार राय, प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी, 1985
- भारत में बौद्धधर्म का इतिहास - अनु० रिगजिन लुण्डुप लामा, काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पटना, 1971
- महामायातन्त्र - गुणवती टीका सहित - दु० बौ० ग्र० मा०-10, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1992
- योगिनीसञ्चारतन्त्रम् - निबन्ध एवं व्याख्या सहित - दु० बौ० ग्र० मा०-21, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1998
- लघुतन्त्रटीका वज्रपाणिपूत सी० चिकुजा, Serie Orientale Roma-LXXXVI, Istituto Italiano Per L' Africa E L' Oriente, Roma, 2001.



- वसन्ततिलका - रहस्यदीपिका व्याख्या सहित - दु० बौ० ग्र० मा०-7, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1990
- विमलप्रभा-I-III भाग केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1986, 1994
- विसुद्धिमग्ग धर्मानन्द कौशाम्बी, सारनाथ।
- षडङ्गयोग - टिप्पणी सहित Francesco Sferra, Serie Orientale Roma-LXXXV, Istituto Italiano Per L' Africa E L' Oriente, Roma, 2000.
- सहजसिद्धि (गुह्यादि-अष्टसिद्धिसंग्रह), दु० बौ० ग्र० मा०-1, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1988
- साधनमाला, 2-भाग विनयतोष भट्टाचार्य, ओरियंटल इंस्टीच्यूट बड़ौदा, 1968
- सिद्ध-साहित्य धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 1985
- सुभाषित-संग्रह सी० बैडल, ले मैसॅन, सं० IV-V, लोवेन, 1903-1904
- सेकोदेशटीका एम० ई० करेल्ली, गायकवाड ओरियन्टल सीरीज़-XL, ओरियन्टल इंस्टीच्यूट बड़ौदा, 1941

## तन्त्र की सामान्य एवं संक्षिप्त व्यवस्था ( 10 )

—छेरिंग डोलकर—

[ इस शीर्षक के अन्तर्गत धीः के पूर्व अंकों में आचार्य बुस्तोन रचित “सामान्य एवं संक्षिप्त तन्त्रोपन्यास रत्ननिधि द्वारोद्घाटक कुञ्जी” नामक ग्रन्थ का क्रमशः अनुवाद दिया जा रहा है। इस अंक में तन्त्रों का प्रसार (व्यवस्थान) शीर्षक के अन्तर्गत तन्त्रों के अभिधेय का विशिष्टार्थ एवं भेद में से योगतन्त्र के अभिधेय के भेदोपभेदों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। ]

### योगतन्त्र

योगतन्त्र का अर्थ निम्नलिखित चार विषयों में प्रतिपादित है—I. पाँच कुलों में योगतन्त्र के अभिधेय का विभाजन, II. उनका चार (कुलों) में संग्रह, III. प्रज्ञा और उपाय दो पक्षों में विभाजन और IV. नीतार्थ में प्रज्ञा एवं उपाय की अद्वयता।

#### I. पाँच कुलों में योगतन्त्र के अभिधेय का विभाजन

वज्रशेखर ( तन्त्र ) ( तो० 480 ) में कहा है—

“कुल के कितने भेद हैं कहें ( तो ) कुल सौ प्रकार के हैं।

संक्षेप में पाँच प्रकार के हैं<sup>1</sup>, बुद्ध (तथागत), वज्र, रत्न, धर्म और कर्म भेद से”।

वज्रशेखर में कुलों के संग्रह के अवसर पर पाँच महाकुलों के अन्तर्गत प्रत्येक में पाँच-पाँच छोटे कुल होने से (ये) पच्चीस कुल होते हैं। इन प्रत्येक (कुलों) का भी हृदय, मुद्रा, गुह्यमन्त्र और विद्यामन्त्र के भेद से एक सौ कुल होते हैं जो संग्रह करने पर पाँच ही कुलों में संगृहीत हो जाते हैं। इस (अभिधेय के विभाजन) में पञ्चकुलों का स्वरूप तथा पञ्च कुलों में विभाजन का कारण, ये दो विषय हैं।

#### पाँच कुलों का स्वरूप

तथागतकुल—सभी तथागतों का स्वभाव सभी वज्रधातुओं के अधिगम ज्ञान-सत्त्वरूपी बोधिचित्त के स्वभाव वाला सुविशुद्धधर्मधातुज्ञान महावैरोचन स्वरूप ही तथागतकुल है।

वज्रकुल—सभी तथागतों के वचनों के अनुगामी, दुर्दान्त-दमन में उपाय-कौशल्य स्वभाव वाला आदर्शज्ञान, अक्षोभ्य स्वरूप वज्रकुल है।

1. द्रष्टव्य—कुलाः शतविधाः प्रोक्ताः संक्षेपेण तु पञ्चधा। (च० मे० प्र०, पृ० 9)



रत्नकुल—सभी तथागतों की दानपारमिता स्वरूप त्रिधातु (काम, रूप तथा अरूप) के धर्मराज के लिए अभिषिक्त करने से, सभी सत्त्वों के मनोरथों को परिपूर्ण करने वाला रत्न समताज्ञान, रत्नसम्भव स्वरूप रत्नकुल है।

पद्मकुल—सभी तथागतों की प्रज्ञापारमिता स्वरूप सर्वज्ञज्ञान महायोगेश्वर विशुद्धधर्म प्रत्यवेक्षणाज्ञान अमित स्वरूप पद्मकुल है।

कर्मकुल—सभी तथागतों के वीर्य स्वरूप सभी सत्त्वों के समस्त प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला कर्म, कृत्यानुष्ठानज्ञान, अमोघ स्वरूप कर्मकुल है। कहा है—

“शाश्वत (वैरोचन), अक्षोभ्य, रत्नेश, अमिताभ और अमोघसिद्धि आदि, सौ कुल कहे गए हैं, संक्षेप में पाँच हैं।”

### पाँच कुलों में विभाजन का कारण

इसमें पूर्व उद्भूत विनिर्मित काय की विशेषता तथा अनुगमन के अभ्यास की विशेषता, ये दो भेद हैं।

पूर्व उद्भूत विनिर्मित काय की विशेषता—यह देशनीय कुल का स्वभाव, परार्थ के लिए विनिर्मित (काय) प्रदर्शन की विशेषता तथा पश्चात्त्वर्तियों (अनुयायियों) के लिए देशना की विशिष्टता भेद से तीन प्रकार की है।

देशनीय कुल का स्वभाव—यह कुलोत्पत्ति का हेतु और उससे (कुल के हेतु से) उत्पन्न कुल के स्वरूप भेद से दो प्रकार के हैं।

कुलोत्पत्ति का हेतु—सत्त्व का चित्त जो आदि से ही स्वभावतः विशुद्ध है, वही प्रज्ञापारमिता है और उपायकौशल्य से बोधिचर्या (अर्थात्) पञ्चाभिसम्बोधि के अनुकूल आचरण से समलचित्त, स्वचित्त-प्रत्यवेक्षा अद्वय चित्त और चैतसिक स्वभाव ही महावज्रधर है। यही विनेयजनों के लिए पाँच कुलों में प्रतिभासित होता है। जैसे श्रीपरमाद्य (तन्त्र) (तो० 488) में कहा है—

“प्रज्ञापारमिता माता है और उपायकौशल्य पिता<sup>1</sup>,

वज्रसत्त्व के द्वारा विनेयजनों के लिए कुलों का प्रादुर्भाव हुआ।”

उससे (कुल के हेतु से) उत्पन्न कुल का स्वरूप—इसमें सामान्य कुल भेद एवं प्रत्येक लघु (छोटे) कुलों का भेद, ये दो विषय हैं।

1. प्रज्ञापारमिता तु माता अस्ति, उपायकौशल्यं च पिता अस्ति। (खसमतन्त्रटीका, संकायपत्रिका-1, श्रमणविद्या, भाग-1, पृ० 235, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1983)



**सामान्य कुल भेद**—मूलतन्त्र के प्रथम खण्ड का हृदय, मन्त्र, मुद्रा-देवता, मन्त्र और सिद्धि आदि सभी तथागतकुल के हैं। इसी प्रकार द्वितीय खण्ड के (हृदय आदि) वज्रकुल, तृतीय खण्ड के (हृदय आदि) पद्मकुल और चतुर्थ (खण्ड) के (हृदय आदि) रत्नकुल हैं। मूलतन्त्र में कर्मकुल अलग से (निर्दिष्ट) नहीं होने पर भी वज्रशेखर(तन्त्र) के कुलसंग्रह में 'उत्तर (दिशा) के सैंतीस देवता कर्मकुल के हैं' तथा वज्रशेखर के नवें कल्पसंग्रह में भी 'कर्मकुल आदि...' के द्वारा प्रदर्शित किया है।

**प्रत्येक लघु (छोटे) कुलों का भेद**—उन प्रत्येक कुलों के भी पाँच-पाँच कुल हैं, जैसाकि वज्रशेखर (तो० 480) में कहा है—

“वैरोचन (के) चित्त से श्रेष्ठ धर्मकुल समुद्भूत हुआ।

बोधिचित्त से समुद्भूत हुए अक्षोभ्यादि महागणों को,

मैं वज्रकुल कहता हूँ।

महात्मा वज्रपाणि दानचर्या (से) समुद्भूत हुए

रत्नसम्भव आदि को मैं रत्नकुल कहता हूँ।

महात्मा रत्नवज्र शुद्धधर्म से समुद्भूत हुए

अमिताभ आदि को पद्मकुल में कहे गए हैं।

महात्मा वज्रधर्म, सिद्धकर्म से समुद्भूत हुए

अमोघसिद्धि आदि को कर्मकुल में कहे गए हैं।

आकाशकोश तो महाकर्म है।”

**परार्थ के लिए विनिर्मित काय प्रदर्शन की विशेषता**—इसमें तीन विषय हैं—व्याख्यान-कर्त्ता निर्माणकाय चक्रवर्ती (की विशिष्टता), उससे निर्मित माण्डलेय देवता (की विशेषता) तथा जिनके लिए निर्मित हुआ (उन) विनेयजनों की विशेषता।

**व्याख्यान-कर्त्ता निर्माणकाय चक्रवर्ती की विशेषता**—(मूलतन्त्र) प्रथम खण्ड के समस्त देव तथागत के हृच्चन्द्रवज्र से उत्पन्न होने के कारण तथागतकुल के हैं। तत्त्वालोक (तो० 2510) में ऐसा उद्धृत है—“यह तथागतकुल है, उत्पन्न होने से कुल कहा है”। प्रथम खण्ड, बाद के अन्य खण्डों से भिन्न है, क्योंकि (इसे) तथागतों द्वारा निर्मित चक्रवर्ती ने व्याख्यान किया है। चक्रवर्ती वज्रसत्त्व हैं। यथा तन्त्र (तत्त्वसंग्रह) में कहा है—

“बोधिसत्त्व समन्तभद्र को सभी तथागतों के चक्रवर्ती के रूप में, सभी तथागतों के कायरलालङ्कारों और पट्ट एवं मुकुटाभिषेक द्वारा अभिषिक्त कर...”<sup>1</sup>।

द्वितीय खण्ड में वज्रहंकार है। तीसरे खण्ड में पद्मकुल (का देवता) वज्रधर्म है, और चौथे खण्ड में मणिकुल (का देवता) वज्ररत्न है तथा कर्मकुल (का देवता) वज्रकर्म है।

**निर्मित माण्डलेय देवता की विशेषता**—तथागतों द्वारा निर्मित तथागत कुल के सभी देवता वज्रमुष्टि द्वारा आदिवज्राङ्कित स्व-स्व आयुध धारण किये हैं और मुकुट पाँच तथागतों के हैं।

द्वितीय-खण्ड के सभी देवता वज्रहंकार के चित्त के क्रोधवज्र से निर्मित होने से वज्रकुल के हैं तथा क्रोधवज्राङ्कित आयुधधारी हैं और मुकुट वज्रमाला के हैं।

तृतीय-खण्ड के सभी देव अवलोकितेश्वर के चित्त के पद्मवज्र से निर्मित होने के कारण पद्मकुल के हैं तथा पद्ममुष्टि द्वारा पद्माङ्कित आयुधधारी हैं और मुकुट अमिताभ और पद्मवज्रमाला के हैं।

चतुर्थ-खण्ड के सभी देव आकाशगर्भ के चित्त के रत्नवज्र से उत्पन्न होने के कारण रत्नकुल के हैं तथा रत्नमुष्टि द्वारा रत्नवज्राङ्कित आयुधधारी हैं और मुकुट रत्नाङ्कुर के हैं।

शेखर (वज्रशेखरतन्त्र) के कर्मकुल के कल्पसंग्रह का भोटानुवाद नहीं होने से (इस विषय में) स्पष्टतया ज्ञात नहीं होने पर भी पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार कर्मवज्र के चित्त के विश्ववज्र से उत्पन्न होने के कारण कर्मकुल के हैं तथा कर्ममुष्टि द्वारा विश्ववज्र से अंकित आयुधधारी हैं और मुकुट विश्ववज्रमाला के हैं, अर्थात्: सिद्ध होता है।

**जिनके लिए निर्मित हुआ (उन) विनेयजनों की विशेषता**—रागी विनेयजनों को विनीत करने के लिए तथागतकुल है, क्योंकि सभी देवता राग स्वभाव वाले हैं। द्वेष से युक्त (विनेयजनों) को विनीत करने के लिए वज्रकुल है; क्योंकि सभी (देवता) क्रोधी हैं। मोहयुक्त विनेयजनों को विनीत करने के लिए पद्मकुल है, क्योंकि (सभी देवता) नाना रस (स्वभाव) वाले हैं। मत्सर विनेयजनों को विनीत करने के लिए रत्नकुल है, क्योंकि (सभी) देवता पौष्टिक स्वभाव वाले हैं। कौसीद्य (आलस्य) के प्रतिपक्ष सभी देवताओं के

1. समन्तभद्राय महाबोधिसत्त्वाय सर्वतथागतचक्रवर्तित्वे सर्वबुद्धकायरलमुकुटपट्टाभिषेकेणाभिषिच्य...। (तत्त्वसंग्रह, पृ० 5)



वर्ण हरित और शान्त-रौद्रादि अनेक रस (स्वभाव) वाले हैं। अतः कहा है—“विलास वज्रसत्त्व ही है”। वज्रशेखर में कहा है—

“सभी वज्र (कुल) वाले क्रोधी होते हैं, (सभी) रत्न (कुल) वाले प्रहासवान् होते हैं, (सभी) महापद्म (कुल) वाले विनीत-शान्त होते हैं।”

(सभी) कर्म (कुल) धारी रौद्र-शान्त वाले होते हैं।

और भी कहा है—“कर्म (कुल) धारी हरित वर्ण वाले होते हैं।”

**पश्चात्त्वर्तियों ( अनुयायियों ) के लिए देशनाक्रम की विशेषता**—पश्चात्त्वर्तियों के लिए सभी तथागतों ने चक्रवर्ती के एक सौ नामों से अध्येषणा की। (तत्पश्चात्) वज्रसत्त्व ने विस्तृत, संक्षिप्त और अति संक्षिप्त रुचि रखने वाले विनेयजनों के लिए चार विस्तृत मण्डल, चार मुद्राओं वाला पाँच (मण्डल) और एक मुद्रा वाले मण्डलों की व्याख्या की। जैसे—

“धीमान् वज्रसत्त्व ने महा प्रज्ञा-उपायात्मक महाबोधि के साधन हेतु, इस कल्पराज की देशना दी”।

इस प्रकार वज्रहंकार ने निर्माण(काय) द्वारा त्रिलोकविजय( कल्पराज ) (प्रथम) खण्ड और बाह्य वज्रकुल के द्वितीय-खण्ड की देशना दी। अवलोकितेश्वर ने तृतीय-खण्ड के पद्मकुल की देशना दी। आकाशगर्भ ने चतुर्थ-खण्ड के रत्नकुल की देशना दी और शेखर (वज्रशेखर) के कर्मकुल कल्पसंग्रह को कर्मवज्र ने निर्माणकाय द्वारा देशना दी, (ऐसा) सिद्ध होता है।

**अनुगमन के अभ्यास की विशेषता**—इसमें दो विषय हैं। विपाक-कर्त्ता की विशेषता और साधनोपाय की विशेषता।

**विपाक-कर्त्ता की विशेषता**—इसमें आठ भेद हैं—1. विपाक-कर्त्ता आचार्य, 2. विपाकीय शिष्य, 3. वस्त्र और मुखपट्ट, 4. मण्डल में प्रवेशक्रम, 5. प्रवेशनीय मण्डल और मण्डलार्चन द्रव्य, 6. (मण्डल) प्रवेशोपरान्त अभिषेक क्रम, 7. अभिषेक में प्राप्त संवर और 8. समय की विशेषता।

**विपाक-कर्त्ता आचार्य की विशेषता**—तथागतकुल में वज्रसत्त्वयोग से युक्त आचार्य वज्राचार्य हैं। इसी प्रकार पद्म-आचार्य, रत्न-आचार्य और विश्व-आचार्य को भी जानना चाहिए।

**विपाकीय शिष्य की विशेषता**—अपने-अपने कुलों के चक्रवर्ती द्वारा अधिष्ठित शिष्यों में—दो वज्र-शिष्य, पद्म-शिष्य, रत्न-शिष्य और विश्व-शिष्य हैं। वज्रसत्त्व द्वारा अधिष्ठित शिष्य को वज्र-शिष्य आदि कहा है।



**वस्त्र एवं मुख-पट्ट की विशेषता**—प्रथम-खण्ड (मूलतन्त्र का प्रथम खण्ड) में—<sup>1</sup>“इसके पश्चात् रक्त (लाल) उत्तरीय वस्त्र धारण कर, रक्त वस्त्र से मुख को वेष्टित कर...”, इसका तात्पर्य राग से राग को त्यागना है।

द्वितीय-खण्ड में<sup>2</sup>“नील(उत्तरीय)वस्त्र धारण कर सिर पर नील उष्णीष बाँधकर और मुख को नीलवस्त्र से वेष्टित कर...”, इसका तात्पर्य क्रोध से क्रोध को त्यागना है। तन्त्र के तीसरे खण्ड में प्रत्यक्षतः कुछ भी नहीं कहने पर भी टीका में<sup>3</sup> सित वस्त्र आदि का जो निर्देश है, उससे मोह का त्याग परिलक्षित होता है। तन्त्र के चतुर्थ खण्ड में<sup>4</sup>“यथा (वर्ण) प्राप्त वस्त्र” ऐसा निर्देश है, इसका तात्पर्य है यदि मिले तो पीला (वस्त्र) और यदि नहीं मिले तो जो भी वर्ण उपलब्ध हो वह उचित है। अतः कर्मकुल में भी इसी तरह से जोड़ना चाहिए।

**मण्डल में प्रवेश क्रम**—स्व-चक्रवर्ती द्वारा अधिष्ठित प्रवेश-द्वार के कलश द्वारा अभिषेक का तात्पर्य वज्र से लेकर रत्नपर्यन्त अधिष्ठित कलश से अभिषेक करना है। कर्मकुल में भी इसी तरह से जोड़ना चाहिए। इसके बाद अभिषिक्त कर स्व-कुल समय-मुद्रा द्वारा मण्डल में प्रवेश होता है, जैसे तथागतकुल में सत्त्ववज्री समयमुद्रा, वज्रकुल में क्रोध तिरिन्तिरि समयमुद्रा, पद्मकुल में पद्मवज्र समयमुद्रा, मणिकुल में मणिवज्र समयमुद्रा और कर्मकुल में कर्मवज्र समयमुद्रा बांधकर प्रवेश होता है।

**प्रवेशनीय मण्डल एवं मण्डलार्चन द्रव्य**—तथागतकुल का मण्डल—इस मण्डल का मध्य वृत्त वज्रमाला से परिवृत है। वज्रकुल में अन्य (सभी एक) समान हैं, परन्तु (वह) क्रोधवज्र से परिवृत है। पद्मकुल में इस प्रकार कहा है—

“उसके मध्य में सूत्र अर्थात् तन्तु से, चार कोण वाला बनायें,  
द्वितीय द्वारकोण को पद्माकार बनायें।  
आठ स्तम्भों के रूप में आठ दल (पत्र) वाला पद्म लिखें।”<sup>5</sup>

1. ततो रक्तवस्त्रोत्तरीयो रक्तपट्टावच्छादितमुखः —(तत्त्वसंग्रह, पृ० 22)
2. नीलवस्त्रोत्तरीयो नीलोष्णीषावबन्धशिराः, नीलरक्तकेन मुखं बध्वा—(तत्त्वसंग्रह, पृ० 66)
3. ततः श्वेतवस्त्रोत्तरीयः श्वेतरक्तकेन मुखं बध्वा—(त० सं०, पृ० 113)
4. द्रष्टव्य—त० सं०, पृ० 143
5. तस्याभ्यन्तरतः सूत्रं चतुरस्रं परिक्षिपेत् ।  
द्वितीयं द्वारकोणं तु पद्माकारं प्रकल्पयेत् ॥  
अष्टस्तम्भप्रयोगेण पद्ममष्टदलं लिखेत् ।(तत्त्वसंग्रह, पृ० 111)

रत्नकुल में आठ कोण वाले रत्न की तरह तथा कर्मकुल में विश्ववज्र की तरह लिखना चाहिए। इसी प्रकार देवताओं की विशेषताओं को भी जानना चाहिए।

( मण्डल ) प्रवेशोपरान्त अभिषेक क्रम—तथागतकुल में सभी पुष्प एवं वस्त्र आदि का वर्ण श्वेत तथा वज्रकुल में नीला, पद्मकुल में रक्त, मणिकुल में पीला और इसी तरह कर्मकुल में विविध वर्ण का होता है। जैसा कि श्रीपरमाद्य( तन्त्र ) में कहा है—

“वज्री के समस्त पूजा में तथागतकुल में श्वेत,  
वज्रात्मक ( कुल ) में कृष्ण( नीला?), पद्मकुल में रक्त और मणिकुल में पीला...”।

अभिषेक में प्राप्त संवर की विशेषता—संवर की विशेषता जैसा अभिषेक भेद के अवसर पर वर्णित है वैसा ही है।

समय की विशेषता—यहाँ पाँच कुलों के संवर को ‘संवरधारणी’ से जानना चाहिए। अधिक प्रचलित होने से इसे नहीं लिखा गया है। देवोपासना के लिए करणीय अभ्यास संवर ( तत्त्वसंग्रह में ) कहा है—

1“ जो राग समापत्ति में स्थित है, उसका राग से शोधन करें।  
इसे बुद्ध के महामुद्राज्ञान का समय कहा है”।

यह तथागत का समय है।

2“ कामुकों का अविराग समय सुमहानय है।  
( इस ) शुद्ध तथागतकुल का जिनों ( बुद्धों ) ने भी अतिक्रम नहीं किया”।

यह तथागतकुल का समय है।

3“ अक्रोधित होने पर भी सत्त्वार्थ के लिए महाक्रोध का प्रदर्शन किया।  
महावज्रकुल का यह समय दुरतिक्रम है”।

यह वज्रकुल का समय है।

- 
1. यस्य रागसमापत्तिस्तस्य रागेण शोधयेत् ।  
इति बुद्धं महामुद्राज्ञानस्य समयः स्मृतः ॥ ( तत्त्वसंग्रह, पृ० 167 )
  2. कामानामविरागस्तु समयः सुमहानयम् ।  
तथागतकुलशुद्धोऽनतिक्रम्यो जिनैरपि ॥ ( तत्त्वसंग्रह, पृ० 167 )
  3. अक्रोधस्यापि सत्त्वार्थान् महाक्रोधप्रदर्शनम् ।  
महावज्रकुले त्वेष समयो दुरतिक्रमः ॥ ( तत्त्वसंग्रह, पृ० 167 )



1“स्वभावशुद्धता को जानने से वह जो कार्य करता है।  
उसके द्वारा महापद्मकुल के इस समय का अतिक्रम कठिन है”।

यह पद्मकुल का समय है।

2“अल्प हो या अधिक, यथा अभिरुचि से,  
दान के द्वारा दिवस-कार्य को सार्थक करना यही (रत्नकुल का) समय है”।

यह रत्नकुल का समय है।

इसी प्रकार से कर्मकुल का भी समय बतलाया गया है।

**साधनोपाय की विशेषता**—इसमें देव-भावना की विशेषता, मन्त्रजाप की विशेषता और अनुचर्या के मार्ग की अवस्था में रक्षा (पालन) की विशेषता, ये तीन भेद हैं।

**देव-भावना की विशेषता**—इसके छह भेद हैं—देव-भावना के पूर्वयोग (पुरश्चरण) की विशेषता, मौल देव-भावना की विशेषता, मुद्रा-बन्धन की विशेषता, अधिष्ठान की विशेषता, अभिषेक की विशेषता और अर्चना की विशेषता।

**देव-भावना के पूर्वयोग की विशेषता**—आधार गणमण्डल का निर्माण स्व-स्व सत्त्व के कारण होता है। ज्ञानावेश के समय आदिवज्र, क्रोधवज्र, पद्मवज्र, रत्नवज्र और विश्ववज्र आदि का आवेश करना प्रत्येक की विशेषताएं हैं।

**मौल देव-भावना की विशेषता**—इसमें अपने-अपने महायोग आदि के विस्तृत एवं संक्षिप्त समाधि में से किसी एक की भावना की जाती है। इसमें अनेक विशेषताएं हैं, विस्तार भय से नहीं दिया गया है।

**मुद्रा-बन्धन की विशेषता**—तथागत में ‘समयस्त्वं’, उसके कुल (तथागत कुल) में ‘सुरतस्त्वं’, वज्रकुल में ‘हूँ’, पद्मकुल में ‘सर्वशुद्ध’, मणिकुल में ‘ॐ’, ऐसा उच्चारण कर अपनी-अपनी मुद्राओं द्वारा मुद्रित किया जाता है। जैसाकि तत्त्वसंग्रह में कहा है—

- 
1. स्वभावशुद्धिज्ञानेन तस्य कार्यं स करोति ।  
महापद्मकुले त्वेष समयो दुरतिक्रमः ॥ (तत्त्वसंग्रह, पृ० 167)
  2. अल्पत्वे वा बहुत्वे वा यथाभिरुचितं पुनः ।  
अवश्यो (अबन्ध्यो) दिवसः कार्यो दानेन समयो ह्ययम् ॥ (तत्त्वसंग्रह, पृ० 167)



1“ ‘समयस्त्वं’ ऐसा कह कर, इसके पश्चात् असाधित होने पर, सभी मुद्राओं तथा कुलों में स्वयं को बद्ध करने से दृढ़ता को प्राप्त होता है”।

**अधिष्ठान की विशेषता**—तथागत को वज्रधात्वीश्वरी (मुद्रा) और उसके कुल को सत्त्ववज्री मुद्रा, वज्रकुल को तिरिन्तिरि मुद्रा, पद्मकुल को पद्मवज्र मुद्रा, मणिकुल को महामणिवज्र मुद्रा बांधकर चारों स्थानों को अधिष्ठित किया जाता है। यथा (तत्त्वसंग्रह) में कहा है<sup>2</sup>—

“सुसमाहित होकर वज्रधात्वीश्वरी की मुद्रा बाँधकर, हृदय, ऊर्णा, कण्ठ और मूर्ध्नि में स्थापित कर बुद्ध ने अधिष्ठित किया”।

**अभिषेक की विशेषता**—(इस अभिषेक की विशेषता) जैसा पूर्व में मनुष्यों को अभिषेक करते समय कहा गया था वैसा ही है। यथा (तत्त्वसंग्रह में) कहा है<sup>3</sup>—

“वज्ररत्न को बाँध कर, ललाट के ऊपर स्थापित करने से; जिन (बुद्ध) द्वारा वज्ररत्न का अभिषेक होता है” इत्यादि।

**अर्चना की विशेषता**—तथागत के लिए कहा है<sup>4</sup>—

“पहले धूप आदि से पूजा कर सुसमाहित होकर; उसके पश्चात् सिद्धि की कामना से साधना करे तो सिद्धि प्राप्त होती है”।

उसके (तथागत के) कुल के लिए कहा है<sup>5</sup>—

“चार प्रकार की गुह्य पूजा द्वारा गुह्य पूजा का पाठ कर और, आत्मनिर्यातन आदि पूजा करने पर सिद्ध होता है”।

1. समयस्त्वमिति प्रोक्ते सर्वमुद्रान् कुलेष्वपि ।  
स्वयं बध्वा दृढं यान्ति ततः पश्चादसाधिता ॥ (तत्त्वसंग्रह, पृ० 172)
2. वज्रधात्वीश्वरीं मुद्रां बध्वा तु सुसमाहितः ।  
हृद्यूर्णायां गले मूर्ध्नि स्थाप्य बुद्धैरधिष्ठयत ॥ (त० सं०, पृ० 173)
3. वज्ररत्नां समाधाय ललाटे तु प्रतिष्ठिताम् ।  
कृत्वा तु वज्ररत्नेभ्यामभिषिक्तो जिनैर्भवेत् ॥ (त० सं०, पृ० 174)
4. पूर्व धूपादिभिः पूजां कृत्वा तु सुसमाहितः ।  
ततस्तु सिद्धिकामो वै साधयन् सिद्धिमाप्नुयात् ॥ (त० सं०, पृ० 175)
5. गुह्यपूजाचतुष्टयेन गुह्यपूजामुदाहरन् ।  
आत्मनिर्यातनाद्यैव पूजां कुर्वन्तु सिध्यति ॥ (त० सं०, पृ० 175)

वज्रकुल के लिए कहा है<sup>1</sup>—

“क्रोधवज्र (का) महापूजा कर, क्रोधगुह्य का पाठ कर,  
क्रोध-मुष्टि को बाँध कर, मेरा कुल शीघ्र सिद्ध होता है”।

पद्मकुल के लिए कहा है<sup>2</sup>—

“गम्भीर एवं उदार सूत्रों के नय को अच्छी तरह से पाठ कर,  
फिर चित्त और वाक् द्वारा निर्यातन करें तो शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है”।

मणिकुल के लिए कहा है<sup>3</sup>—

“छत्र, ध्वज, पताका तथा राजपूजा से अर्चना कर,  
सभी दान देने से मणिकुल सिद्ध होता है”।

**मन्त्रजाप की विशेषता**—(मन्त्रजाप की विशेषता जैसा) अभिसमय के मन्त्र के अवसर पर वर्णित है, वैसा ही है।

**अनुचर्या के मार्ग की अवस्था में रक्षा की विशेषता**—तत्त्वसंग्रह में कहा है<sup>4</sup>—

“सभी सत्त्वों का परित्याग नहीं करना, सदा बुद्ध पूजा करना,  
नित्य बुद्ध का स्मरण (मनस्कार) करना, यह परमाद्भुत रक्षा है”।

यह तथागत की (रक्षासिद्धितन्त्र) है।

<sup>5</sup>“वज्रसत्त्व का एक बार भी नाममात्र जाप करना,  
यह रक्षा महाशाश्वत है और क्षणभर में सिद्धि देने वाली है”।

(यह तथागतकुल की रक्षासिद्धितन्त्र है।)

1. क्रोधवज्रमहापूजां क्रोधगुह्यमुदाहरन् ।  
क्रोधमुष्टिं प्रकुर्वन् वै शीघ्रं सिध्येत् कुलं मम ॥ (त० सं०, पृ० 176)
2. गम्भीरोदारसूत्रान्तप्रयोगसमुदाहृताः ।  
निर्यातयन्मनोवाग्भिः शीघ्रं सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ (त० सं०, पृ० 176)
3. छत्रध्वजपताकाभिः राजपूजाभिरर्चयन् ।  
सिध्यते मणिकुलं सर्वददन् दानानि वा सिध्यति ॥ (त० सं०, पृ० 176)
4. सर्वसत्त्वापरित्यागो बुद्धपूजात्मता सदा ।  
नित्यं बुद्धमनस्कारो रक्षयं परमाद्भुत ॥ (त० सं०, पृ० 179)
5. वज्रसत्त्वे सकृद्द्वारां नाममात्रपरिग्रहः ।  
इयं रक्षा तु महती शाश्वती सिद्धिदा क्षणात् ॥ (त० सं०, पृ० 179)



1“ (विद्या और तन्त्र में संतुष्ट), त्रैलोक्यविजयात्मक  
वज्रहंकार के प्रति भक्ति से यह स्व और पर की रक्षा है”।

(यह वज्रकुल की रक्षासिद्धितन्त्र है।)

2“ राग शुद्धि तथा महामैत्री, सभी सत्त्वों को अभयदान देने वाली,  
और लोकेश नाम के जाप की यह रक्षा परम अद्भुत है”।

(यह पद्मकुल की रक्षासिद्धितन्त्र है।)

3“ बुद्ध और सत्त्वों के प्रति त्याग का यथाशक्ति प्रयोग कर  
दिवस-कार्य को सार्थक करने वाली यह रक्षा परमाद्भुत है”।

(यह मणिकुल रक्षासिद्धितन्त्र है।) कर्मकुल भी ऐसा ही है।

## II. चार कुलों में संग्रह

इस प्रकार पाँच कुल हैं। परन्तु, तत्त्वसंग्रह और श्रीपरमाद्य के चार-खण्डों को जिन चार-कुलों में संग्रह कर बताया है, उसके अनुसार कर्मकुल रत्नकुल में ही संग्रहीत है। सत्त्वाशय को परिपूर्ण करने में तो रत्न ही सक्षम है और परिपूर्ण करना कर्म है। अतः क्रिया तथा कर्ता अभिन्न है। बुद्धगुह्य ने कहा है—

“तत्त्वसंग्रह में कर्मकुल को पृथक् नहीं किया है, क्योंकि यह रत्नकुल में ही संग्रहीत है।” इस प्रकार चार कुलों में ही संग्रहीत होने में कारण भी हैं, यथा—तथागत के काय-वाक्-चित्त और कर्म ये चार, चार मुद्राएं, चार प्रहेय और चार ज्ञान-फलों की संख्या का निर्धारण। अक्षयकोश कायव्यूह के विकुर्वण को तथागतकुल, चित्त को वज्रकुल, वाक् को पद्मकुल तथा कर्म को मणिकुल (कहा) है। तथागतकुल महामुद्रा है, वज्रकुल समयमुद्रा है, पद्मकुल धर्ममुद्रा है और मणिकुल को कर्ममुद्रा के रूप में महाटीका में भी कहा है। चार प्रहेय—आलय (विज्ञान), क्लिष्टमन, मनोविज्ञान और पाँच इन्द्रियों के ज्ञान के प्रतिपक्ष को क्रमशः चार खण्डों में श्रीपरमाद्य महाटीका में कहा है। चार आदर्श आदि ज्ञान का स्वभाव क्रमशः चार खण्डों में श्रीपरमाद्य महाटीका में कहा

1. विद्यातन्त्रेषु संतोषः त्रिलोकविजयात्मता ।  
भक्तिर्वै वज्रहंकारे रक्षयं स्वपरस्य वै ॥ (त० सं०, पृ० 179)
2. रागशुद्धिर्महामैत्री सत्त्वेषु अभयदानता ।  
लोकेशनामजापश्च रक्षयं परमाद्भुते ॥ (त० सं०, पृ० 180)
3. अबन्ध्यो दिवसः कार्यो यथाशक्त्या प्रयोगतः ।  
त्यागेन बुद्धसत्त्वाभ्यां रक्षयं परमाद्भुते ॥ (त० सं०, पृ० 180)



है। अमृतोद्भव (?) नामक तन्त्र में क्रोधकुल को वज्रसत्त्व कुल में संग्रहीत कर तीन कुलों में ही संग्रह किया है, ऐसा बुद्धगुह्य ने कहा है।

### III. प्रज्ञोपाय दो पक्षों में विभाजन

सर्वतथागतकायवाक्चित्तगुह्यालंकारव्यूह ( तन्त्रराज ) ( तो० 492 ) में कहा है—  
“प्रज्ञा को माता के रूप में तथा उपाय को पिता के रूप में कहा है”,

अतः ( जिसमें ) उपाय ( रूपी ) बोधिचित्त प्रधानतः उपदेशित है, वह पितृतन्त्र है, तथा ( जिसमें ) प्रज्ञा ( रूपी ) प्रज्ञापारमिता प्रधानतः उपदेशित है, वह मातृतन्त्र है। तत्त्वसंग्रहमूल एवं व्याख्या ( तन्त्र ) में उपाय के दस तत्त्वों का प्रमुख रूप से निर्देश होने से पितृ अर्थात् उपायतन्त्र है तथा श्रीपरमाद्य तथा शतपञ्चाशतप्रज्ञापारमितानय आदि मातृ अर्थात् प्रज्ञातन्त्र है। यथा आर्यप्रज्ञापारमितानयशतपञ्चाशत् टीका ( तो० 2647 ) में कहा है—“सभी तथागतों का स्रोत माता प्रज्ञापारमिता श्रीवरमाला यही है। माता कहने से तथागतों के पिता भी गृहीत हो जाता है, क्योंकि पितृ अर्थात् तत्त्वसंग्रहतन्त्र को तन्त्र का एक गम्भीर ग्रन्थ के रूप में निर्देश किया है।” पुनः, इन दोनों में भी प्रत्येक में प्रज्ञोपाय के अंश पृथक् से हैं। तत्त्वसंग्रह के प्रत्येक खण्ड में हृदय, मुद्रा, गुह्यमन्त्र और विद्यामन्त्र ये चार-चार ( भेद ) हैं।

हृदय—महामुद्रा प्रधानभूत कायमण्डल है।

मुद्रा—समयमुद्रा प्रधानभूत धारणीमण्डल है।

गुह्यमन्त्र—धर्ममुद्रा प्रधानभूत धर्ममण्डल है।

विद्यामन्त्र—कर्ममुद्रा प्रधानभूत कर्म-मण्डल है।

धारणीमण्डल—धारणी देवियों को आयुध स्वरूप मण्डल में न्यास करना, कर्ममण्डल—तथागत के अतिरिक्त अन्य सभी को देवी के रूप में परिणत कर न्यास करना ये दोनों प्रज्ञा हैं तथा अन्य दोनों उपाय हैं। इसी प्रकार श्रीपरमाद्य आदि ( तन्त्रों ) को भी जानना चाहिए।

### IV. नीतार्थ में प्रज्ञोपाय की अद्वयता

इस प्रकार प्रज्ञा एवं उपाय के सम्भार का पृथक्-पृथक् भेद भी विनेयजनों का उद्धार करने के लिए प्रधानता की दृष्टि से देशना दी है। नीतार्थ में सभी प्रज्ञा एवं उपाय का युगनद्ध योग प्रदर्शित होने से योगतन्त्र है। इसलिए प्रज्ञोपाय अभिन्न है; क्योंकि प्रज्ञोपायात्मक महातत्त्व...” ऐसा टीका में उद्धृत है।

## बौद्ध एवं बौद्धेतर धर्मों में 'दीक्षा' का स्वरूप ( 5 )

—रञ्जनकुमार शर्मा—

[ इससे पूर्व धीः के अंकों में, बौद्ध, जैन, वैदिकी (उपनयन-संस्कार) तथा वैष्णव-दीक्षा क्रम को दे चुके हैं। प्रस्तुत अंक में वैदिकी-दीक्षा के अन्तर्गत शैवों के काश्मीर शैव एवं वीरशैव की दीक्षा-विधि का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है। इसमें विशेषतः दीक्षा का माहात्म्य, दीक्षा की आवश्यकता, दीक्षा के भेद, दीक्षा का अधिकारी, दीक्षा-काल, यागमण्डप व मण्डल, दीक्षा-विधियाँ आदि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। ]

### शैव-दीक्षा

शैव सम्प्रदाय मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त हैं—(1) काश्मीर, (2) सिद्धान्त तथा (3) वीरशैव। काश्मीर शैव, शिव के उपासक तथा सिद्धान्त व वीरशैव लिङ्ग के उपासक हैं; परन्तु सिद्धान्त शैव, लिङ्ग को शिव के प्रतीक रूप में नहीं, अपितु वायवीय अग्नि या 'अज्ञात देवता' के रूप में तथा वीरशैव लिङ्ग को शिव के प्रतीक रूप में पूजा करते हैं।<sup>1</sup>

शिवपुराण में सिद्धान्तशैव, पाशुपत, महाव्रतधर तथा कापालिक नाम के चार शैवों का उल्लेख मिलता है।<sup>2</sup>

### दीक्षा

शैव सिद्धान्त के अनुसार 'दीक्षा' शिष्य के पाशों का नाश करती है और उसमें जो मलिनता रहती है, उसका प्रक्षालन कर उसे शिवस्वरूप में युक्त कर देती है। दीक्षा के समस्त कार्य योग्य गुरु ही करते हैं।

गणकारिका के अनुसार 'दीक्षा' के पाँच कारकतत्त्व हैं<sup>3</sup>—द्रव्य, काल, क्रिया, मूर्ति तथा गुरु। इनकी सहायता से शिष्य की आत्मा के निर्मल होने पर उसे दीक्षा की पात्रता प्राप्त होती है।

1. शैव सिद्धान्त, पृ० 148-149

2. वायवीयसंहिता, उत्तरभाग (31.173)।

3. गणकारिका, श्लोक 2, 5



विद्यासम्पन्न गुरु, विद्या-सम्पन्न शिष्य की परीक्षा कर दर्भ आदि कलाओं की सहायता से शिष्य के पशुभाव की निवृत्ति के लिये उसको शिव मन्दिर में बैठाकर उसका संस्कार करते हैं। यह संस्कार ही 'दीक्षा' है।

### दीक्षा का माहात्म्य

दीक्षा के माहात्म्य को बताते हुए कहा गया है कि 'दीक्षा' मनुष्य को देवताओं की समकक्षता, मुक्ति एवं शिवधाम आदि प्रदान करती है। जैसाकि कहा गया है—

“यो दीक्षते स देवतानामेको भवति।” (शतपथब्राह्मण, 3.2.1.19)

अर्थात् दीक्षित व्यक्ति भी देवताओं के समान होता है।

और भी—

“दीक्षैव मोचयत्यूर्ध्वं शैवं धाम नयत्यपि।” (स्वायंभुवसूत्रसंग्रह, 2.24)

अर्थात् दीक्षा ही मुक्त करती है और वही ऊपर शिवधाम में भी ले जाती है।

और भी—

दीक्षितो ब्राह्मणो याति ब्रह्मलोकं सुधामयम् ।  
ऐन्द्रं लोकं क्षत्रियोऽपि प्राजापत्यं विशस्तथा ॥  
याति गन्धर्वनगरं शूद्रो दीक्षाप्रसादतः ।  
दीक्षां विना न मोक्षः स्यात् प्राणिनां शिवशासनात् ॥  
सा च न स्याद्विनाऽऽचार्यमित्याचार्यपरम्परा । (रुद्रयामल)

### दीक्षा की आवश्यकता

जिस प्रकार किसी द्विज को उपनयन के विना वेदाध्ययन तथा सन्ध्यावन्दन का अधिकार नहीं है, उसी प्रकार अदीक्षित व्यक्ति को तान्त्रिक उपासना का अधिकार नहीं होता। जैसाकि कहा गया है—

द्विजानामनुपनीतानां स्वकर्माध्ययनादिषु ।  
नाधिकारोऽस्त्यतः कुर्यादात्मानं शिवसंस्कृतम् ॥

(गौतमीयतन्त्र, अ० 5)



और भी—

ददाति दिव्यतां वञ्चेत् क्षिणुयात् पापसन्ततिम् ।  
तेन दीक्षेति विख्याता मुनिभिस्तन्त्रपारगैः ॥  
यां विना नैव सिद्धिः स्यान्मन्त्रो वर्षशतैरपि ।

( गौतमीयतन्त्र, अ० 7 )

अर्थात् 'दीक्षा' से दैवी शक्ति प्राप्त होती है, सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, इसलिए तन्त्रपारंगत मुनियों ने इस क्रिया को 'दीक्षा' कहा है। जब तक 'दीक्षा' न ली जाय, तब तक चाहे कोई सौ वर्ष तक भी मन्त्र का जप करता रहे, मन्त्र की सिद्धि नहीं होती। इसलिए 'दीक्षा' लेना अत्यन्त आवश्यक है।

और भी—

यस्य दीक्षा शिवे नास्ति जीवनान्तं च जन्मिनः ।  
स जातु नोत्तरेद्देवि निरयाऽम्बुनिधे क्वचित् ॥  
दीक्षाहीनस्य देवेशि पशोः कुत्सितजन्मतः ।  
पापौघोऽन्तिकमायाति पुण्यं दूरं पलायते ॥  
तस्माद्यत्नेन दीक्षैषा ग्राह्या कृतिभिरुत्तमा । ( रुद्रयामल )

और भी—

उपचारसहस्रैस्तु योजितां भक्तिसंयुताम् ।  
अदीक्षिताऽर्चनां देवा न गृह्णन्ति कदाचन ॥  
कर्माऽखिलं वृथा यस्मात् तस्मात् पशुरदीक्षितः । ( आगमकल्पद्रुम )

### दीक्षा के भेद

'दीक्षा' के विभिन्न ग्रन्थों में अलग-अलग भेद बताये गये हैं। शारदातिलक में दीक्षा के चार भेद हैं—

चतुर्विधा सा सन्दिष्टा क्रियावत्यादिभेदतः ।  
क्रियावती वर्णमयी कलात्मा वेधमय्यपि ॥ ( 4.3 )

प्राणतोषिणीतन्त्र में भी इसके चार प्रकार बताये गये हैं—

चतुर्विधा तु सा दीक्षा ब्रह्मणा भाषिता पुरा ।  
क्रियावती कलावती वर्णवेधमयी पुनः ॥ ( काण्ड 2, परि० 4 )

### दीक्षा का अधिकारी

शैवी साधना की दीक्षा में जाति, लिङ्ग, आयु आदि का कोई भी भेद नहीं है।  
जैसाकि कहा गया है—

उक्तं ज्ञानोत्तरे चैतद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥  
नपुंसकाः स्त्रियः शूद्रा ये चान्येऽपि तदर्थिनः ।  
ते दीक्षायां न मीमांस्या ज्ञानकाले विचारयेत् ॥

(तन्त्रालोक, 23.20-21)

और भी—

दीक्षोत्तरेऽपि च प्रोक्तमन्नं ब्रह्मा रसो हरिः ।  
भोक्ता शिव इति ज्ञानी श्वपचानप्यथोद्धरेत् ॥ (तन्त्रालोक, 28.65)

अर्थात् अन्न ब्रह्मा का और रस हरि का स्वरूप है। भगवान् शिव इसके भोक्ता हैं।  
ऐसा मानकर ज्ञानी गुरु, श्वपचों (चाण्डालों) को भी दीक्षा देकर उनका उद्धार करें।

यदि शिवभाव का साक्षात्कार किसी निम्न वर्ण के व्यक्ति को हो गया हो तो  
उच्चवर्ण का व्यक्ति उसका शिष्य बनकर शैवी विद्या को प्राप्त कर सकता है; परन्तु जिस  
व्यक्ति के हृदय में किसी दूसरे शास्त्र के प्रति अत्यन्त प्रेम हो, उसे 'शैव-दीक्षा' नहीं दी जा  
सकती।

### दीक्षा-काल

गुरु अपने शिष्य को शुभ मुहूर्त देखकर 'शैव-दीक्षा' प्रदान करते हैं। शैव-ग्रन्थों  
में 'शैव-दीक्षा-काल' का वर्णन करते हुए कहा गया है—

इषोर्जमार्गशीर्षेषु तपस्यपि तपस्यके ॥  
माधवे शुक्लपक्षे तु पूर्णासु च विशेषतः ।  
जयासु शिवदीक्षा या उत्तरोत्तरवृद्धिकृत् ॥  
द्वादश्यां तु चतुर्दश्यां नवम्यामष्टमीदिने ।  
शिवरात्र्याममायां च कार्तिके सोमवासरे ॥  
शुक्रार्कभौमवारेषु मघाद्ररिवतीषु च ।  
श्रोणाश्विनीभरण्यग्निस्वातीमूलेन्दुधिष्णिषु ॥  
फाल्गुनीशततारासु स्वजन्मर्क्षे गुरोस्तु वा ।  
वैधृतिं च व्यतीपातमतिगण्डं च गण्डकम् ॥



शूलव्याघातमितरे वर्जयित्वाऽखिलाः शुभाः ।  
 भद्रं वा करणं देवि किंस्तुघ्नमपि बालवम् ॥  
 मुक्त्वेतराणि गिरिजे यथायोगं समाचरेत् ।  
 सर्वलक्षणसंपन्ने दिने कुर्यात् तथापि वा ॥  
 दोषाल्पत्वं गुणाधिक्यं वीक्ष्य दीक्षां प्रयोजयेत् ।

( पारमेश्वरागम<sup>1</sup> 2.86-87, 89-94 )

अर्थात् 'शैव-दीक्षा' आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ, फाल्गुन या वैशाख मास के शुक्लपक्ष में और विशेषकर पूर्णा (पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा) या जया (तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी) तिथियों में लेनी चाहिए। द्वादशी, चतुर्दशी, नवमी और अष्टमी तिथियों, शिवरात्रि तथा अमावस्या में और कार्तिक मास के सोमवार के दिन ली गयी दीक्षा शुभ मानी जाती है। शुक्र, रवि और मंगलवार को तथा मघा, आर्द्रा, रेवती, श्रवण, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, स्वाति, मूल, फाल्गुनी और शतभिषा नक्षत्रों में तथा अपने और गुरु के जन्मदिन के नक्षत्र में ली गयी दीक्षा श्रेष्ठ मानी जाती है। वैधृति, व्यतीपात, अतिगण्ड, गण्ड, शूल, व्याघात और इसी तरह के अन्य कुयोगों को छोड़कर सभी दिन दीक्षा के लिये शुभ माने जाते हैं। भद्रा, किंस्तुघ्न और बालव करणों को छोड़कर अन्य शुभ करणों तथा सर्वलक्षणों से सम्पन्न दिन में ही दीक्षा-विधि सम्पन्न करनी चाहिए। जिस दिन दोषों की अल्पता और गुणों की अधिकता हो, उसकी पूरी परीक्षा करने के पश्चात् ही मुख्य दीक्षा देनी चाहिए।

और भी—

शरत्काले च वैशाखे दीक्षा श्रेष्ठफलप्रदा ।  
 फाल्गुने मार्गशीर्षे च ज्येष्ठे दीक्षा च मध्यमा ॥  
 आषाढे माघमासे च कनिष्ठा सा प्रकीर्तिता ।  
 निन्दितश्चैत्रमासस्तु पौषो भाद्रपदस्तथा ॥ (सिद्धान्तशेखर)

और भी—

शुक्लपक्षे शुभा दीक्षा कृष्णेऽप्यापञ्चमीदिनम् ।  
 क्षीणेन्दौ व्रतदीक्षां च न कुर्यान्मन्त्रवित्तमः ॥ (रुद्रयामल)

1. पारमेश्वरागम, सं०-पं० ब्रजवल्लभ द्विवेदी, शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्, जंगमबाड़ी मठ, वाराणसी।



और भी—

पञ्चम्येकादशी शुक्ला सप्तमी च त्रयोदशी ।  
दशमी शुक्लपक्षस्य द्वादशी तु विशेषतः ॥  
तृतीया विहिता नित्यं षष्ठी सर्वत्र निन्दिता । (सारसंग्रह)

### काश्मीर शैव-दीक्षा-विधि

<sup>1</sup>काश्मीर शैव परम्परा में 'क्रिया-दीक्षा' साधना का विशेष अंग है। इसके अन्तर्गत अभिषेक, न्यास, याग, होम, अधिवास आदि के अनुष्ठान के साथ ही साथ गुरु अपने शिष्य पर अनुग्रह (शक्तिपात) का प्रयोग करते हुए, उसकी योग्यता के अनुसार रहस्य मन्त्रों का उपदेश और प्रयोग करते हैं। इस 'क्रिया-दीक्षा' का अनुष्ठान करने का अधिकार उसी गुरु को है, जिसे सिद्ध गुरु द्वारा अनुग्रह, स्वात्मप्रत्यभिज्ञा तथा दीक्षाकर्म के अनुष्ठान करने का अधिकार मिल चुका हो। शैवी-दीक्षा प्रदान करने का अधिकार सिद्ध योगी को ही मिलता है। इस दीक्षा के प्राप्त होने पर शैव गुरु, आचार्य कहलाते हैं।

<sup>2</sup>दीक्षा सम्बन्धी क्रियाओं में गुरु अपने शिष्य पर अनुग्रह (शक्तिपात) करते जाते हैं और अपने यौगिक सामर्थ्य के प्रभाव से और रहस्यात्मक तान्त्रिक मन्त्रों के प्रयोग से उसे स्वस्वरूप-प्रत्यभिज्ञा के प्रति प्रेरित करते हैं।

<sup>3</sup>दीक्षा-कर्म कई दिन तक चलता है। अन्तिम दिन शिष्य को एक अभिमन्त्रित शय्या पर रात्रि को सुलाया जाता है। दूसरे दिन प्रातःकाल उससे पूछा जाता है कि उसने स्वप्न में क्या-क्या देखा है? इस विधि को 'अधिवास-दीक्षा' कहते हैं। इससे गुरु निश्चय कर लेते हैं कि 'दीक्षा' कहाँ तक सफल हो गयी है। यदि शिष्य स्वप्न में सूर्य-चन्द्र आदि के निर्मल प्रकाश को देखता है तो 'दीक्षा' सफल है और अन्धकार आदि देखता है तो असफल।

### यागमण्डप व मण्डल<sup>4</sup>

दीक्षा के सभी प्रकारों का अनुष्ठान विशेष प्रकार से सजाये गये यागमण्डपों में किया जाता है। उन मण्डपों में विविध देवी-देवताओं को स्थापित किया जाता है।

1. भारतीय तन्त्रशास्त्र, पृ० 338

2. वहीं, पृ० 339

3. वहीं, पृ० 346

4. वहीं, पृ० 348-349

तन्त्रालोक में 'क्रिया-दीक्षा' के मुख्य तीन मण्डल बताये गये हैं—मध्यशूल, त्रिशूल और नवशूल।

तन्त्रालोक में मण्डल की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि मण्डल की सुन्दरता को देखने मात्र से ही प्रसन्न हुई देवियाँ हर्ष से नाच उठती हैं और मण्डल में स्थित अदीक्षित व्यक्तियों को स्वयं दीक्षा दे देती हैं।

शिष्य तीन दिन गुरुकुल में निवास करने के पश्चात् चौथे दिन देवताओं की पूजा करके गुरु-आज्ञा लेकर अपने घर जाता है।

### वीरशैव-दीक्षाविधि<sup>1</sup>

वीरशैव धर्म में भी आठवें वर्ष दीक्षा-संस्कार किया जाता है। इस संस्कार में पट्टाभिषिक्त शिवाचार्य अपने-अपने गोत्रसूत्र के अनुयायी शिष्यों को त्रिविध दीक्षा—(1) वेधा, (2) मान्त्री तथा (3) क्रिया-दीक्षा देकर उपासना के लिए भावलिंग, प्राणलिंग व इष्टलिंग प्रदान करते हैं और जप के लिए पंचाक्षर महामन्त्र का उपदेश देते हैं।<sup>2</sup> यह संस्कार लगभग 'उपनयन-संस्कार' के समान ही है। इसमें गायत्री मन्त्र के स्थान पर पंचाक्षर महामन्त्र तथा यज्ञोपवीत के स्थान पर इष्टलिंग प्रदान किया जाता है। यह दीक्षा-संस्कार स्त्रियों को भी दी जाती है।

### ( 1 ) वेधा-दीक्षा

गुरु के दृष्टिपात से और हस्तमस्तकसंयोग से शिष्य के मन में उसके चिन्मय स्वरूप का बोध कराने वाला संस्कारविशेष ही 'वेधा दीक्षा' है। इस दीक्षा-विधि से शिष्य का 'आणव मल' निवृत्त होता है और उसके मन में 'शिवोऽहं' भावना का उदय होता है। इसी भावना को 'भावलिंग' कहते हैं। वेधा दीक्षा के समय गुरु अपने दाहिने हाथ को छह बार षडक्षर मन्त्र से अभिमन्त्रित करके अपने हाथ को शिष्य के मस्तक पर रखते हुए—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।

अयं मे विश्वभेषजो ऽयं शिवाभिमर्शनः ॥ (ऋग्वेद, 10.60.12)

1. द्रष्टव्य (निबन्ध)—वीरशैवों के दीक्षादि विधि-विधान—डॉ० चन्द्रशेखर शि० कपाले, भूमतीय तन्त्रशास्त्र, पृ० 357-369
2. शैव एवं वैष्णव धर्म और दर्शन—डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, रेलवे क्रासिंग सीतापुर रोड, लखनऊ, पृ० 46



इस मन्त्र का पाठ करके समय, निःसंसार, निर्वाण, तत्त्व, अध्यात्म, तत्त्वविशोधन और तत्त्वबोधन नाम के सात प्रकार के उपदेशात्मक संस्कार करते हैं।

## ( 2 ) मान्त्री-दीक्षा

इस दीक्षा में गुरु अपने शिष्य के दाहिने कान में अत्यन्त गोपनीयता से पंचाक्षर महामन्त्र का उपदेश देते हैं। यह उपदेश 'मान्त्री-दीक्षा' कहलाती है। इसमें भी गुरु चित्तैकाग्रता, दृढ़व्रतता, पञ्चेन्द्रियार्पणा, अहिंसा, लिंगनिष्ठा, लिंगमनोलय और सद्योमुक्ति नाम के सात उपदेशात्मक संस्कार करते हैं। इन उपदेशात्मक मान्त्री-दीक्षा से शिष्य का 'मायीय मल' नष्ट हो जाता है और उसे यह ज्ञान हो जाता है कि "मैं चिद्रूप हूँ।" इसी ज्ञान को 'प्राणलिङ्ग' कहते हैं, जिसे गुरु अपने शिष्य को पंचाक्षर महामन्त्र के साथ प्रदान करते हैं।

## ( 3 ) क्रिया-दीक्षा

क्रिया-दीक्षा करते समय पाँचों आचार्यों (वीरशैव धर्म के संस्थापक श्री रेवणा-राध्य, श्री मरुलाराध्य, श्री एकोरामाराध्य, श्री पण्डिताराध्य तथा श्री विश्वाराध्य) के प्रतीक पञ्चकलशों, प्रधान शिवकुम्भ, गणेश आदि का सम्पूर्ण विधि-विधान से पूजन किया जाता है।

क्रिया-दीक्षा में भी गुरु अपने शिष्य का आज्ञा, उपमा, कलशाभिषेक, स्वस्तिकारोहण, भूतिपट्ट, आयत्त तथा स्वायत्त नामक सात उपदेशात्मक संस्कार करते हैं। स्वायत्त-दीक्षा के समय गुरु अपने शिष्य को 'इष्टलिङ्ग' प्रदान करते हैं, जिसे वह आजीवन गले में धारण किया रहता है।

### मण्डप

सर्वप्रथम एक मण्डप तैयार करके उसमें पञ्चाचार्यों के प्रतीक पञ्चकलशों, शिवकुम्भ, गणपति, नवग्रह स्थापन, स्वस्तिपुण्याहवाचन, नान्दी-समारोहना, अंकुरार्पण तथा होमकुण्ड आदि विधिविधान किये जाते हैं। इनमें पंच-कलश की स्थापना करना, एक प्रधान क्रिया है।

शैव-दीक्षा तन्त्रालोक, तन्त्रसार, रुद्रयामल, सिद्धान्तशिखामणि (रेणुकगीता), कारणागम, पारमेश्वरागम आदि ग्रन्थों में विस्तृत रूप से वर्णित है।



## क्षण-सम्पद् की अवधारणा

—पेमा तेनज़िन—

[ मनुष्य जीवन प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है, प्राप्त होने पर भी यदि आठ अक्षणों से युक्त स्थानों में उत्पन्न हो तो धर्म के अभ्यास का अवसर ही उपलब्ध नहीं होता। फलस्वरूप वह निर्वाण का भागी नहीं होता। बौद्ध ग्रन्थों में विशेषकर महायानी शास्त्रों में इन अक्षणों का वर्णन करते हुए प्राप्त मनुष्य जीवन को क्षण-सम्पत्ति के रूप में प्रतिपादित किया है। प्रस्तुत लेख में महायानी अवधारणा सम्मत क्षण-सम्पद् एवं उसके भेदों-उपभेदों तथा भोट जिङ्मा सम्प्रदाय द्वारा स्वीकृत कुछ विशिष्ट क्षण-सम्पदाओं की चर्चा की गई है। ]

शास्ता तथागत बुद्ध ने क्षण-सम्पद् मनुष्य जीवन को रत्न के समान दुर्लभ बताते हुए कहा कि—भिक्षुओ! संसार रूपी सागर के भीतर एक अंधा दीर्घायु कछुआ रहता है। वह सौ साल बाद एकबार जल के ऊपरी सतह पर पहुँचता है। उस महासागर में एक छिद्रवाला एक युग (जुआ) होता है, जो वायु के वेग से पूर्व एवं पश्चिम की ओर बहता रहता है और भिक्षुओ, एक समय आता है, जब अंधा कछुआ जल की ऊपरी सतह पर आता है तब उसकी गर्दन उस युग-छिद्र में प्रविष्ट हो जाती है। भिक्षुओ, किन्तु मैं कहता हूँ कि मनुष्य जन्म प्राप्त करना उससे भी अधिक दुर्लभ है।<sup>1</sup> भगवान् के इसी वचन को बोधिचर्यावतार में भी आचार्य शान्तिदेव ने इस प्रकार कहा है—

अत एवाह भगवान् मानुष्यमतिदुर्लभम् ।

महार्णवयुगच्छिद्रकूर्मग्रीवार्पणोपमम् ॥<sup>2</sup>

आचार्य नागार्जुन ने भी मनुष्य जीवन को दुर्लभ बताते हुए सद्धर्म के अभ्यास द्वारा इस जन्म को सफल बनाने का सुझाव अपने मित्र राजा गौतमीपुत्र सातवाहन को दी है—

महार्णवयुगच्छिद्रे हि कूर्मग्रीवार्पणाच्च मानुषं जन्म ।

तिर्यगादिसुदुर्लभं सफलीकुरु सद्धर्माभ्यासात्तरेन्द्र ॥<sup>3</sup>

1. आर्य कुसुमसञ्जयपिटकनाम महायानसूत्र, देगे कग्युर संग्रह-226, पुद्-ह, प० 302, भोट संस्करण; आर्यबोधिसत्त्वपिटकनाम महायानसूत्र, देगे कग्युर संग्रह-56, पुद्-ग, प० 70, भोट संस्करण; नन्दप्रव्रजितसूत्र, देगे कग्युर संग्रह-328, पुद्-स, प० 256, भोट संस्करण; सुहल्लेख व्यक्तपदाटीका, (पुनरुद्धार) पृ० 88
2. बोधिचर्यावतार, 4.20
3. सुहल्लेख, 59 का० (पुनरुद्धार)

अतएव, क्षण-सम्पद् जीवन की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है, इसे प्राप्तकर यदि कोई सांसारिक दुःखों से मुक्त होने हेतु पुरुषार्थ नहीं करता है अर्थात् मोक्ष की साधना में प्रयास नहीं करता है, तो ऐसा सुअवसर पुनः कैसे प्राप्त हो सकेगा? अतएव, सम्प्रति मनुष्य रूपी इस दुर्लभ नौका को प्राप्त कर दुःखपूर्ण संसार को पार करना चाहिए, क्योंकि पुनः इस प्रकार की नौका सदृश मनुष्य शरीर प्राप्त नहीं होगा।<sup>1</sup>

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य योनि मात्र में जन्म लेना अधिक दुर्लभ है, बल्कि उसमें भी क्षण-सम्पद् से युक्त मनुष्य जीवन का प्राप्त होना अत्यधिक दुर्लभ है। अन्यथा स्वार्थी, मिथ्यादृष्टि वाले एवं दूसरों को हानि पहुँचाने वाले मनुष्यों की कोई कमी नहीं है। दुर्लभ है तो समाज में सदाचारी, परोपकारी एवं सद्धर्म का अभ्यास करने वालों की।

क्षण-सम्पद् सम्पन्न मानव जीवन को ही वास्तविक रूप से सद्धर्म का सम्यग् पात्र कहा गया है। सूत्रों एवं शास्त्रों में सद्धर्म के सम्यग् अभ्यास के लिए व्यक्ति को आठ क्षणों एवं दस सम्पदाओं से युक्त होना आवश्यक कहा गया है। प्रस्तुत लेख में क्षण-सम्पद् के विभिन्न पक्षों को उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध तिब्बती विद्वान् ज्ञ पटुल रिनपोछे (1808-1887 ई०) द्वारा रचित 'गुरु समन्तभद्र के अमृत-वचन' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ के आधार पर दर्शाया गया है।<sup>2</sup>

सामान्यतया आठ अक्षणों में उत्पन्न न होकर सद्धर्म की साधना का अवसर प्राप्त होना क्षण है। अक्षण तो आठ अक्षण स्थान हैं<sup>3</sup> अर्थात् (अवसर प्राप्त न होना)। जैसे कहा गया है—

नरकप्रेततिर्यञ्चो म्लेच्छा दीर्घायुषोऽमराः ।

मिथ्यादृग्बुद्धकान्तारौ मूकताष्टाविहाक्षणाः ॥<sup>4</sup>

अर्थात् नरक, प्रेत, तिर्यक्, म्लेच्छ, दीर्घायु देव, मिथ्यादृष्टि, बुद्धरहित लोक एवं मूकता। तदनुसार नरक गति में उत्पन्न होने पर शीत, ताप के दुःखों से सदैव पीड़ित रहने

1. बोधिचर्यावतार, 7.14

2. कुनसङ्ग लामा-हि-ज्यल लुङ्ग, भोट संस्करण, मिरिग पेटुन खङ्ग, तिब्बत।

3. गण्डव्यूहसूत्र, पृ० 90, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1960; धर्मसंग्रह, पृ० 339 (म० सू० सं०); महाव्युत्पत्ति, पुट् चो, प० 7, भोट संस्करण; समाधिराजसूत्र, पृ० 371

4. बोधिचर्यावतारपञ्जिका, (उद्धृत) पृ० 5, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1960



की वजह से सत्त्व को धर्माचरण हेतु अवकाश नहीं होता है। भूख-प्यास के दुःखों से पीड़ित होने की वजह से प्रेतों को धर्माभ्यास का अवसर नहीं होता है। दूसरों द्वारा काम में लगाये जाने एवं परस्पर हिंसा के दुःखों से पीड़ित रहने के कारण तिर्यग् गति के सत्त्वों को धर्माभ्यास का अवसर प्राप्त नहीं होता है। बुद्ध शासनरहित प्रत्यन्त जनपद में उत्पन्न होने पर धर्माभ्यास का अवसर नहीं होता है। असंज्ञीभाव की वजह से व्यर्थ ही समय व्यतीत होने के कारण दीर्घायु देव गति के सत्त्वों को धर्माभ्यास का अवसर प्राप्त नहीं होता है। तैथिक अथवा मिथ्यादृष्टि वालों में उत्पन्न होने पर स्वसन्तति के मिथ्यादृष्टि से लिप्त होने के कारण धर्माभ्यास का अवसर प्राप्त नहीं होता है। अंधकारपूर्ण कल्प में उत्पन्न होने पर त्रिरत्न का शब्दमात्र भी सुनाई नहीं देता है, जिससे पुण्य एवं पाप का ज्ञान न होने से धर्माभ्यास का अवसर नहीं होता है। मूक के रूप में उत्पन्न होने पर विज्ञान के पूर्ण नहीं होने से धर्माभ्यास का अवसर नहीं होता है ॥

**तीन दुर्गतियाँ**—इन आठों में से तीन दुर्गतियों (नरक, प्रेत, तिर्यग्)<sup>2</sup> के सत्त्व तो अपने-अपने पूर्व संचित कर्मों के फलस्वरूप ताप, शीत, भूख, प्यास आदि दुःखों से पीड़ित होते हैं, जिससे उन्हें धर्माभ्यास का अवसर नहीं मिलता है।

**प्रत्यन्त जनपद**—हिंसा को धर्म मानने वाले म्लेच्छ सम्प्रदाय प्राणी हत्या को भी कुशल धर्म मानते हैं। प्रत्यन्त के म्लेच्छ भी प्रकृतितः मनुष्य की भाँति ही होते हैं, किन्तु बुद्धि की अकर्मण्यता से वे सद्धर्म की ओर उन्मुख नहीं होते हैं। इतना ही नहीं, वे अपने पूर्वजों की अनुचित परम्परा का अनुसरण करते हुए अपनी माँ को भी अपनी पत्नी बनाते हैं, जो धर्मानुकूल चर्या के विरुद्ध है। वे जीव-जन्तुओं को मारने तथा जंगली जानवरों का शिकार करने आदि अकुशल कार्यों में अत्यधिक निपुण होते हैं, इस प्रकार वे केवल पाप का आचरण करते हैं। फलस्वरूप, मृत्यु के बाद अधिकांशतया वे दुर्गति में जाते हैं। इसीलिए उस प्रत्यन्त स्थल को अक्षण कहा जाता है।

**असंज्ञी देव**—असंज्ञी देव ही दीर्घायु देव हैं। वे कुशल-अकुशल चित्त रहित संज्ञा वाले, ध्यान को मोक्ष के रूप में ग्रहणकर भावना करने के कारण असंज्ञीदेव में

1. सुहस्रलेख, श्लोक 63-64 (संस्कृत पुनरुद्धार), पृ० 92-93; सुहस्रलेखटीका (हिन्दी अनुवाद), पृ० 229-230, तिब्बती संस्थान; सद्धर्मचिन्तामणिमोक्षरत्नालंकार, पृ० 12-23 (हिन्दी अनुवाद) तिब्बती संस्थान (ति० सं०)।

2. अभिधर्मकोश, 3.1



उत्पन्न होते हैं तथा उस समाधि में अनेक महाकल्पों तक स्थित रहते हैं। अनन्तर आक्षेपक कर्म के क्षय हो जाने पर मिथ्या-दृष्टि के कारण पुनः दुर्गति में उत्पन्न होते हैं। इसलिए उन्हें धर्माभ्यास का अवसर प्राप्त नहीं होता है।

**मिथ्यादृष्टि**—सामान्यतया बौद्धेतर विपरीत दृष्टि वाले (तैर्थिकों) की कुदृष्टियों को मिथ्यादृष्टि कहा जाता है, वहाँ सद्धर्म के अभ्यास के लिए अवसर नहीं होता, क्योंकि स्वचित्त के मिथ्यादृष्टि से लिस होने पर सम्यक् धर्म के प्रति अधिमुक्ति उत्पन्न नहीं होती है।

**बुद्धरहित क्षेत्र**—अन्धकारयुक्त कल्प में उत्पन्न होना ही बुद्धकान्तर है। बुद्धोत्पादरहित क्षेत्र में उत्पन्न होने पर त्रिरत्न शब्द मात्र का भी श्रवण नहीं होता है तथा वह क्षेत्र सद्धर्म के आलोक से रहित होता है। इसलिए यह अक्षण-स्थान है।

**मूकता**—गूंगे के रूप में उत्पन्न होने पर स्व-सन्तति अकर्मण्य होती है, इसलिए वह धर्म के श्रवण, व्याख्यान, भावना एवं अभ्यास किसी में भी सक्षम नहीं होता है। सामान्य तौर पर वाणी से गूंगे को मूक कहा जाता है, इसलिए बोलने में सक्षम होना एवं उसके अर्थ को जानना—इस प्रकार के मनुष्य के लक्षणों से अपरिपूर्ण होने के कारण न केवल अक्षण-स्थान है, अपितु मन-इन्द्रिय के मूक अर्थात् अत्यन्त मूढ होने से धर्म के भावार्थ को न जानने के कारण भी वह अक्षण-स्थान है।

**दस सम्पद् धर्म<sup>1</sup>**

इसके दो भेद हैं—पाँच स्व-सम्पद् एवं पाँच पर-सम्पद्।

**पाँच स्व-सम्पद्**—जैसे आचार्य नागार्जुन ने कहा है—मनुष्य योनि, मध्यदेश में जन्म, पूर्ण इन्द्रियवाला, अविपरीत कर्मान्त एवं शासन के प्रति श्रद्धा सम्पन्न होना।<sup>2</sup>

**1. मानव शरीर प्राप्त होना**—मनुष्य योनि प्राप्त न होने पर धर्म से सम्पर्क नहीं होता है। अतः मनुष्य शरीर प्राप्ति आश्रय-सम्पद् है। सम्यक् धर्म की भावना के लिए मनुष्य जन्म प्राप्त होना अत्यावश्यक है। मनुष्य जीवन प्राप्त न होने की दशा में तीन दुर्गतियों में से पशुयोनि उत्तम है। फिर भी सम्प्रति लोक में प्राप्त जितने भी रूपवान् व दुर्लभ पशु हैं, उनसे

- 
1. प्रणिधान सोपान, श्लोक 2-3; बो० च० पं० (उद्धृत) पृ० 5; चिन्तामणिकोश सिद्धान्त; पूर्वयोग टिप्पणी, पृ० 59-60, ति० सं०; सद्धर्मचिन्तामणिमोक्षरत्नालंकार, पृ० 12-23 (हिन्दी अनुवाद), ति० सं०।
  2. प्रणिधान सोपान, श्लोक 2, भोट संस्करण।

कहा जाय कि यदि तुम सिर्फ एक बार “ॐ मणि पद्मे हूँ” मन्त्र का जाप कर दोगे तो तुम बुद्ध हो जाओगे। ऐसा कहने पर भी वे न सुन पाते हैं, न उन्हें अर्थावबोध होता है और न ही बोल पाते हैं। इतना ही नहीं, ठण्ड से सिकुड़ने पर भी सिकुड़कर बैठने के सिवा अन्य कोई छोटा सा भी उपाय नहीं सोच सकते।

इसके विपरीत मनुष्य होने पर, चाहे वह कितना ही कमजोर क्यों न हो, वह उक्त स्थिति में गुफा अथवा पेड़ के समीप जाता है। लकड़ी एकत्रित कर आग जलाकर हाथ-पैर गरम करता है। जब पशुओं के पास इतनी भी जानकारी नहीं होती है, तो फिर उनके द्वारा धर्माभ्यास के बारे में कहना ही क्या?

देव आदि का शरीर (आश्रय) सबसे उत्तम होता है, फिर भी वे लाक्षणिक प्रातिमोक्ष संवर के पात्र नहीं होते हैं, अतः सम्पूर्ण शासन को अपनी सन्तति में उत्पन्न करने का भाग्य उनमें नहीं होता है।

**2. मध्यदेश में जन्म लेना**—धर्मरहित प्रत्यन्त जनपद में पैदा होने पर धर्म से सम्पर्क नहीं होता है, अतः धर्म के शब्दों से युक्त मध्यदेश में जन्म ग्रहण करना देश-सम्पद् है। दक्षिण जम्बूद्वीप का मध्यदेश (केन्द्रबिन्दु) बोधगया है, जो भद्रकल्प के सहस्र बुद्धों के बुद्धत्व प्राप्त करने की स्थली है, कल्पों के विनष्ट हो जाने पर भी यह नष्ट नहीं होगा तथा महाभूतों के प्रकोप से रहित होगा तथा मध्य में बोधिवृक्ष से अलंकृत होगा—ऐसा कहा गया है। इसी को प्रधान (केन्द्रबिन्दु) मानकर आर्यदेश के जनपदों को भौगोलिक दृष्टि से मध्यदेश कहा गया है।

**3. पूर्णोन्द्रिय वाला**—इन्द्रिय पूर्ण न होने पर धर्माभ्यास में बाधा होती है। ऐसे दोषों से रहित होना परिपूर्ण इन्द्रिय-सम्पद् है। पाँच इन्द्रियों में से किसी एक के भी अपूर्ण होने पर भिक्षु संवर का पात्र नहीं होता। इतना ही नहीं, श्रद्धा एवं आदर के आधार बुद्ध की प्रतिमा आदि का दर्शन होने पर, श्रवण एवं चिन्तन विषयक वचनरत्न के सुलभ होने पर भी श्रवण आदि के भाग्य से युक्त न होने के कारण वह सम्यक् धर्म का उचित पात्र नहीं होता है।

**4. विपरीत कर्मान्त**—कर्मान्त विपरीत होने पर सदैव अकुशल कर्मों के आचरण करना धर्म के विपरीत है। कुशल के प्रति अधिमुक्ति होने के कारण यह चिन्तन-सम्पद् है। शिकारी व वेश्या आदि की जाति में पैदा होने के कारण प्रारम्भ (छोटी उम्र) से ही



विपरीत कर्मान्त में प्रविष्ट होने वाले व्यक्ति को विपरीत कर्मान्तक कहते हैं। वास्तव में, वे तीनों द्वारों से सदैव धर्म विरोधी क्रियाओं में प्रवृत्त होते हैं। ऐसे लोग इन जातियों में पहले उत्पन्न न होने पर भी अगले जन्मों में उत्पन्न हो सकते हैं, क्योंकि उनकी सन्तति सद्धर्म के विपरीत होती है।

**5. बुद्धशासन में श्रद्धा**—श्रद्धास्थान-बुद्धशासन के प्रति यदि श्रद्धा न हो, तो धर्म के प्रति चित्त आकर्षित नहीं होता है। चित्त को धर्म की ओर उन्मुख करने में सक्षम होने के कारण यह श्रद्धा-सम्पद् है। बुद्धशासन में श्रद्धा न होने पर संसार एवं दुर्गति के दुःखों से छुटकारा दिलाने का सामर्थ्य अन्य प्रभावशाली लौकिक देव, नाग तथा बाह्य तैथिक शासन आदि में नहीं होता है, चाहे उनके प्रति कितनी ही श्रद्धा क्यों न हो। आगम एवं अधिगम स्वभाव वाले बुद्धशासन के निमित्तों को जानकर उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना तो सम्यक् धर्म का सुपात्र होना है। अतः यह पाँचों स्व-सम्पदाओं में मुख्य है।

### पाँच पर-सम्पद्

पाँच पर-सम्पद् इस प्रकार हैं—बुद्धोत्पाद, उसके द्वारा धर्मोपदेश, शासन की स्थिति, अनुयायी एवं दूसरों के लिए करुणा ॥

**1. बुद्ध का उत्पाद होना (शास्त्र-सम्पद्)**—लोक में बुद्धोत्पादकाल अर्थात् प्रदीपकल्प में पैदा न होने पर धर्म का नाममात्र भी श्रवण नहीं होता है। किन्तु हम लोगों का इस समय बुद्धोत्पाद के कल्प में पैदा होने के कारण विशिष्ट शास्त्र से योग हुआ है, यह विशिष्ट शास्त्र-सम्पद् है।

**2. उनका धर्मोपदेश (सद्धर्म-सम्पद्)**—संसार में बुद्ध का आगमन होने पर भी यदि वे धर्मोपदेश नहीं करते, तो कोई लाभ नहीं होता, किन्तु उन्होंने कृपा करके तीन बार धर्मचक्र का प्रवर्तन किया, यह देशना सद्धर्म-सम्पद् है।

**3. शासन की स्थिति (काल-सम्पद्)**—धर्म की देशना की जाने पर भी शासन का विप्रलोप हो जाता, तो कोई लाभ नहीं होता, किन्तु शासन की स्थिति अभी भी मौजूद होने के कारण यह काल-सम्पद् है।

1. प्रणिधान सोपान, श्लोक 3; चिन्तामणिकोश सिद्धान्त; पूर्वयोग टिप्पणी, पृ० 59-60 ति० सं०; सद्धर्मचिन्तामणिमोक्षरत्नालंकार, पृ० 12-23 (हिन्दी अनुवाद) ति० सं०।

4. अनुयायी (सौभाग्य-सम्पद्)—शासन की स्थिति होने पर भी उसमें कोई प्रविष्ट न हुए होते, तो कोई लाभ नहीं होता, किन्तु शासन द्वार में प्रवेश करने वाले अभी भी होने के कारण यह सौभाग्य-सम्पद् है।

5. दूसरों के लिए करुणा (महाकरुणा-सम्पद्)—शासन द्वार में प्रवेश करने पर भी यदि अनुकूल प्रत्यय यानि कल्याणमित्र से गृहीत न हो तो धर्मतत्त्व का ज्ञान नहीं होता है, किन्तु उस (कल्याणमित्र) से गृहीत होने के कारण यह महाकरुणा-सम्पद् है। ये पाँचों अन्य कारणों की अपेक्षा से पूर्ण होने के कारण पाँच पर-सम्पद् कहे जाते हैं।

### जिङ्मा सम्प्रदाय की मान्यता

जिङ्मा सम्प्रदाय के महान् विद्वान् सर्वज्ञ लोडछेन रबजम के 'चिन्तामणिकोश सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ में इन अठारह क्षण-सम्पदाओं के अतिरिक्त भी आकस्मिक प्रत्ययों वाले आठ अक्षण तथा अगोत्र बुद्धि वाले आठ अक्षण का उल्लेख प्राप्त होता है,<sup>1</sup> जिनका यहाँ संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

### आकस्मिक प्रत्ययों वाले आठ अक्षण

पाँच विषयों का प्रकोप—शत्रुओं के प्रति द्वेष व बन्धुओं के प्रति राग चित्त आदि पाँच विषयवाले व्यक्तियों में कदाचित् ही सम्यग् धर्म के अभ्यास की बुद्धि उत्पन्न होती है, किन्तु, स्वसन्तति के वे पाँच प्रकार के विषय बलवान होने के कारण प्रायः वे उसके अधीन हो जाते हैं और सम्यग् धर्म का अभ्यास नहीं कर पाते हैं।

संमोह—अत्यन्त मूर्ख जाति वालों में प्रज्ञा का किञ्चिद् भी प्रकाश नहीं होता है, वह धर्मद्वार में प्रविष्ट होकर भी धर्मपदों के अर्थों को जानने में असमर्थ होता है। इस कारण उनमें श्रवण, चिन्तन एवं भावना करने का भाग्य नहीं होता है।

मार से ग्रस्त—दृष्टि एवं चर्या की विपरीत देशना करने वाले मार रूपी मित्र से धर लिए जाने के कारण बुद्धि मिथ्यामार्ग में प्रविष्ट हो जाती है, जिससे वह सम्यग् धर्म से विमुख हो जाता है।

आलस्य—धर्माभ्यास की इच्छा होने पर भी उसमें वीर्य (लगन) लेशमात्र भी नहीं होता है। ऐसे आलसी व्यक्ति आलस्य के वश से धर्माभ्यास नहीं कर पाते हैं।

1. यिशिन जोद क्यि डुबथा, लोडछेन सप्तकोशसंग्रह, धर्मा पब्लिकेशन, न्यूयार्क ।



**दुष्कर्म रूपी महासागर का टूटना**—धर्म के प्रति वीर्य (लगन) होने पर भी स्वसन्तति में गुणों का उत्पाद न करने वाले पापी लोग दुष्कर्मों के महासागर के टूटने पर स्वयं द्वारा किये गये कर्मफल को नहीं जान पाते हैं और इस कारण धर्म में विश्वास नहीं करते हैं।

**पराधीनता**—जो स्वयं स्वतंत्र नहीं है तथा दूसरों के द्वारा नौकर के रूप में काम में लगाये जाते हैं, उनमें धर्माभ्यास की इच्छा होने पर भी पराधीन होने के कारण उन्हें अभ्यास करने का अवसर प्राप्त नहीं होता है।

**भयत्राता** (धर्म को भयत्राता के रूप में ग्रहण करना)—इस जन्म के लिए भोजन, वस्त्र अथवा अन्य विघ्नों से भयभीत होकर धर्म में प्रवेश करने पर भी हृदय से पूर्णरूपेण धर्म में आस्था न होने के कारण एवं धर्म को वास्तविक शरण के रूप में न ग्रहण कर, पूर्व के पुरानी वासनाओं के कारण अधर्म चर्या करते रहने से धर्माभ्यास नहीं कर पाते हैं।

**धार्मिक (व्यक्ति) की भाँति होना**—धार्मिक व्यक्ति की भाँति क्रिया करते हुए वस्तु, लाभ-सत्कार एवं यश की प्राप्ति के लिए धर्म के प्रतिबिम्ब की भाँति दूसरों की दृष्टि में धार्मिक होने का ढोंग करते हुए, किन्तु अपने आप में वे सदैव इस जन्म के अभ्यर्थी होते हैं। अतः निर्वाण मार्ग से विरत होते हैं तथा धर्माभ्यास के लिए अक्षण होते हैं अर्थात् उन्हें धर्माभ्यास का अवसर प्राप्त नहीं होता है।

**अगोत्र बुद्धि वाले आठ अक्षण**

**प्रगाढ़ बन्धन वाला**—ऐहिक धन-सम्पत्ति, पुत्र, बान्धव आदि के प्रति प्रगाढ़ बन्धन से आबद्ध होने के कारण उनके हित सम्पादन के प्रयासों से व्यक्ति का चित्त विक्षिप्त होता रहता है, जिससे उन्हें धर्माभ्यास हेतु समय नहीं मिल पाता है।

**अत्यन्त दुष्टचर्या वाला**—स्व-सन्तति दुष्ट होने के कारण व्यक्ति में मानवता तिल के बीज के बराबर भी नहीं होती है, फलतः चर्या में विकास नहीं कर पाता है। सम्यग् कल्याणमित्र से योग होने पर भी ऐसे व्यक्ति (दुष्ट सन्तति वाले) को सद्धर्म के मार्ग में प्रविष्ट किया जाना कठिन है।

**संसार से खिन्न न होने वाला**—दुर्गति एवं सांसारिक दोषों का व्याख्यान किये जाने पर अथवा इस जन्म के किसी भी प्रकार के दुःखों से थोड़ा-सा भी भय उत्पन्न न होने के कारण ऐसे व्यक्ति को धर्म में प्रवृत्त होने का हेतु संवेग-चित्त पैदा ही नहीं होता है।

**अश्रद्धावान्—**सम्यक् धर्म एवं गुरु के प्रति किञ्चिद् भी श्रद्धा न होने पर शासन-द्वार निरुद्ध हो जाता है तथा उसका निर्वाण मार्ग में प्रवेश नहीं हो पाता है।

**अकुशल व पापचर्या वाला—**अकुशल व दुश्चर्याओं में आनन्दित होने के कारण तीनों द्वार (काय-वाक्-चित्त) शान्त नहीं होते हैं तथा वे सद्गुणों से रहित होकर धर्म से विमुख होते हैं।

**धर्मरहित चित्त वाला—**कुशल (पुण्य) एवं सद्धर्म के आलोक से रहित व्यक्ति वैसा ही होता है जैसा कुत्ते के सामने घास रखी हो अर्थात् धर्म में उत्साह न होने से स्वसन्तति में गुणों का उत्पाद नहीं होता है।

**संवर का उल्लंघन करने वाला—**साधारण यान में प्रवेशकर चित्तोत्पाद एवं संवर से च्युत होने पर दुर्गति के अतिरिक्त गमन स्थल न होने के कारण वह अक्षण स्थान से मुक्त नहीं होता है।

**समय (प्रतिज्ञा) को दूषित करने वाला—**मन्त्रयान में प्रविष्ट होकर गुरु एवं गुरु-भाइयों के प्रति समय से च्युत होने पर स्व-पर दोनों के विनाश का कारण होने से सिद्धि का सौभाग्य नहीं होता है। ये आठ सद्धर्म से दूर करने वाले हैं, अतः इन्हें निर्वाण प्रदीप को बुझाने वाला कहा है।

सम्प्रति इस प्रकार का जो दुर्लभ क्षण-सम्पद् (मनुष्य शरीर) प्राप्त हुआ है, उसे व्यर्थ में न गवाँकर किसी प्रकार सद्धर्म का अभ्यास किया जाना चाहिए। यदि स्वयं में अपूर्णता पाते हों, तो विविध उपायों द्वारा पूर्ण होने हेतु प्रयत्न करना चाहिए। सदैव स्व-सन्तति में इन क्षण-सम्पद् गुणों की पूर्णता व अपूर्णता के परीक्षण में प्रयासरत होना चाहिए, क्योंकि कहा गया है कि इन क्षण-सम्पदाओं के अपूर्ण होने की अवस्था में वास्तविक धर्माभ्यास का अवसर नहीं होता है।

इसलिए स्व-सन्तति का सम्यक् परीक्षण करने पर हम पाते हैं कि अठारह क्षण-सम्पद् से पूर्ण होना निश्चित रूप से कठिन है। क्षणों से भी दस सम्पदाओं की पूर्णता अधिक कठिन है। मनुष्य होकर इन्द्रियों से पूर्ण, मध्यदेश में उत्पन्न होना मात्र तो सम्भव है, किन्तु विपरीत कर्मान्त व मिथ्या मार्ग में प्रविष्ट होकर यदि जिनशासन में श्रद्धा नहीं रखे, तो वह केवल तीन स्व-सम्पद् वाला ही होगा। मिथ्या मार्ग में पतित न होने पर वह चार स्व-सम्पदाओं से युक्त होता है, किन्तु अविपरीत कर्मान्त अत्यन्त कठिन है, क्योंकि



तीनों द्वारों (काय, वाक्, चित्त) द्वारा जो भी अकुशलकर्म करता है, वह इस जन्म को लक्ष्य कर किया जाता है। अतः इस जन्म में भद्र व विद्वान् आदि के रूप में प्रसिद्ध होने पर भी वह वास्तव में विपरीत कर्मान्त वाला ही होता है।

पाँच पर-सम्पद् में भी बुद्धोत्पाद, धर्मदेशना, शासन की स्थिति सम्पद् से युक्त होने पर भी यदि व्यक्ति शासन द्वार में प्रवेश नहीं करता है, तो वह तीन सम्पद् वाला ही होता है। शासन द्वार में प्रवेश होने पर भी धर्म की परिपृच्छा (अन्वेषण) एवं श्रवण करने मात्र से शासनद्वार में प्रवेश नहीं माना जाता है। निर्वाण मार्ग में प्रवेश हेतु सम्पूर्ण संसार को सारहीन जानने वाली अकृत्रिम संवेग चित्त का उत्पाद तथा महायान मार्ग में प्रविष्ट होने हेतु अकृत्रिम बोधिचित्त का उत्पाद किया जाना आवश्यक है। यदि त्रिरत्न के प्रति अवैवर्तिक श्रद्धा उत्पन्न न हो, तो मात्र स्वाध्याय करने एवं पीत-चीवर धारण करने से यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि वह शासनद्वार में प्रवेश कर गया है। अतः क्षण-सम्पद् के इन स्वभावों को यथावत् अवपिरीत रूप में जानकर उनका परीक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है।

आर्यवज्रविदारणा नाम धारणी

ĀRYAVAJRAVIDĀRAṆĀ NĀMA DHĀRAṆĪ



## आदर्श प्रति

धारण्यादिसंग्रह

राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल ।

सं० - 3/589

पत्र संख्या - 1-335 (144a-145a एवं 220b-222b)

लिपि - देवनागरी

भो० - རྡོ་རྗེ་ལྷ་མ་པར་འཇོམས་པ་ཞེས་བུ་བཅི་གཟུངས།

(तो० 949)

## आर्यवज्रविदारणा नाम धारणी

१ॐ नमो भगवत्यै आर्यवज्रविदारणायै ।

एवं मया श्रुतमेकस्मिन् समये भगवान् २वज्रेषु विहरति स्म । सर्वशरीरं वज्रमयमधिष्ठाय वज्रपाणिश्च बुद्धानुभावेन वज्रसमाधिं समापन्नः । ततो वज्रपाणिः [सर्व]बुद्धानुभावेन सर्वबुद्धाधिष्ठानं [सर्वबोधिसत्त्वाधिष्ठा]नञ्च महाक्रोधसम्भूतं वज्रसारमभाषते स्म । अच्छेद्यमभेद्यं सत्यं दृढं स्थिरं सर्वत्राप्रतिहतं सर्वत्रापराजितं सर्वसत्त्वविद्रावणकरं सर्वसत्त्वोत्सादनकरं सर्वविद्याच्छेदनकरं सर्वविद्यास्तम्भनकरं सर्वकर्मविध्वंसनकरं सर्वकर्मविद्रावणकरं सर्वग्रहोत्सादनकरं सर्वग्रहविमोक्षणकरं सर्वभूताकर्षणकरं [सर्वभूतनिग्रहणकरं] ३सर्वविद्यामन्त्रकर्मपरायणकरं असिद्धानां सिद्धकरं सिद्धानाञ्चाविनाशनकरं [सर्वकामप्रदानकरं] ४सर्वसत्त्वानां रक्षणकरं शान्तिकं पौष्टिकं सर्वसत्त्वानाञ्च स्तम्भनकरं सर्वसत्त्वानां च मोहनकरम् इमं मन्त्रं महाबलं बुद्धानुभावेन ५यक्षेन्द्रो ६वज्रपाणिः प्रत्यभाषत् ।

७ॐ नमो रत्नत्रयाय । नमश्चण्डवज्रपाणये । महायक्षसेनापतये । तद्यथा—  
ॐ त्रुट त्रुट त्रोटय त्रोटय स्फुट स्फुट स्फोटय स्फोटय ८घुर्ण घुर्ण घुर्णापय

- 
१. नमः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वेभ्यः-भो.
  २. वज्रमेरुशिखरकूटागारे-क.
  ३. सर्वविद्यामन्त्रकर्मकरं-क.
  ४. सत्त्वानाञ्च-क.
  ५. यक्षेन्द्रो-नास्ति-भो.
  ६. वज्रपाणिं प्रत्यभाषते स्म-क.
  ७. 'ॐ'-नास्ति भो. सर्वत्र ।
  ८. धुन धुन धुनापय धुनापय-क.



घूर्णापय सर्वसत्त्वानां <sup>1</sup>विबोधय विबोधय <sup>2</sup>सम्बोधय सम्बोधय भ्रम भ्रम <sup>3</sup>संभ्रामय  
संभ्रामय <sup>4</sup>सर्वभूतानि कुट कुट संकुटय संकुटय सर्वशत्रून् घट घट <sup>5</sup>संघाटय  
संघाटय सर्वविद्या वज्र वज्र <sup>6</sup>स्फोटय वज्र वज्र कट वज्र वज्र मट वज्र वज्र मथ  
वज्र वज्र अट्टहासनीलवज्रसुवज्राय स्वाहा। <sup>7</sup>ॐ हे फुल्लु निरुफुल्लु निगृह  
कुल्लु मिलि चुल्लु कुरु कुल्लु वज्रविजयाय स्वाहा। ॐ किलिकीलाय स्वाहा।  
ॐ कट कट मट मट रट रट मोटन प्रमोटनाय स्वाहा। ॐ चर निचर हर हर  
सर सर मारय वज्रविदारणाय स्वाहा।

ॐ छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द महाकिलिकीलाय स्वाहा। ॐ बन्ध बन्ध  
क्रोध क्रोध वज्रकिलिकीलाय स्वाहा। ॐ चुरु चुरु चण्डकिलिकीलाय स्वाहा।  
ॐ त्रासय त्रासय वज्रकिलिकीलाय स्वाहा। ॐ हर हर वज्रधराय स्वाहा। ॐ  
प्रहर प्रहर वज्रप्रभञ्जनाय स्वाहा। ॐ मतिस्थिरवज्र श्रुतिस्थिरवज्र प्रतिस्थिरवज्र  
महावज्र अप्रतिहतवज्र अमोघवज्र ऐहिवज्र शीघ्रं वज्राय स्वाहा। ॐ धर धर  
धिरि धिरि धुरु धुरु सर्ववज्रकुलमावर्ताय स्वाहा। <sup>8</sup>अमुकं मारय फट्।

ॐ नमः समन्तवज्राणाम्। सर्वबलमावर्तय महाबले कटबले ततले  
अचले मण्डलमये अतिवज्र महाबले वेगरण अजिते ज्वल ज्वल तिटि तिटि  
ति(पिं)ङ्गले दह दह तेजोवति तिलि तिलि बन्ध बन्ध महाबले वज्राङ्कुशज्वालाय  
स्वाहा।

- 
1. बोधय बोधय-भो.
  2. संसोधय संसोधय-क.
  3. भ्रामय भ्रामय-इत्यधिकम्-क.
  4. सर्वबुद्धबोधिनि-2-क.
  5. संघट संघट-क.
  6. स्फोटय स्फोटय-क.
  7. भो. सर्वत्र 'ॐ' नास्ति।
  8. मम सर्वशत्रून् मारय स्वाहा-क.

ॐ नमो रत्नत्रयाय । नमश्चण्डवज्रपाणये महायक्षसेनापतये । तद्यथा—ॐ  
हर हर वज्र मथ मथ वज्र धुन धुन वज्र दह दह वज्र पच पच वज्र धर धर वज्र  
धारय धारय वज्र दारुण दारुण वज्र छिन्द छिन्द वज्र भिन्द भिन्द वज्र हूँ फट् ।

ॐ नमश्चण्डवज्रक्रोधाय । ॐ हुलु हुलु तिष्ठ तिष्ठ बन्ध बन्ध हन हन  
अमृते हूँ फट् । हृदयोपहृदयमूलमन्त्रः ॥

सर्वपापक्षयं कृत्वा सर्वदुःखविनाशनम् ।

<sup>1</sup>मूलं तत् सर्वमन्त्राणां सर्वश्रीसमलङ्कृतम् ॥

उपशान्तेन्द्रियो भूत्वा <sup>2</sup>नष्टाश्रयहतायुषः ।

अलक्ष्म्या परिविष्टाश्च देवताश्च पराङ्मुखाः ॥

कान्ता प्रियवियोगे च दुष्टग्रह उपद्रुतः ।

अन्योन्या\*[ नामर्थनाशं तथा ] व्यसनमेव च ॥

\*[ शोकायासोपद्रुतानां भयव्यसनमेव च ] ।

ग्रहनक्षत्रपीडा वा काखोर्दा दारुणा ग्रहाः ।

पापकं पश्यते स्वप्ने शोकायाससमुच्छ्रितम् ॥

तच्च सुस्नातशुचिना श्रोतव्यं सूत्रमुत्तमम् ।

शृण्वन्तु ये ( ते ) इदं सूत्रं गम्भीरं बुद्धगोचरम् ॥

प्रसन्नचित्तसुमनाः शुचिवस्त्रैरलङ्कृताः ।

ते च सर्वे च दुष्टात्मा उपसर्गा सुदारुणाः ॥

तेजोऽस्य च प्रशाम्येत समस्ता सर्वमाप्नुता<sup>3</sup> ।

आयुश्च बद्धते पुण्यं सर्वपापैर्विमोक्षिता ॥

1. मनोभिः क., गृहीतस्तु भोटानुसारी ।

2. नष्टायुषः-भो.

\* [ ] क. नास्ति गृहीतस्तु भोटानुसारी ।

3. सर्वसत्त्वाः-भो.



मणिसर्षपदूर्वाभिरलाक्षतसचन्दनैः ।

वज्रग्रन्थितपुष्पैश्च जलामापूर्यकाञ्चनम् ॥

घटं तु रजतं चापि शुचिवस्त्रेण वासितम् ।

एकविंशतिवारं वा तथा चाष्टोत्तरं शतम् ॥

जपेद्विदारणं मन्त्रं यः <sup>1</sup>स्नायात् पार्थिवः सदा ।

<sup>2</sup>एवं यः कुरुते नित्यं तस्य सम्पद्यते शुभम् ॥

इदमवोचद् भगवानात्तमनास्ते च भिक्षवः सा च सर्वावती पर्षत्  
सदेवमानुषासुरगरुडगन्धर्वश्च लोको भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्निति ।

॥ आर्यवज्रविदारणा नाम धारणी समाप्ता ॥

1. पठेत्-क.

2. इतः परं भोटे नास्ति ।

## ABSTRACT OF ARTICLES

### *Stotras*

1-4

We present in this issue of our journal three stotras viz. I. Bhagavannāmāṣṭottaraśatastotram, taken from *Sarvatathāgatātattvasaṅgraha*, II. Sarvatathāgatakāyavākcittastotram and III. Mahāvajradharastutiḥ from the 17th paṭala of the *Guhyasamājatantra*.

### *Apabhraṁśa in Buddhist Tantric Literature*

5-8

In earlier issues of this journal we had announced publication of such apabhraṁśa tracts which are found in tantric works; in the same sequel we had published the apabhraṁśa materials of the *Vajravārāhikālpamahātānta*, up to its 7th paṭala. We continue the same in this issue.

### *Collection of Lost Bauddha Vacanas*

9-40

In the absence and non-availability of the great mass of Buddhist Tantric works and their glossaries, we could not give a detailed account of such important material in our previous issues of journal. Presently, however, we are publishing the relevant vacanas from the published *Ṣaṣṭhasrikāhevajraṭīkā*, (available in 8 chapters only) brought out from Pratibha Prakashan, Delhi. It will be our effort to publish more related materials whenever we come across them.

### *Glossary of Buddhist Technical Terms*

41-52

A number of technical terms are given in this issue, as elicited from *Āryamañjuśrīmūlakalpa*. As it is well known *Āryamañjuśrīmūlakalpa* is a foremost "āgama" text of the Kriyātantra. It contains 55 paṭalas. We have consulted 15 paṭalas only. The residual matter will be published in the next few issues.

### *Mūrti and Maṇḍala in Āryamañjuśrīmūlakalpa*

53-60

Some modern scholars have expressed their scepticism regarding such elements in the Buddha-śāsana as mantra (magical spell), mūrti (image), mudrā (posture) and maṇḍala (encirclement), which they think



were later additions. But close examination of the *Mañjuśrīmūlakalpa* text familiarises us with four prominent cultural streams in ancient times as I. The Indus-civilization or Vedic culture, II. Śramaṇa-saṃskṛti, III. Lokāyata (materialist) and IV. Esoterism or Tantra discipline. In this perspective the author has reflected on the afore-mentioned elements of iconography and rituals based upon infallible evidence of the *Mañjuśrīmūlakalpa* treatise which is a well known text of Vajrayāna school.

#### *Triratnamaṅgalagāthā*

61-76

The auspicious hymn related to the trio and the twelve great feats in the life of Buddha. It is extracted from Tantra varga and *Dhāraṇīsamgraha* in the collection of sūtra under bkaḥ-ḥgyur. It is difficult to decipher it being in the bkaḥ-ḥgyur alone, when we have a statement in the concluding part of bstan-ḥgyur related with *maṅgalagāthā* or tracts ascribed to Nāgārjuna, who is definitely the author of those *tracts*. It is a matter of research if the *gāthā* should be placed in Buddha-vacana or its commentarial and expansionist tradition of the śāstras. Can it be syncretism to classify this text both as Buddha-vacana or śāstra-based on it.

The essay sheds-light on this problem before it proceeds to explain. Colophon of this work designating it as *triratna-dvādaśalīlāmaṅgalagāthā*, is self-explanatory as having three verses relating to Triratna (three gems) and sixteen verses relating the “dvādaśalīlā”. Its opening three verses related with the *maṇḍalavidhi* and *abhiṣekavidhi* of the esoteric discipline are cited in many works e.g. ācārya Jagaddarpaṇa as quoted in *vajrācāryakriyā-samuccaya* and ācārya Abhayākaragupta in his *maṇḍalavidhi-vajrāvalī*. Both the works are available in Sanskrit. Seeing its feasibility we are giving the three verses in their Tibetan and Sanskrit versions for comparison. A Hindi translation of the Sanskrit version has been added with proper annotations.

#### *Sources of Rare Buddhist Texts*

77-97

We have reported 68 important manuscripts in our 39th issue of the journal. We are, subsequently, giving the inventory of 79 manuscripts in this issue.

*Deties Emanated from the Pañca-Buddha*

99-110

The essay is a brief review of the nature and physical appearance of various gods and goddesses emanating from the Pañca-buddhas. There are mythological descriptions of the visualization and emanations of male and female deties in the Buddhist Tantras. The five Buddhas or Tathāgatas are known to be guardian of particular family of which they are designated as kuleśas. A general feature of most tantric deties has in their top of the crown a small figure of the Buddha to whose family they belong.

*Accomplishment : Their Nature and Main Divisions in Buddhist Tantras*

111-128

Accomplishment for which a generic name is “siddhi”, is a well established factor of Tantra, which introduces us to gross reality and its relative acquiescence with transcendence. Accomplishment is its principal aim. The present essay expounds the meaning and efficacy of such terms as abhijñā (intuition), prātihārya (miracles), vaśitā (empowerment) and aiśvarya (prosperity). A discussion of these terms has lead the author to comprehend siddhi (accomplishment) in its eight aspects as khadga, pādalepa etc. and aṇimā, mahimā, laghimā, prāpti etc. It is understood that these are worldly accomplishments. Special accomplishments are supra-mundane or lokottarasiddhis, which is also briefly elaborated.

*General and Concise Arrangement of Tantra*

129-140

Under this title, a translation had been given serially in the pervious issues of *Dhīh*, of the treatise composed by Buston, namely, “The Key Opening the Door of the Treasures of Jewels”. In this issue, under the title “The Spread of Tantra”, is being given a concise arrangement of Tantra. It consists of translation of the subject matter of Yogatantra and its divisions.

*Dīkṣā : Initiation in Buddhist and Non-Buddhist Systems*

141-148

We have commented on dīkṣā (initiation) in Buddhist and non-Buddhist system - philosophies in the previous issues of the journal. Presently, we have discussion on Vedic ritual of initiation under various schools of śaivism of Kashmira, including the vīraśaiva. The author has



elicited the importance and necessity of dīkṣā in its various aspects of principal division, time of initiation, the maṇḍapa in which the ritual is performed and ancillary matter.

*Conception of Kṣaṇa-Sampad*

149-158

It is difficult to take birth as a human being. The birth alone is no guarantee that the person will lead a virtuous life, not to say, of attainments (of nirvāṇa). The mahāyāna texts are explicit about birth in a noble-circumstance. The idea explained with symbolic illustrations occurs in the discourses of the śāstā Buddha. The best mode of improving upon our conditioned existence is to sublimate our enlightened consciousness in a rare life cycle.

*Āryavajravidāraṇā Nāma Dhāraṇī*

159-164

In the previous issue of *Dhī* we had brought out *āryagrahamāṭṛkā nāma dhāraṇī*. In that sequel we are publishing *āryavajravidāraṇā nāma dhāraṇī* of two different readings of the text found in the *Dhāraṇyādisaṃgraha* (folios 144a-145a and 220b-222b) there is slight difference in their lexical composition. They have been restituted with their Tibetan translation, ascertaining the correct reading.



## ཙམ་གྱི་དོ་སྤྱོད་མདོར་བསྟུན།

བཙམ་ལྷན་འདས་ལ་མཚན་བརྒྱ་ཙ་བརྒྱད་ཀྱི་སྒོ་ནས་བསྟོད་པ། ༡ - ༧

དུས་དེ་བ་འདོན་ཐངས་འདིའི་ནང་འཁོད་པའི་བཙམ་ལྷན་འདས་ལ་མཚན་བརྒྱ་ཙ་བརྒྱད་ཀྱི་སྒོ་  
ནས་བསྟོད་པ་ཞེས་པ་འདི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བསྟུན་པའི་རྒྱུད་ནས་  
ལུང་ཞིང་། (ཤོག་གྲངས་ ༡༡ - ༡༩ ) དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྐྱབས་གསུང་ཐུགས་ཀྱི་བསྟོད་པ་དང་།  
རྩ་རྒྱུ་འཆང་ཆེན་པོའི་བསྟོད་པ་གཉིས་ནི་དཔལ་གསང་བ་འདུས་པའི་རྒྱུད་ཀྱི་ལེའུ་བཅུ་བདུན་པའི་  
ནང་ཚན་ཆོགས་སུ་བཅད་པ་ ༡ - ༩ བར་དང་། ཡང་ཆོགས་སུ་བཅད་པ་ ༡༢ - ༡༣ བར་བྱས་  
བཏོན་བགྱིས་ཏེ་དཔར་བསྟན་ཞུས།

ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་དུ་གསལ་བའི་བྱར་ཆག་གི་སྐད། ༡ - ༤

རྒྱུད་དེ་བ་ཀྱི་འདོན་ཐངས་སྤྲ་མ་རྣམས་སུ་དེ་སྤྲ་དཔར་བསྟན་མ་ཟེན་པའི་རྒྱུད་གཞུང་རྣམས་  
སུ་གསལ་བའི་བྱར་ཆག་སྐད་ཀྱི་གཞུང་ཆོག་རྣམས་བྱར་འདོན་བྱས་ཏེ་མཁས་དབང་རྣམས་ཀྱི་སྤྱན་  
སྤྲ་གསལ་སྟོན་ཡོང་བའི་རེ་འདུན་ཞུས་པ་ལྟར་དུས་དེ་བ་འདོན་ཐངས་སོ་བརྒྱད་པའི་ནང་རྩ་རྒྱུ་  
མོའི་རྟོག་པ་ཆེན་མོའི་རྒྱུད་ཀྱི་ལེའུ་བཅུ་བདུན་པའི་བར་གསལ་བའི་བྱར་ཆག་གི་སྐད་ཀྱི་ཆ་ཤས་རྣམས་  
བཏོན་ཡོད་ལ། འདིར་དེའི་རྩིས་ཀྱི་ཆ་ཤས་རྣམས་བཏོན་ཡོད།

ནང་པའི་གསུང་རབ་རྣམས་པ་ཁག་སྟེགས་བཏུས། ༢ - ༧༠

ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་དང་དེའི་རྒྱུད་འབྲེལ་ཁག་དཔར་དུ་ཐོན་པ་དཀོན་པའི་དབང་གིས་རྒྱུ་འདོན་  
ཐངས་སྤྲ་མ་རྣམས་སུ་འགོ་བརྩོད་འདིའི་འོག་སྐབས་འགར་འདི་དང་འབྲེལ་བའི་སྟོར་བཏོན་ཐུབ་པ་



བྱང་ཡོད། ད་ལན་སློབ་དཔོན་དོན་མཛད་པའི་ཀྱའི་དོན་མཛད་པའི་དོན་གྱི་ཆེར་འབྲེལ་  
 བ་ལས་ལེའུ་བརྒྱད་ཁོ་ན་ལ་སྐལ་ཉི་ཤེན་ཇེ་(Malati J. Shendge)ཡིས་ཞུས་བསྐྱེགས་བྱས་པ་  
 ཞིག་དེ་ལྟེ་བུ་དཔེ་སྐྱེན་ཁང་ནས་དཔར་བསྐྱེན་ཞུས་པ་དེའི་ནང་གཞུང་གཞན་གྱི་ཆོག་ལུང་འབྲེན་  
 མཛད་པའི་གཞུང་ཆོག་གི་ཆ་ཤས་ཁག་སྟོགས་བསྐྱེན་བྱས་ཏེ་བཞོད་ཡོད།

ནང་པའི་བྱན་མིན་ཆོས་ཆོག་ཁག་གི་དགོངས་དོན།

༧༡ - ༧༢

དུས་དེའི་འདོན་ཐངས་འདིའི་འགོ་བརྒྱད་འདིའི་འོག་འཕགས་པ་འཇམ་དཔལ་ཙ་ཆུད་ཀྱི་རྟོག་  
 པ་ཞེས་བྱ་བའི་ཆུད་གཞུང་ལས་བྱང་བའི་བྱན་མིན་ཆོས་ཆོག་གས་ཐ་སྐད་རྣམས་སྟོགས་བསྐྱེན་བྱས་  
 ཡོད། ཙ་ཆུད་འདི་ནི་བྱ་ཆུད་གཙོ་བོར་སྟོན་པའི་གཞུང་ཡིན་ཅིང་། འདིའི་ནང་ལེའུ་ཁྲོན་བསྐྱེམས་ལྷ་  
 བཅུ་ང་ལྷ་ཡོད་པ་ལས། ལེའུ་ལྷ་མ་བཙུ་ལེའི་ནང་དུ་གསལ་བའི་ཆོས་ཆོག་རྣམས་སྟོགས་བསྐྱེན་བྱས་  
 ཡོད། དེའི་འབྲེལ་རྣམས་སུ་གསལ་བའི་ཆོས་ཆོག་ཁག་དུས་དེའི་འདོན་ཐངས་ཇེས་མ་རྣམས་སུ་  
 རིམ་པས་དགོངས་ཆུ་ཡིན།

འཕགས་པ་འཇམ་དཔལ་གྱི་ཙ་བའི་རྟོག་པའི་ཆུད་དུ་གསལ་བའི་

སྐྱ་དང་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་སྟོར།

༧༣ - ༩༠

དེང་དུས་ཀྱི་མཁས་དབང་པལ་ཆེ་བས་ནང་པའི་བསྐྱན་པར་གསང་སྟགས་དང་། སྐྱ་དང་། བྱག་  
 ཆུ་དང་། དཀྱིལ་འཁོར་སོགས་ཀྱི་སྟོར་རྣམས་ཕྱིས་སུ་གཞན་གྱིས་བསྐྱན་པ་ཞིག་དུ་འདོད། འོན་ཀྱང་  
 འཇམ་དཔལ་ཙ་ཆུད་ལ་བསམ་ཞིབ་བྱས་ཆོ་ཆུད་གཞུང་འདིའི་ནང་སྟོན་དུས་ནས་ཆུ་གར་ནང་དར་  
 བྱེད་ཆེ་བའི་རིག་གཞུང་གཙོ་བོ་བཞིའི་ངོ་སྟོན་གནང་ཡོད། དཔེར་ན། སི་རྒྱའི་རིག་གཞུང་དར་བྱེད་  
 དང་། རིག་བྱེད་དང་དགེ་སྟོང་གི་ལེགས་སྦྱང་དང་། འཇིག་རྟེན་རྒྱང་འཕེན་པ་དང་སྟགས་ཀྱི་ལེགས་  
 སྦྱང་བཅས་ཡིན། འདོན་ཐངས་འདིར་འཇམ་དཔལ་གྱི་ཙ་བའི་རྟོག་པའི་ཆུད་ལ་གཞི་འཛིན་པའི་སྟོ་

ནས་གནང་དུས་ཀྱི་ནང་པའི་སྤྱི་ཚོགས་ནང་སྤྱི་ཉེན་གྱི་བཅད་སྤྱོད་ལ་རྟོག་ཞིབ་དང་འབྲེལ་སྤྱོད་དང་  
སྒྲགས་དང་། སྤྱོད་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པའི་བཟོད་གཞིའི་ཐོག་གསལ་སྟོན་བྱས་ཡོད།

དཀོན་མཆོག་གསུམ་གྱི་བགྱིས་ཀྱི་ཆོགས་སུ་བཅད་པ།

57 - 75

མཆོག་གསུམ་དང་མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་དང་འབྲེལ་བའི་གཤིས་བཟོད་ཀྱི་གཞུང་ཁྱད་དུ་  
འཕགས་པ་ཞིག་བཀའ་འགྱུར་རྒྱུད་འབྱུང་དང་། གཟུངས་བསྐྱུས་གཉིས་སུ་སངས་རྒྱུ་གྱི་བཀའ་  
ཡིན་པ་ལྟར་དུ་བཀོད་ཡོད་ཀྱང་། བསྟན་འགྱུར་ཁག་གི་ཞབས་ལ་བསྟོ་སྟོན་དང་བགྱིས་ཀྱི་ཆོགས་སུ་  
བཅད་པའི་སྟོར་བཀོད་པའི་ཚོ། གཞུང་འདི་སྟོབ་དཔོན་ལྷ་སྐྱབ་ཀྱིས་མཛད་པའི་བསྟན་བཅོས་ཡིན་  
སྟོར་གསལ་ཡོད་པས། དོན་དངོས་པོའི་གནས་ཚུན་ལ་གཞུང་འདི་བཀའ་བསྟན་གང་ཡིན་དང་།  
གཞུང་གཅིག་ཉིད་དེ་གཉིས་ཀའི་ནང་རིམ་པ་བཞིན་བཀའ་བསྟན་སོ་སོའི་ངོ་བོའི་རྒྱལ་དུ་འཁོད་  
དགོས་པའི་རྒྱ་མཚན་གང་ཡིན་སོགས་དབྱུད་གཞི་ཆེ་བའི་གནད་དོན་འདི་དག་ལ་ངེས་གཏན་  
འཁེལ་བའི་རྒྱ་མཚན་དང་། ཚད་མས་བྱངས་པའི་ངེས་པ་རྣམ་དག་འདྲོངས་ཐུབ་པ་དཀའ་ཡང་།  
དོགས་སྟོང་དང་འབྲེལ་བའི་དབྱུད་པ་ཞིབ་རྒྱས་བྱས་ཡོད།

སྤྱིར་གཞུང་འདིར་‘དཀོན་མཆོག་གསུམ་དང་མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་བགྱིས་ཀྱི་ཆོགས་སུ་བཅད་  
པ་’ཞེས་གསལ་བ་ལྟར་གྱི་ཆོགས་བཅད་བཅུ་དགའི་བདག་ཉིད་ཅན་གྱི་གཞུང་འདིའི་ནང་གསེས་  
མཆོག་གསུམ་དང་འབྲེལ་བའི་ཆོགས་བཅད་དང་པོ་གསུམ་སྒྲགས་ཀྱི་དཀྱིལ་ཆོག་དང་། དབང་ཆོག་  
མང་པོའི་ནང་ལོགས་སུ་བྱངས་བཀོད་མཛད་ཡོད་པ་ལྟར། སྟོབ་དཔོན་འགྲོ་བའི་མེ་ལོང་གིས་མཛད་  
པའི་དོ་མེ་སྟོབ་དཔོན་གྱི་བྱ་བ་ཀུན་ལས་བདུས་པ་དང་། སྟོབ་དཔོན་འཛིགས་མེད་འབྱུང་གནས་སྤྱོད་  
པས་མཛད་པའི་དཀྱིལ་ཆོག་དོ་མེའི་ཕྱང་བ་གཉིས་སུ་ལེགས་སྦྱར་སྟོན་ཐོག་ཉིད་སོན་བྱུང་བ་ལྟར། ད་  
ལས་འདིར་ཤིན་ཏུ་བསྒྲགས་ཆེ་བའི་ཆོགས་བཅད་དང་པོ་གསུམ་གྱི་བོད་དཔེ་དང་ལེགས་སྦྱར་དབར་  
མཚུངས་བསྐྱར་བསྐྱར་ཞིབ་དང་། ཉིན་སྟངས་ཐོག་ཕབ་བསྐྱར་དང་འབྲེལ་ཉམས་ཞིབ་ཀྱི་རྩལ་དང་ལྷན་  
པའི་ངོ་སྟོན་སྟེང་བཟོད་ཀྱིས་བརྒྱན་ཏེ་རྒྱ་དུས་དེབ་ཨང་བཞི་བཅུ་པའི་ནང་འདོན་སྟེལ་བྱས་ཡོད།



ཆེས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཁག་གི་ཙ་བའི་མ་དཔེ།

ཡཡ - ༢༧

རྫི་ཏུས་དེབ་སོ་དག་པའི་ནང་འགོ་བཅོམ་པའི་འདི་འོག་གསུང་རབ་ལག་གིས་དུག་ཅུ་  
རེ་བརྒྱད་ཀྱི་ངོ་སྟོན་ཞུས་ཟིན་ཅིང་། ད་ལན་འདོན་ཐངས་འདིར་གསུང་རབ་ལག་གིས་གཞན་བདུན་ཅུ་  
དོན་དགའི་གསལ་ཁ་བཀོད་ཡོད།

སངས་རྒྱས་ལྷ་ལས་བྱང་བའི་ལྷ་འི་རྣམ་པ་མི་འདྲ་བ།

༢༢ - ༡༡༠

ཆེད་ཚོ་མ་འདིའི་ནང་སངས་རྒྱས་ལྷ་ལས་བྱང་བའི་ལྷ་འི་རྣམ་པ་མི་འདྲ་བ་ཡོད་པའི་བཅོམ་  
གཞིའི་ཐོག་གསལ་བཤད་བྱས་ཡོད། ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་ནང་སངས་རྒྱས་ལྷ་ལས་བསྐྱེད་པའི་ལྷ་  
དང་ལྷ་མོ་རྣམས་ཀྱི་སྒོར་ལ་འགྲེལ་བཅོམ་མཛད་པའི་བསྐྱེད་པའི་ཚུལ་དུ་རྟེན་དུ་ཡོད། སངས་རྒྱས་ལྷ་པོ་  
རྣམས་རིགས་ལྷ་པོ་སོ་སོའི་སྐྱེད་བྱེད་དུ་འདོད་པས་ལྷ་དང་ལྷ་མོ་རྣམས་རིགས་བྱེད་པར་བ་གང་རུང་  
གཅིག་དང་འབྲེལ་བ་ཡོད་ཅིང་། དེ་བཞིན་དུ་དེ་དག་ལས་བསྐྱེད་པའི་ལྷ་རྣམས་ཀྱི་ཅོད་པན་གྱི་སྐྱེད་  
དུ་རང་གང་ལས་སྐྱེས་པའི་སངས་རྒྱས་དེ་དང་དེའི་སྣང་བརྟན་པ་མོ་བཀོད་པའི་ཚུལ་དུ་གསལ་ཡོད།

ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་རྣམས་སུ་གསལ་བའི་དངོས་གྲུབ་ཀྱི་ངོ་བོ་དང་དབྱེ་བ། ༡༡༡ - ༡༢༤

དངོས་གྲུབ་ཅས་པ་ནི་བྱེད་ནང་གི་རྒྱུད་རྣམས་སུ་བསྟན་པའི་བཅོམ་གཞི་གཙོ་བོ་ཞིག་ཡིན། ཆེད་  
ཚོ་མ་འདིའི་ནང་ནང་པའི་རྒྱུད་རྣམས་སུ་བསྟན་པའི་དངོས་གྲུབ་ཀྱི་རང་བཞིན་དང་དབྱེ་བ་བཅས་ཀྱི་  
བཅོམ་གཞིའི་སྒོར་ལ་ཐོག་མར་དེ་དག་གི་སྐྱེད་གཞིའི་ཚུལ་དུ་ནང་པའི་ཚོ་མ་གཞུང་དུ་གསལ་བའི་  
མངོན་པར་ཤེས་པ་དང་། ཆོ་འཕྱུལ་དང་། དབང་དང་། དབང་ཕྱག་ལ་སོགས་པའི་ཆོག་རྣམས་ལ་  
དབྱེད་ཞིབ་བྱས་ཡོད། དེའི་རྒྱུ་དངོས་གྲུབ་ཅས་པའི་ཆོག་གི་འགྲེལ་བཅོམ་དང་སྐྱགས་དེའི་དབྱེ་བ་  
དང་ནང་གསེས་ཀྱི་དབྱེ་བ་ལས་རལ་གྱི་སོགས་དང་ཕྱ་མོ་ལ་སོགས་པ་ཐུན་མོང་གི་དངོས་གྲུབ་

བརྒྱད་དང་། འཇིག་རྟེན་ལས་འདས་པའི་དངོས་གྲུབ་ཀྱི་སྐོར་ལ་འབྲེལ་བཟྃ་བྱས་ཡོད། དེ་དང་  
འབྲེལ་ཏེ་ནང་པའི་རྒྱུད་རྣམས་སུ་བསྟན་པའི་དེ་དག་གི་རང་བཞིན་དང་དངོས་གྲུབ་ལ་མཁོ་བའི་  
གནད་དོན་རྣམས་ལ་ཡང་གསལ་བཤད་ཞུས་ཡོད།

བྱ་སྟོན་རིན་པོ་ཆེས་མཛད་པའི་རྒྱུད་སྡེ་སྤྱིའི་རྣམ་གཞག་བསྟུས་པ། ༡༢༩ - ༡༣༠

རྒྱུ་དང་འདོན་ཐངས་སྡེ་མ་རྣམས་སུ་འགོ་བཟྃ་འདིའི་འོག་བོད་ཀྱི་མཁས་དབང་བྱ་སྟོན་  
རིན་པོ་ཆེས་མཛད་པའི་‘རྒྱུད་སྡེ་སྤྱིའི་རྣམ་གཞག་བསྟུས་པ་རྒྱུད་སྡེ་རིན་པོ་ཆེའི་གཏེར་སྐོར་འབྲེལ་  
པའི་ལུ་མིག་’ཅེས་པའི་གཞུང་འདི་ཉིན་སྐད་ཐོག་པའ་བསྟུར་གྱི་ལས་རིམ་སྡེ་མའི་འབྲོ་མཐུད་དེ།  
འདོན་ཐངས་འདིར་རྣལ་འབྱོར་རྒྱུད་ཀྱི་དོན་གཏན་ལ་དབབ་པའི་བཟྃ་གཞི་ནང་ཆོན་དང་། དབྱེ་བ་  
དང་ནང་གསེས་ཀྱི་དབྱེ་བའི་སྐོར་ཉིན་སྐད་ཐོག་པའ་བསྟུར་བགྱིས་ཏེ་བཀོད་ཡོད།

ནང་ཆོས་དང་དེ་ལས་གཞན་པའི་ཆོས་ལུགས་རྣམས་སུ་

བསྟན་པའི་སྡེ་མ་པའི་ངོ་བོ།

༡༣༡ - ༡༣༤

རྒྱུ་དང་འདོན་ཐངས་སྡེ་མ་རྣམས་སུ་ནང་པ་དང་། གཅེར་བྱ་པ་དང་། རིག་བྱེད་དང་། བྱ་  
འབྲེལ་གི་སྡེ་མ་པའི་སྐོར་རིམ་པས་བསྟན་ཟེན་ཅིང་། ད་ལན་འདོན་ཐངས་འདིར་རིག་བྱེད་ཆོས་  
ལུགས་ཀྱི་སྡེ་མ་པའི་ནང་ཆོན་གྱི་མཐོང་ཞི་བ་པ་དང་དཔལ་བོ་ཞི་བ་པའི་སྡེ་མ་པའི་ཆོ་གའི་སྐོར་མདོར་  
བསྟུས་ཏེ་བསྟན་ཡོད། བྱ་པར་དུ་འདིར་སྡེ་མ་པའི་ཆེ་བ་དང་། སྡེ་མ་པའི་དགོས་མཁོ་དང་། སྡེ་  
པའི་དབྱེ་བ་དང་། སྡེ་མ་པའི་བདག་དབང་དང་། སྡེ་མ་པའི་དུས་དང་། སྤྱིན་སྲེག་བྱ་ཡུལ་གྱི་ཐབ་བཅ་  
དཀྱིལ་འཁོར། སྡེ་མ་པའི་ཆོ་ག་སོགས་ཀྱི་ངོ་སྟོན་མདོར་བསྟུས་ཤིག་བཀོད་ཡོད།



དལ་འབྱོར་རྟེན་པར་དཀའ་ཚུལ།

༡༧༩ - ༡༧༤

མིའི་ལུས་རྟེན་ཐོབ་པ་ནི་ཤིན་ཏུ་དཀོན་ཆིང་། མི་ལུས་ཐོབ་ཅིང་དལ་བ་བརྒྱད་ལྟན་གྱི་གནས་སུ་  
སྦྲེས་ཀྱང་དམ་ཚུས་ཉམས་སུ་ལེན་པའི་གོ་སྐབས་འབྱུང་དགོ། དེའི་རྟེན་གྱིས་མཐར་ཐུག་གི་  
འབྲས་བུ་མུང་འདས་གྱི་གོ་འཕང་ཐོབ་པའི་བསྐྱལ་བ་ཅན་དུ་འགྱུར་མི་སྤྱབ་ལ། ནང་པའི་གཞུང་  
ལུགས་སྦྱི་དང་བྱུང་པར་དུ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་གཞུང་རྣམས་སུ་དལ་བ་དེ་དག་བཟོད་པའི་སྐབས་མིའི་  
ལུས་རྟེན་ལ་དལ་འབྱོར་ཞེས་བསྟན་ཡོད། ཆེད་ཚུལ་འདིའི་ནང་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་བཞེད་སྲོལ་ལྟར་གྱི་  
དལ་འབྱོར་དང་། དབྱེ་བ་དང་། དེ་དག་གི་ནང་གསལ་གྱི་དབྱེ་བ་དང་། བོད་གྱི་རྟེན་མ་པའི་ཚུས་  
བརྒྱད་གྱིས་དལ་འབྱོར་གྱི་སྐོར་ལ་འགྲེལ་ཚུལ་བཅས་བཀོད་ཡོད།

དོ་རྩེ་རྣམ་པར་འཛུམས་པ་ཞེས་བྱ་བའི་གཞུང་ས།

༡༧༩ - ༡༨༠

རྫོང་འདོན་ཐངས་སྡེ་མའི་ནང་འཕགས་མ་གཟའ་རྣམས་ཀྱི་ཡུམ་ཞེས་བྱ་བའི་གཞུངས་དཔར་  
བསྐྱེད་ཞུས་ཤིང་། རིམ་བ་དེའི་ནང་ཆོན་འདོན་ཐངས་འདིར་འཕགས་པ་དོ་རྩེ་རྣམ་པར་འཛུམས་པ་  
ཞེས་བྱ་བའི་གཞུངས་དཔར་བསྐྱེད་ཞུས་ཡོད། གཞུངས་སྡུག་སྡུག་བདུས་ཀྱི་ལྷེ་བ་གྲངས་ ༡༧༩  
ནས་ ༡༧༧ བར་དང་། ལྷེ་བ་གྲངས་ ༢༢༠ ནས་ ༢༢༢ བར་བཅས་ཁག་གཉིས་སུ་གཞུངས་འདིའི་  
དཔར་མ་མི་འདྲ་བ་ཁག་གཉིས་ཐོབ་ཅིང་། དེ་གཉིས་ཀྱི་དཔར་བྱུང་པར་ཐུན་བྱས་ཏེ། བོད་འགྱུར་  
དུ་བཞགས་པའི་གཞུངས་འདི་ (རྟོག་ཀྱང་ ༡༧༩༩ ) ལ་ཆད་འཛིན་དང་གཞི་བཙུག་པའི་ཐོག་ནས་  
གཞུངས་འདི་ལ་དག་ཞུས་ལེགས་བཅས་དང་འགྲེལ་གཏན་འབེབས་བྱས་ཡོད།

